सितो नातिदूरमवस्थिताः । निकृत्ता निशितैः शस्त्रैः समन्तात् क्षतविक्षताः ॥३॥ दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य पाण्डवानेव चिन्तयन् । श्रुत्वा च निनदं घोरम्पांडवानां जयैषिणाम् ॥ ४ ॥ अनुसारभयाद्भीताः प्राङ्मुखा प्राद्रवन् पुनः । ते मुहूर्त्तात्ततो गत्वा श्रान्तवाहाः पिपासिताः ॥५॥ नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशं गताः । राज्ञो वधेन सन्तप्ता मुहूर्त्तं समवस्थिताः ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । अश्रद्धेयमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय । यत् स नागायुतप्राणः पुत्रो मम निपातितः ॥ ७ ॥ अवध्यः सर्वभूतानां वज्रसंहननो युवा । पांडवैः समरे पुत्रो निहतो

॥ २ ॥ उनके शरीर तेज शस्त्रोंसे कटगये थे, इसलिये बड़े ही घायल होरहे थे, वे एकान्त और छूपेहुए स्थानमें विश्राम करके लम्बे और गरम साँस छोडतेहुए पाण्डवों के विषयमें ही विचार कररहे थे, इतनेमें ही उनको विजय चाहनेवाले पांडवोंका भयानकशब्द सुनाईदिया ३।४ पांडव कहीं फिर उनके ऊपर चढ़ न आवें इस भयसे वे पूर्वदिशा की ओरको भागनेलगे, परन्तु जरा ही देरमें उनके घोड़े थकगये और उनको बड़ी ही पिलास लग आयी, तथापि दुर्योधनके मारेजानेसे वे बडे दुःखी होरहे थे और क्रोध तथा असहनशीलतामें भररहे थे, इसकारण उनको प्यास का भी भान नहीं रहा और उन्होंने तहाँ फिर एक मुहूर्त्त भर विश्राम किया ॥ ५ ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे संजय ! भीमसेनने दश हजार हाथियोंकी समान बलवाले मेरे पुत्रको मारडाला, वास्तव में उसका यह काम श्रद्धाके योग्य नहीं है ॥ ७ ॥ हे संजय ! सब प्राणियोंमेंसे कोई भी जिसको नहीं मार

त्मनः । अवक्रुता वचस्तेन ममपुत्रेण सञ्जय ॥ १४ ॥ कथमद्य भविष्यामि प्रेष्यभूतो दुरन्तकृत् । कथं भीमस्य वाक्यानि श्रोतुं शक्ष्यामि सञ्जय ॥ १५ ॥ अधर्मेण हते तात पुत्रे दुर्योधने मम । कृतवर्मा कृपो द्रौणिः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच । गत्वा तु तावका राजन्नातिदूरमवस्थिताः । अपश्यन्त वनं घोरं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ १७ ॥ ते मुहूर्त्तन्तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः । सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद्वनम् ॥ १८ ॥ नानामृगगणैर्जुष्टं नानापक्षिगणावृतम् । नानाद्रुमलताच्छन्नं नानाव्यालनिषेवितम् ॥ १९ ॥ नानातोयैः समा-

महात्मा विदुरके कहनेके अनुसार न चलकर उनकी बातको सत्य करदिया ! ॥१४॥ जिस भीमने मेरे बुढापे को बिगाड़ा है उसका दास बनकर मैं कैसे रहूंगा ? और हे संजय ! इस भीमकी बातोंको मैं कैसे सहसकूँगा ? ॥१५॥ परन्तु हे तात संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनके अधर्म से मारे जाने पर कृतवर्मा कृपाचार्य और अश्वत्थामाने क्या किया? ॥१६॥ संजयने कहा, कि-हे राजन् ! तुम्हारे पक्षके तीनों वीरोंने छावनीमें से भाग कितनी ही दूर जाकर निवास किया, उन्होंने नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे भराहुआ एक भयङ्कर वन देखा १७ तहाँ उन्होंने एक मुहूर्त्त भर विश्राम किया और घोड़ोंको पानी पिलाया इतनेमें ही सूर्यास्त होगया और उसी समय वे एक बडे भारी वनमें जापहुँचे ॥ १८ ॥ वह वन अनेकों प्रकारके मृग, पक्षी, वृक्ष तथा लताओंसे भराहुआ और भाँतिर के हिंसक जीवोंसे सेवित था ॥ १९ ॥ उसमें जहाँ तहाँ नानाप्रकारके जलाशय थे, अनेकों प्रकारके पुष्प शोभा दे

भूत् सुदारुणः । क्रव्यादाश्च प्रमुदिता घोरा प्राप्ता च शर्वरी ॥२७॥ तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे दुःखशोकसमन्विताः। कृतवर्मा कृपो द्रौणिरुपोपविविशुः समम् ॥ २८ ॥ तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः । तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपांडवयोः क्षयम् ॥ २९ ॥ निद्रया च परीतांगा निषेदुर्धरणीतले । श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥ ३० ॥ ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ । सुखोचितावदुःखार्हौ निषण्णौ धरणीतले ॥ ३१ ॥ तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ । महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत् ॥ ३२ ॥ क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत । नैव स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव

में फिरनेवाले जीवोंका महाघोर शब्द होनेलगा, मांसभक्षी राक्षस प्रसन्न होगये और रात्रि महाघोर होगयी ॥२७॥ उस घोर रात्रिके आरम्भकालमें शोक और दुःख से भरेहुए कृतवर्मा कृपाचार्य और अश्वत्थामा वड़के वृक्षके नीचे एक दूसरेके पास बैठकर कुरुपाण्डवों के संहारके विषयकी गई गुजरी बातोंका शोक करनेलगे, इतने में ही बहुत परिश्रम पड़नेसे तथा अनेकों प्रकारके घावों से घायल होनेसे उनको निद्राने आदबाया और वे उस खुली धरती पर ही सोगये ॥ २८-३० ॥ महारथी कृपाचार्य और कृतवर्मा, जो सुख भोगनेके योग्य तथा दुःख भोगनेके अयोग्य थे, तथा जो बहुमूल्य पलंगों पर सोनेके योग्य थे, वे परिश्रम और शोकके कारण अनाथकी समान धरती पर सोगये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! अश्वत्थामा क्रोध और अमर्षमें डूब रहा था, इसलिये उसको निद्रा नहीं आयी, वह बैठा २ सर्पकी

भारत ॥ ३९ ॥ सन्निपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहं-
गमः । सुप्तान् जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः
॥ ४० ॥ केषाञ्चिच्छिन्नत् पक्षान् शिरांसि च चकर्त्त ह ।
चरणांश्चैव केषाञ्चिद् बभञ्ज चरणायुधः ॥ ४१ ॥ क्षणेन
ध्याहनद्बलवान् येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः । तेषां शरीराव-
यवैः शरीरैश्च विशाम्पते ॥ ४२ ॥ न्यग्रोधमण्डलं सर्वं
सञ्छन्नं सर्वतोऽभवत् । तांस्तु हत्वा ततः काकान् कौ-
शिको मुदितोऽभवत् ॥४३ ॥ प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां
शत्रुसूदनः । तद्दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतन्निशि
॥ ४४ ॥ तद्भावकृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत् । उप-

पास आकर उसकी शाखाको खोजनेलगा ॥ ३९ ॥ और
कौओंका कालरूप वह उल्लू बडकी डाल पर बैठ गया
और सोये हुए अपने शत्रु बहुत कौओंको मारनेलगा ४०
उसने कितनोंहीके पंख नोचडाले, कितनोंहीके शिर अपनी
तीखी चोंचसे काटडाले और कितनोंही के पैर तोड डाले
॥ ४१ ॥ जो २ कौए उसको दीखे उनका इस बलवान्
ने एक क्षणमें नाश करडाला, हे राजन् ! उस समय उन
के परोंसे तथा शरीरोंसे सब बड चारों ओरसे ढकगया
॥ ४२ ॥ इसप्रकार अपनी इच्छानुसार शत्रुओंका संहार
कर अपना वैर चुकाकर वह उल्लू प्रसन्न हुआ, उल्लू
ने रात्रिके समय इसप्रकार कपट भराहुआ घोर कर्म
किया, यह देखकर इसप्रकार ही छुपी रीतिसे शत्रुओंको
मारनेका अश्वत्थामाने भी संकल्प किया, वह अकेला
ही मनमें विचार करनेलगा, कि-युद्धमें शत्रुओंको किस
प्रकार मारना चाहिये, इस बातका इस पक्षीने मुझे उप-
देश दिया है ।४३॥४४। और मेरी समझमें इसके उपदेश

धर्मेण वर्त्तता । निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे ॥५१॥ सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः । अस्मिन्नर्थे पुरा गीताः श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः ॥ ५२ ॥ श्लोका न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः । परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः ॥ ५३ ॥ प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्त्तव्यं रिपोर्बलम् । निद्रार्त्तमर्द्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम् ॥५४॥ भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद्भवेत् । इत्येव निश्चयञ्चक्रे सुप्तानां निशि मारणे ॥५५॥ पाण्डूनां सह पञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः ॥ ५६ ॥ सुप्तौ प्राबोध-

तिरस्कारके योग्य और कपटभरे ही काम किये हैं, इस विषयमें न्यायको देखनेवाले तत्त्वज्ञानी धर्मका विचार करनेवाले पुरुषोंने पहले जो श्लोक गाये हैं वे इस प्रकार सुननेमें आते हैं४६–५२शत्रुकी सेना परिश्रमसे थकगयी हो, या भागी जाती हो, या शस्त्रसे घायल होगयी हो, या भोजन करती हो या कूच करती हो, या कहीं विश्राम लेनेको जाती हो, उस समय ही शत्रुओं को चाहिये कि—उसको मारडालें, जो सेना आधी रातके समय निद्रा लेरही हो जिसका सेनापति मारागया हो, जिसके योधाओंमें भागड पड़गयी हो और जिसमें मत-भेद होगया हो, उसको भी शत्रुको चाहिये, कि—नाश करडाले, इस प्रकार प्राचीन न्यायवेत्ताओंके श्लोकोंको पढ़कर प्रतापी अश्वत्थामाने रणमें सोयेहुए पांडव और पंचाल राजाओंको मारडालनेका निश्चय किया तथा उस ने अपनी क्रूरबुद्धिसे बारम्बार इस क्रूर कामको करनेके विषयमें खूब विचार किया ॥ ५३–५६ ॥ फिर निद्रा

स्तुमुलो विमिश्रः शंखनिस्वनैः। अनिलेनेरितो घोरो दिशः पूरयतीव ह ॥ ६३ ॥ अश्वानां हेषमाणानां गजानाञ्चैव बृंहताम्। सिंहनादश्च शूराणां श्रूयते सुमहानयम् ६४ दिशं प्राचीं समाश्रित्य हृष्टानां गच्छतां भृशम्। रथनेमिस्वनाश्चैव श्रूयन्ते लोमहर्षणाः ॥ ६५ ॥ पाण्डवैर्धार्त्तराष्ट्राणां यदिदं कदनं कृतम्। वयमेव त्रयः शिष्टा अस्मिन्महति वैशसे॥६६॥केचिन्नागशतप्राणाः केचित् सर्वास्त्रकोविदाः। निहताः पांडवेयैस्ते मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ६७ ॥ एवमेतेन भाव्यं हि नूनं कार्येण तत्वतः। यथा ह्यस्येदृशी निष्ठा कृते कार्येऽपि दुष्करे ॥ ६८ ॥ भवतोस्तु

बाजोंका तुमुल शब्द शङ्खोंके शब्दोंके साथ मिलकर पवन के द्वारा मानो दिशाओंको भरे देता है ॥६३॥ घोडोंकी बडी भारी हिनहिनाहट, हाथियोंका बडे जोरसे चिंघाडना, और वीरोंका बड़ा ऊँचा सिंहनाद भी सुनाई आ रहा है ॥ ६४ ॥ पाण्डव बड़े ही हर्षमें भरकर पूर्व दिशा की ओरको कूच कररहे हैं,उनके रथोंके पहियोंका रोमांचकारी घरघराहटका शब्द सुनायी आरहा है ॥ ६५ ॥ पांडवोंने कौरवोंका ऐसा भयानक संहार करडाला है, कि—उस महान् संहारमेंसे हम तीन जने ही जीवित बचगये हैं ॥ ६६ ॥ इस युद्धमें कितने ही वीर तो सौ हाथियोंकी समान बलवान् थे, कितने ही सब प्रकारके अस्त्रोंको जाननेवाले थे, तो भी पांडवोंने उनको मार डाला ! मैं तो इस सबको समयका ही उलटफेर समझता हूं ॥ ६७ ॥ यथार्थरूपसे विचार कियाजाय तो ऐसे कामका परिणाम ऐसा ही होता है , हमने बड़े२ कठिन काम किये, परन्तु इस कामका परिणाम तो ऐसा ही

पर्जन्यः पर्वते वर्षन् किन्नु साधयते फलम् । कृष्टे क्षेत्रे तथा वर्षन् किं न साधयते फलम् ॥ ५ ॥ उत्थानञ्चाप्यदैवस्य ह्यनुत्थानञ्च दैवतम् । व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वस्तत्र विनिश्चयः॥ ६॥ सुवृष्टे तु यथा देवे सम्यक् क्षेत्रे च कर्षिते । बीजं महागुणं भूयात्तथा सिद्धिर्हि मानुषी ।७। तयोर्दैवं विनिश्चित्य स्वयश्चैव प्रवर्त्तते । प्राज्ञाः पुरुषकारे तु वर्त्तन्ते दाक्ष्यमास्थिताः ॥८॥ ताभ्यां सर्वे हि कार्यार्था मनुष्याणां नरर्षभ। विचेष्टन्त स्म दृश्यन्ते निवृत्तास्तु तथैव च ।९। कृतः पुरुषकारश्च सोऽपि दैवेन सिध्यति । तथास्य कर्मणः कर्त्तुरभिनिर्वर्त्तते फलम्॥१०॥उत्थानन्तु मनुष्याणां

आते हैं ॥४॥ वर्षा पर्वतके ऊपर बरसती है परन्तु क्या वह कुछ फल देती है ? परन्तु यदि मेघ जोतेहुए खेतमें बरसता है तो सफल फल देता है ॥ ५ ॥ अब यदि अकेले दैवकी ही अनुकूलता या प्रतिकूलता होय तो सर्वत्र कार्य निष्फल ही होता है, यह निश्चय पहले ही किया जा चुका है ॥ ६ ॥ जैसे कि-यदि वर्षा अच्छी तरह हुई हो और खेत भी अच्छी तरह जोता गया हो तो बीज जैसे बड़े गुणोंवाला उपजता है, ऐसे ही दैव और पुरुषार्थ दोनोंका योग हो तब ही मनुष्यका काम सिद्ध होता है॥७ दैव और पुरुषार्थ इन दोनोंमें दैव स्वयं ही कार्यका निश्चय करके कर्म का फल देता है, तो भी पुरुषार्थ का आश्रय लेने वाले बुद्धिमान् पुरुषार्थ ही करते हैं ॥ ८ ॥ और हे नरोंमें श्रेष्ठ ! मनुष्योंके सब काम दैव और पुरुषार्थ इन दोनोंसे सफल और निष्फल होते देखनेमें आते हैं ॥ ९ ॥ मनुष्य पुरुषार्थ करता है, यह ठीक है, परन्तु वह पुरुषार्थ भी दैवके कारणसे ही सिद्ध होता है, कर्म करने वालेको

वाच्यम्भवेत् किञ्चिल्लब्धव्यं वाधिगच्छति ।१६। अकृत्वा कर्म यो लोके फलं विन्दति धिष्ठितः। स तु वक्तव्यतां याति द्वेष्यो भवति प्रायशः ।१७। एवमेतदनादृत्य वर्त्तते यस्त्वतोऽन्यथा। स करोत्यात्मनोऽनर्थानेष बुद्धिमतां नयः ।१८। हीनं पुरुषकारेण यदि दैवेन वा पुनः । कारणाभ्यामथैताभ्यामुत्थानमफलं भवेत् ।१६। हीनम्पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिध्यति । दैवतेभ्यो नमस्कृत्य यस्त्वर्थान् सम्यगीहते ॥२०॥ दक्षो दाक्षिण्यसम्पन्नो न स मोघै-

करने पर भी उसका फल नहीं पाता है, तो भी उसकी निन्दा नहीं करता है अथवा पाने योग्य फल को पा ही जाता है ॥ १६॥ परन्तु जो मनुष्य कर्म किये बिना जगत् में उसके फलोंको भोगता है, उसकी तो लोग निन्दाही करते हैं, जगत्के लोग कहते हैं, कि-यह तो दूसरेके उद्योग परही जीवित रहनेका साहसी है, और अपने आप परिश्रम करके खानेका तो इसमें साहस ही नहीं है, ऐसा मनुष्य अनेकों प्रकारसे जगत्में द्वेषका पात्र भी होजाता है॥ १७ ॥ जो मनुष्य पुरुषार्थका अनादर करके (पुरुषार्थकेसा फल पुरुषार्थ किये विनाही भोगता है और) दैवके ऊपरही आधार रखता है वह आप ही अपनी हानि करता है, ऐसा बुद्धिमानों का विचार है ॥१८॥ कितनी ही वार ऐसा भी होता है,कि-पुरुषार्थ कुछ फल नहीं देता, किन्तु व्यर्थ जाता है, उसके दो कारण होते हैं-या तो उचित पुरुषार्थ ही नहीं होता है अथवा दैव निर्बल होता है ॥ १६ ॥ परन्तु पुरुषार्थ किये विना कर्म सिद्ध नहीं होता , जो पुरुष देवताओंको प्रणाम करके अच्छे २ पदार्थोंकी इच्छासे कर्म करता है, कर्म

असमर्थः समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः। हित-
बुद्धीननादृत्य सम्मन्त्र्यासाधुभिः सह ॥ २६ ॥ वार्य-
माणोऽकरोद्वैरं पांडवैर्गुणवत्तरैः।पूर्वमप्यतिदुःशीलो न धैर्यं
कर्त्तुमर्हति ॥२७॥ तपत्यर्थे विपन्नो हि मित्राणां न कृतं
वचः। अनुवर्त्तामहे यत्तु वयं तं पापपूरुषम्॥२८॥अस्मा-
नप्यनयस्तस्मात्प्राप्तोऽयं दारुणो महान्। अनेन तु ममा-
द्यापि व्यसनेनोपतापिता ॥२९॥ बुद्धिश्चिन्तयतो किञ्चित्
स्वं श्रेयो नावबुध्यते। मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः
सुहृदो जनाः ॥ ३० ॥ तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च

जो बन ही नहीं सकता, उसने अपने हितैषी हितबुद्धि पुरुषोंका अनादर करके और दुर्जनोंके साथ सम्मति करके मना करने पर भी गुणवान् पाण्डवोंके साथ वैर बिसा लिया, दुर्योधनका स्वभाव पहलेसे ही दुष्ट था, इस लिये वह धीरज न धरसका ॥ २५-२७ ॥ तथा समय पर उसने मित्रोंका कहना भी नहीं माना, इसलिये ही उसका काम निष्फल हुआ है और इसलिये ही वह आज शोक सन्तापमें पड़ा है, अब हमारी यह बात है, कि-हम उस पापी पुरुषकी बातोंमें आगये,इससे हमको भी यह महादारुण अनीतिका फल भोगनेका अवसर आलगा है,आज हमारी बुद्धि दुःखसे सन्तप्त है,इसलिये बुद्धिसे विचार करने पर भी मेरी समझमें नहीं आता, कि-हमारा हित क्या करनेमें है, मनुष्य जब भले बुरे का विचार करनेमें मूढ़सा होजाय तब उसको हितैषियों से अपने हितकी बात बूझनी चाहिये २८-३०ऐसा करने से उसके विनय और बुद्धिकी रक्षा होजाती है और वह अपने कल्याणका मार्ग देख सकता है, इसलिये ही बुद्धि-

दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा । क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ २ ॥ पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्या या भवति शोभना । तुष्यंति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया ॥ ३ ॥ सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम् । सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ॥ ४ ॥ सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता । परबुद्धिञ्च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत् ॥ ५ ॥ कारणान्तरयोगेन योगे येषां समा मतिः । अन्योऽन्येन च तुष्यन्ति बहु मन्यन्ति चासकृत् ॥६॥ तस्यैव तु मनुष्यस्य सा सा बुद्धिस्तदा तदा । कालयोगे विपर्यासं प्राप्यान्योऽन्यं विपद्यते ॥७॥ विचित्रत्वात्तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः ।

समान शोकसे जलनेलगा और मनमें क्रूर कर्म करनेका दृढ़ निश्चय करके कृपाचार्य और कृतवर्मासे कहनेलगा, कि—॥ २ ॥ हरएक मनुष्यमें जुदी २ सुन्दर बुद्धि है और सब ही मनुष्य अपना २ बुद्धिसे सन्तुष्ट रहते हैं ॥ ३ ॥ सब ही मनुष्य अपनेको दूसरेसे विशेष बुद्धिमान् मानते हैं, हरएक अपने आपको श्रेष्ठ मानता है और अपनी प्रशंसा करता है ॥ ४ ॥ सब ही अपनी बुद्धिको अच्छे विचारवाली मानते हैं, दूसरेकी बुद्धिकी निन्दा करते हैं और अपनी बुद्धिकी वारम्वार प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥ किसी कारणवश जिनका विचार बहुतसे मनुष्योंमें एकसा मिलताहुआ होता है वे एक दूसरेसे सन्तुष्ट रहते हैं और आपसमें एक दूसरेका वारम्वार सन्मान करते हैं ॥ ६ ॥ परन्तु उनकी ही वे बुद्धियें जब समय पाकर जुदी२ होजाती हैं तब वे एक दूसरेके विरुद्ध होजाते हैं७ मनुष्योंके चित्त प्रायः जुदे २ होते हैं, इसलिये ही

॥ श्रीहरिः ॥

महर्षि-कृष्णद्वैपायन-वेदव्यास-रचित



महाभारत

सौप्तिक-पर्व

मुरादाबादनिवासि 'सनातनधर्मपताका' सम्पादक

(ऋषिकुमार) रामस्वरूपशर्म्मा कृत

हिन्दी-भाषानुवाद-सहित



The Mahabharat

SAUPTIK PARV

With Hindi Translation

by

Rishikumar

RAMSWARUP SHARMA

सनातनधर्म-यन्त्रालय मुरादाबादमें छपा

प्रिंटर और पब्लिशर प० रामस्वरूप शर्म्मा

१० सितम्बर १९२२

श्रीः

महाभारत-सौप्तिकपर्वकी विषयसूची

पुस्तक मिलनेका पता—

पं रामस्वरूप शर्मा

सनातनधर्म प्रेस-मुरादाबाद

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

सौप्तिक-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

सञ्जय उवाच । ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः । उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्यासमागताः॥१॥ विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीताः समभवंस्तदा । गहनन्देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते ॥ २ ॥ सेनानिवेशम-

---

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायण, नरोंमें श्रेष्ठ नर भगवान् तथा वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वती देवीको प्रणाम करके इतिहास आदि ग्रन्थके व्याख्यानका आरम्भ करे ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! दुर्योधनकी आज्ञानुसार कृपाचार्यने अश्वत्थामाका सेनापतिके पद पर अभिषेक करदिया, तब कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ये तीनों वीर पुरुष दक्षिण दिशाकी ओरको चले और सूर्यास्तके समय छावनीके पास आपहुँचे॥१॥ उससमय उनको मानो किसीने देख लिया हो, ऐसा भय लगा, इसकारण उन्होंने घोड़ोंको छोड़दिया और शीघ्रतासे छावनीके पास ही जङ्गलमेंको जाकर छुपगये

---

(१) सुप्त कहिये सोये हुए धृष्टद्युम्न आदि योधाओंके साथ होनेवाले युद्धकी कथा इसमें वर्णित है, इसलिये इसका नाम सौप्तिक-पर्व है ।

मम सञ्जय ॥८॥ न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं गावल्गणे नरैः। यत् समेत्य रणे पार्थैः पुत्रो मम निपातितः ॥९॥ अद्रिसारमयन्नूनं हृदयम्मम सञ्जय। हतम्पुत्रशतं श्रुत्वा यन्न दीर्णं सहस्रधा ॥ १० ॥ कथं हि वृद्धमिथनं हतपुत्रं भविष्यति। न ह्यहं पांडवेयस्य विषये वस्तुमुत्सहे ११ कथं राज्ञः पिता भूत्वा स्वयं राजा च सञ्जय। प्रेष्यभूतः प्रवर्त्तेयं पांडवेयस्य शासनात् ॥ १२ ॥ आज्ञाप्य पृथिवीं सर्वां स्थित्वा मूर्द्धनि सञ्जय। येन पुत्रशतं पूर्णमेकेन निहतम्मम ॥ १३ ॥ कृतं सत्यं वचस्तस्य विदुरस्य महा-

---

सकता था ऐसे वज्रकी समान दृढ अंगोंवाले मेरे तरुण पुत्रको पांडवोंने रणमें मारडाला ॥८॥ हे संजय! पांडवों ने रणमें इकट्ठे होकर मेरे पुत्रको मारडाला, इससे सिद्ध होता है, कि-मनुष्य अपने भाग्यको लाँघ नहीं सकते ।९। हे संजय! वास्तवमें मेरा हृदय पर्वतके सारका बना हुआ है, जो कि-सौ पुत्रोंके मरणको सुनकर भी हजार टुकडे होकर न फटगया १० पुत्रोंका मरण होजानेसे यह बूढे बुढियाका जोड़ा अब कैसे जीसकेगा? पांडवोंके देशमें रहनेको तो मेरा साहस नहीं होता ॥ ११ ॥ हे संजय! मैं एक राजाका पिता था और स्वयं भी राजा ही था, ऐसा मैं अब पांडवोंका दास बनकर उनकी आज्ञामें रहता हुआ अपने जीवनको कैसे बिताऊँगा? ॥ १२ ॥ मैं सब भूमंडल पर आज्ञा चलाता था; और सब राजाओंके मस्तकों पर चरण रखकर रहता था, वह मैं अब दास की समान अपने जीवनको कैसे बिताऊँगा? ओः! जिस भीमने अकेले ही मेरे सौके सौ पुत्रोंको मारडाला उसकी बातको मैं कैसे सुन सकूँगा? ॥१३॥ हे संजय! मेरे पुत्रने

कीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् । पद्मिनीशतसंछन्नंनीलो-
त्पलसमायुतम् ॥ २० ॥ प्रविश्य तद्वनं घोरम्वीक्षमाणाः
समन्ततः । शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधन्ददृशुस्ततः ॥२१॥
उपेत्य तु तदा राजन् न्यग्रोधं ते महारथाः । ददृशुर्द्विपदां
श्रेष्ठा श्रेष्ठं तं वै वनस्पतिम् ॥ २२ ॥ तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च
विप्रमुच्य च वाजिनः । उपस्पृश्य यथान्यायं सन्ध्यामन्वा-
सत प्रभो ॥ २३ ॥ ततोऽस्तं पर्वतश्रेष्ठमनुप्राप्ते दिवा-
करे । सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत ॥ २४ ॥
ग्रहनक्षत्रताराभिः प्रकीर्णाभिरलंकृतम् । नभोंशुकमिवा-
भाति प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ २५ ॥ इच्छया ते प्रवल्गन्ति
ये सत्त्वा रात्रिचारिणः । दिवाचराश्च ये सत्त्वास्ते निद्रा-
वशमागताः ॥ २६ ॥ रात्रिञ्चराणां सत्त्वानां निर्घोषोऽ-

रहे थे,वह वन सैंकडों कमलिनियोंसे छायाहुआथा,उसमें जहां तहाँ नीले कमल खिल रहे थे ।२०॥ उस घोर वनमें घुसकर वे तीनों वीर चारों ओरको देखनेलगे तो उनको एक बड़का वृक्ष दीखा, उस वृक्षकी एक हजार शाखायें थीं ॥ २१ ॥ वे महारथी उस बड़के वृक्षके पास जाकर अपने रथोंमेंसे नीचे उतर पडे और रथोंमेंसे घोडोंको खोल दिया,हे राजन् ! फिर वे उचित रीतिसे स्नान कर के आचमन कर सन्ध्यावन्दन करने लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ थोड़ी देरमें सूर्य अस्त होगया और सब जगत्की माता रात्रिका आरम्भ होगया, सकल ग्रह, नक्षत्र और तारा-गणोंसे शोभित आकाश चारों ओरसे रात्रिका सुन्दर वस्त्रसा दीखनेलगा ॥२४ ॥ २५॥ रात्रिमें घूमनेवाले प्राणी अपनी इच्छानुसार शब्द करनेलगे और जो प्राणी दिनमें विचरनेवाले थे वे निद्राके वशीभूत होगये ॥ २६ ॥ रात्रि

श्वसन् ॥ ३३ ॥ न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना । वीक्षाञ्चक्रे महाबाहुस्तद्वनं घोरदर्शनम् ॥३४॥ वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम् । अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतम् ॥३५॥ तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् । सुखं स्वपन्ति कौरव्य पृथक् पृथगुपाश्रयाः ॥ ३६ ॥ सुप्तेषु तेषु काकेषु विश्रब्धेषु समन्ततः । सोऽपश्यत् सहसायान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ।३७। महास्वनं महाकायं हर्यक्षं बभ्रुपिंगलम् । सुदीर्घघोणानखरं सुपर्णमिव वेगितम् ॥३८॥ सोऽथ शब्दं मृदुं कृत्वा लीयमान इवाण्डजः । न्यग्रोधस्य ततः शाखां प्रार्थयामास

समान लम्बे साँस छोड़ता रहा ॥ ३३ ॥ वह क्रोधके मारे जलरहा था, इसलिये उसको निद्रा नहीं आती थी, महाबाहु अश्वत्थामा भयानक दीखनेवाले और अनेकों प्रकारके प्राणियोंसे सेवित उस वनको चारों ओर दृष्टि डालकर देखनेलगा, देखने२ वह जहां बैठा था उस बड़के वृक्षके ऊपर बहुतसे कौए दीखे ३४॥३५ हे कुरुवंशी राजन्! वे हजारों कौए उस बडके वृक्षके ऊपरकी भिन्न२ शाखाओं पर बैठकर सुखसे निद्रा लेरहे थे और आनन्दमें रात्रि बिता रहे थे ॥ ३६ ॥ कौओंके निश्चिन्त होकर उस बड के वृक्ष पर चारों ओर सोजाने पर एकायकी भयानक दीखनेवाला एक उल्लू उधरको आताहुआ उसके देखने में आया ॥ ३७ ॥ उसका शब्द बड़ा था और काया भी बड़ी थी, आँखें काले रंगकी, शरीर पीला तथा मटीला नाक बड़ी, नख तीखे और उसका वेग गरुड़केसा था ॥ ३८ ॥ मरनेको तयार हुए पक्षीकी समान वह उल्लू धीरे २ शब्द कररहा था, हे भारत ! वह चुपचुप बड़के

देशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे॥ ४५॥ शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तकालश्च मे मतः। नाद्य शक्त्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः ॥४६॥ बलवन्तः कृतोत्साहा लब्धलक्षाः प्रहारिणः। राज्ञः सकाशात्तेषान्तु प्रतिज्ञातो वधो मया ॥ ४७ ॥ पतंगाग्निसमां वृत्तिमास्थायात्मविनाशिनीम्। न्यायतो युध्यमानस्य प्राणत्यागो न संशयः ४८ छद्मना तु भवेत्सिद्धिः शत्रूणाञ्च क्षयो महान्। तत्र संशयितादर्थाद्योऽर्थो निःसंशयो भवेत् ॥ ४९ ॥ तं जना बहु मन्यन्ते ये च शास्त्रविशारदाः। यच्चाप्यत्र भवेद्वाक्यं गर्हितं लोकनिन्दितम् ॥ ५० ॥ कर्त्तव्यन्तन्मनुष्येण क्षत्र-

के अनुसार समय भी इससमय आपहुँचा है, विजयसे तेजस्वी दीखनेवाले,बलवान् उत्साही,विचारे हुए कामको पूरा करनेवाले, लक्ष्यको पहचाननेवाले और प्रहार करने वाले पाण्डवोंको अब मैं इसके सिवाय और किसी रीति से नहीं मारसकता, पतंगे और अग्निकी समान प्राणका नाश करनेवाली आजीविकाको धारण करके मैंने राजा दुर्योधनसे उनका वध करनेकी प्रतिज्ञा भी करली है, मुझे वह काम पूरा करना ही चाहिये, यदि मैं नीतिसे युद्ध करूँगा तो निःसन्देह मारा जाऊँगा ॥ ४५--४८ ॥ परन्तु कपटसे मेरा काम सिद्ध होजायगा और शत्रुओं का भी महान् क्षय होजायगा और सन्देह भरे कामकी अपेक्षा सन्देहशून्य काम करनेको शास्त्रवेत्ता पुरुष बहुत अच्छा मानते हैं, वह काम चाहे निन्दित हो,लोग भले ही उसकी निन्दा करें,तो भी क्षत्रियधर्मका पालन करने वाले पुरुषको तो वह काम अवश्य ही करना चाहिये, आत्मज्ञानसे शून्य पांडवोंने भी पग २ पर, निन्दासे भरे

यस्तौ तु मातुलं भोजमेव च । तौ प्रबुद्धौ महात्मानौ कृपभोजौ महाबलौ ॥ ५७ ॥ नोत्तरं प्रतिपद्येतां तत्र युक्तं ह्रिया वृतौ । स मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत् ॥५८॥ हतो दुर्योधनो राजा एकवीरो महाबलः । यस्यार्थे वैरमस्माभिरासक्तं पांडवैः सह ॥ ५९ ॥ एकाकी बहुभिः क्षुद्रैराहवे शुद्धविक्रमः । पातितो भीमसेनेन एकादशचमूपतिः ॥ ६० ॥ वृकोदरेण क्षुद्रेण सुनृशंसमिदं कृतम् । मूर्द्धाभिषिक्तस्य शिरः पादेन परिमृद्नता ॥६१॥ विनर्दन्ति च पञ्चालाः क्ष्वेडन्ति च हसन्ति च । धमन्ति शंखान् शतशो हृष्टा घ्नन्ति च दुन्दुभीन् ॥ ६२ ॥ वादित्रघोष-

---

के वशीभूत हुए अपने मामा कृपाचार्यको तथा कृतवर्मा को जगाया, उनको अपना विचार सुनाया, महाबली और महात्मा कृपाचार्य तथा कृतवर्मा अश्वत्थामाके विचारको सुनकर लज्जित होगये और उसको कुछ भी उत्तर न देसके, अश्वत्थामाने दो एक घडी विचार करके नेत्रोंमें आँसू ला अड्खडातेहुए शब्दमें कहा, कि-५७।५८ जिसके लिये आपने पांडवोंके साथ वैर बाँधा है उस महाबली अद्वितीय वीर राजा दुर्योधनको पांडवोंने मार (घायल कर) डाला ॥ ५९ ॥ सबसे बिछुडेहुए और अकेले परन्तु शुद्ध पराक्रमवाले तथा ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी दुर्योधनको युद्धमें बहुतसे क्षुद्रोंने इकट्ठे होकर भीमके हाथसे मरवाडाला ॥६०॥ और क्षुद्र भीम ने एक राजतिलक पायेहुए राजाके मस्तकमें लात मारकर बड़ा ही खोटा काम किया है ॥ ६१ ॥ हर्षमें भरे हुए सैंकडों पंचाल गरजरहे हैं, तालियें बजारहे हैं, हँसरहे हैं, शंख बजारहे हैं और दुन्दुभि बजा रहे हैं ॥ ६२ ॥

यदि प्रज्ञा न मोहादपनीयते । व्यापन्नेऽस्मिन्महत्यर्थे तन्नः श्रेयस्तदुच्यताम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कृप उवाच । श्रुतन्ते वचनं सर्वं यद्यदुक्तं त्वया विभो । ममापि तु वचः किञ्चिच्छृणुष्वाद्य महाभुज ॥१॥ आबद्धा मानुषाः सर्वे निबद्धाः कर्मणोर्द्वयोः । दैवे पुरुषकारे च परं ताभ्यां न विद्यते ॥ २ ॥ न हि दैवेन सिध्यन्ति कार्याण्येकेन सत्तम । न चापि कर्मणैकेन द्वाभ्यां सिद्धिस्तु योगतः ३ ताभ्यामुभाभ्यां सर्वार्थो निबद्धा अधमोत्तमाः । प्रवृत्ताश्चैव दृश्यन्ते निवृत्ताश्चैव सर्वशः ४

होना चाहिये था ॥ ६८ ॥ यदि तुम्हारी बुद्धि दुःखके कारण नष्ट न होगयी हो तो, ऐसे शोकदायक विकट अवसरमें हमको क्या करना चाहिये, जो उपाय आपको कल्याणकारी मालुम हो, उसको कहिये ॥ ६६ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

कृपाचार्यने कहा, कि-हे महाबाहु अश्वत्थामा ! तूने जो २ बात कही वह मैंने सब सुनली, अब आज तू मेरी भी कुछ बात सुनले ॥ १ ॥ मनुष्य दैव और पुरुषार्थ इन दोनोंसे बँधाहुआ है, दैव और पुरुषार्थसे श्रेष्ठ दूसरा और कोई भी नहीं है ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ ! अकेले दैवसे ही काम सिद्ध नहीं होते हैं तथा अकेले पुरुषार्थसे भी काम सिद्ध नहीं होते हैं, किन्तु दोनोंकी सहायतासे ही सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥ अधम और उत्तम सब काम दैव और पुरुषार्थ इन दोनोंके अधीन हैं और सब पुरुष कर्ममें प्रवृत्त हुए और निवृत्त हुए देखनेमें

दक्षाणां दैववर्जितम्। अफलन्दृश्यते लोके सम्यगप्युपपादितम् ।।११।। तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः। उत्थानन्ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते।१२। प्रायशो हि कृतं कर्म नाफलन्दृश्यते भुवि। अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म दृश्येन्महाफलम् १३ चेष्टामकुर्वंल्लभते यदि किञ्चिद्यदृच्छया। यो वा न लभते कृत्वा दुर्दशौ तावुभावपि ।१४। शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते। दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन् दक्षाः प्रायो हितैषिणः ।१५। यदि दक्षः समारम्भात् कर्मणो नाश्नुते फलम् । नास्य

जो फल मिलता है वह दैवसे ही मिलता है ॥ १० ॥ चतुर मनुष्य अच्छे प्रकारसे कर्मोंका आरम्भ करते हैं परन्तु यदि उनको दैवका सहारा न होय तो वे जगत्में निष्फल होते ही देखनेमें आते हैं ॥ ११ ॥ जो मनुष्य आलसी और बुद्धिहीन होते हैं वे कार्य (पुरुषार्थ) का आरम्भ करने की निन्दा करते हैं ,परन्तु बुद्धिमानोंको यह बात अच्छी नहीं लगती है॥१२। जगत्में कोई भी कर्म कियाजाय, तो प्रायः निष्फल होता देखनेमें नहीं आता, परन्तु बड़ेभारी फलवाले कर्मको न करनेसे दुःख ही देखना पड़ना है ॥१३॥ एक मनुष्य कर्म न करके भी दैवेच्छासे हरएक फलको पाता है और दूसरा एक मनुष्य कर्म करने पर भी फल नहीं पाता, ऐसा भी होता है, परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत कम देखने में आते हैं ॥ १४ ॥ परन्तु कर्म करनेमें चतुर पुरुष सदा सुखमें ही जीवन को बिताते हैं तथा आलसी मनुष्य अपने जीवनको सुखमें नहीं बितासकते, इसजगत् में जो पुरुष कार्यकुशल होते हैं, प्रायः वे ही अपना हित चाहते हैं॥ १५ ॥ यदि कार्यकुशल पुरुष कार्यका आरम्भ

विहन्यते । सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते ॥२१॥ आपृच्छति च यः श्रेयः करोति च हितं वचः । उत्थायो-त्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसम्मताः ॥२२॥ ते स्म योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते । वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥ उत्थानस्य फलं सम्यक् तदा स लभतेऽचिरात् । रागात् क्रोधाद्भयाल्लोभात् योऽ-र्थानीहति मानवः ॥ २४ ॥ अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः ॥ सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना२५

करने में प्रवीण होता है और चतुराई से भरा होता है उस मनुष्यका काम निष्फल नहीं होता, जो पुरुष वृद्धों की सेवा करता है, अपने कल्याणकी बात दूसरेसे बूझता है और वृद्धोंकी हितशिक्षाके अनुसार आचरण करता है, उसकी इस कर्त्तव्यताका नाम ' सम्यगीहा ' (उत्तम प्रवृत्ति) है, कार्य करते समय सदा ही वृद्धोंमें सन्मान पायेहुए पुरुषोंसे सम्मति ले लेना चाहिये॥ २०-२१॥ क्योंकि-वे कार्यके साधनमें परममूलरूप माने जाते हैं और कार्यकी सिद्धि उनके ही आधार पर मानीजाती है; जो पुरुष वृद्धोंका उपदेश सुनकर तदनन्तर कार्यका आरम्भ करता है,उस पुरुषको थोड़े ही समयमें कार्य आरंभ करनेका फल अच्छे प्रकारसे मिलजाता है,परन्तु जो मनुष्य राग,द्वेष, भय अथवा लोभसे कार्य सिद्ध करना चाहता है और वह स्वयं कार्य करनेमें असमर्थ होता है अथवा दूसरेका अपमान करना चाहता है तो वह पुरुष तुरन्त ही लक्ष्मीसे भ्रष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ दुर्यो-धन भी लोभी और ओछी बुद्धिका है, उसने मूर्खतासे बिना विचार किये ही ऐसे कामका आरम्भ करदिया कि

पश्यति॥ततोऽस्य मूलं कार्य्याणां बुध्या निश्चित्य वै बुधाः३१
तेऽत्र पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत्कर्त्तव्यं तथा भवेत् । ते
वयं धृतराष्ट्रञ्च गान्धारीञ्च समेत्य ह ॥ ३२॥ उपपृच्छा-
महे गत्वा विदुरञ्च महामतिम् । ते पृष्टास्तु वदेयुर्य-
च्छ्रेयो नः समनन्तरम् ॥३३॥ तदस्माभिः पुनः कार्य्यमिति
मे नैष्ठिकी मतिः । अनारम्भात्तु कार्य्याणां नार्थः संपद्यते
क्वचित् ॥३४॥ कृते पुरुषकारे च येषां कार्य्यं न सिध्यति।
दैवेनोपहतास्ते तु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिकृप-
संवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच । कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं
शुभम् । अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः ॥१॥

मान् पुरुष बुद्धिसे कार्यके मूलका निश्चय करके वृद्धोंसे सम्मति लिया करते हैं ॥ ३१ ॥ बूझने पर वृद्ध । पुरुष जैसी सम्मति दें वैसा ही करना चाहिये, हम तीनों जने इकट्ठे होकर धृतराष्ट्र गान्धारी और परमबुद्धिमान् विदुर के पास चलें और उनसे बूझें वे जो कल्याणकारी उपाय बतावें हमें वही करना चाहिये, यही मेरा दृढ़ विचार है, कामका आरम्भ किये विना कभी फल नहीं मिलता है ॥ ३२—३४ ॥ पुरुषार्थ (उद्योग) करने पर भी जिनका काम सिद्ध नहीं होता है, समझ लो कि-उनका प्रारब्ध खोटा है, इसमें जरा भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! कृपाचार्यकी धर्म तथा अर्थसे भरी शुभ बातको सुनकर अश्वत्थामा शोक तथा दुःखमें डूबगया ॥ १ ॥ वह प्रज्वलित अग्निकी

चित्तवैक्लव्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥ यथा हि वैद्यः कुशलो ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि। भैषज्यं कुरुते योगात् प्रशमार्थमिति प्रभो॥९॥एवं कार्यस्य योगार्थं बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः । प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्ताञ्च निंदन्ति मानवाः ॥ १० ॥ अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः । मध्येऽन्यया जरायान्तु सोऽन्यां रोचयते मतिम् ॥ ११ ॥ व्यसनं वा महाघोरं समृद्धिं वापि तादृशीम् । अवाप्य पुरुषो भोज कुरुते बुद्धिवैकृतिम् ॥ १२ ॥ एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा । भवत्यकृतधर्म-

---

उनकी बुद्धिमें अर्थात् निर्णय करनेमें भेद देखनेमें आता है, बुद्धि भी चित्तकी विकलताके अवलम्बसे वैसी ही बनजाती है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जैसे क्रियाकुशल वैद्य विधिपूर्वक रोगको जानकर उसको नष्ट करनेके लिये औषध करता है ॥ ९ ॥ ऐसे ही बुद्धिमान् मनुष्य कार्य को सिद्ध करनेके लिये अपनी चातुर्यसे प्रेरणा की हुई बुद्धि से काम लेते हैं, परन्तु तटस्थ पुरुष उसकी उस बुद्धिकी निन्दा करते हैं ॥ १० ॥ एक मनुष्य युवा अवस्थामें एक प्रकारकी बुद्धिसे मूढ़सा बनजाता है, मध्यम अवस्थामें दूसरी ही प्रकारकी बुद्धिसे मोहित होता है और वृद्धावस्थामें और ही प्रकारकी बुद्धिको पसन्द करता है अर्थात् बुद्धि भी अवस्थाके अनुसार बदलती रहती है ॥ ११ ॥ और हे भोज ! (कृतवर्मा!) महाघोर दुःखके समय अथवा बड़ीभारी सम्पदाको पाजाने पर मनुष्यकी बुद्धिमें विकार आजाता है ॥ १२ ॥ इसप्रकार बुद्धि समयके अनुसार होजाती है, इसलिये एक ही पुरुषकी बुद्धि समय २ पर भिन्न २ रूपको धारण करती है और उसको आप ही

स्तेजा क्षत्रियोऽधमः । अदक्षो निन्द्यते वैश्यः शूद्रश्च प्रतिकूलवान् ॥ २० ॥ सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे ब्राह्मणानां सुपूजिते । मन्दभाग्यतयास्म्येतं क्षत्रधर्ममनुष्ठितः । २१ । क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मणसंश्रितः । प्रकुर्यां सुमहत् कर्म न मे तत् साधुसम्मतम् ॥ २२ ॥ धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे । पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि ॥ २३॥ सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम् । गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः ॥ २४ ॥ अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विश्वस्ता जित-

---

है ॥१६॥ जो जितेन्द्रिय नहीं है वह ब्राह्मण निकम्मा है, तेज (पराक्रम) रहित क्षत्रिय निकम्मा है, चतुराईसे रहित वैश्य निन्दित है और तीनों वर्णोंके प्रतिकूल वर्त्ताव करनेवाला शूद्र अधम मानाजाता है॥२०॥मैं ब्राह्मणोंके परमपूजनीय श्रेष्ठ कुलमें जन्मा हूँ, परन्तु मन्दभाग्यता के कारण इस क्षत्रियधर्मका आचरण कररहा हूँ ॥२१ ॥ मैं क्षत्रियके धर्मको जानकर यदि ब्राह्मणके धर्मका आश्रय लेताहुआ कोई बड़ाभारी श्रेष्ठ कर्म करूँ तो भी सत्पुरुष उसका सन्मान नहीं करेंगे अर्थात् अब तो मुझे क्षत्रिय के धर्मका ही आचरण करना चाहिये ॥ २२ ॥ मैं रणमें दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्रोंको धारण करता हूँ, तिस पर मेरे पिताजी मारेगये और मैं देखता रहा, इस दशा में मैं कौनसा मुख लेकर सभामें बोलूँगा? २३ इसलिये आज मैं जी मरकर क्षत्रियधर्मका पालन करता हुआ राजा दुर्योधन और अपने महात्मा पिताके ऋणसे छूटूँगा २४ आज विजयसे दमकतेहुए पंचालराजे शरीरों परसे कवचोंको उतारकर विजयके आनन्दकी लहरें लेते

सुतांस्तथा ॥ ३१ ॥ अद्याऽहं सर्वपञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीम् । प्रहृत्यैकैकशस्तेषु भविष्याम्यनृणः पितुः ३२ दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि । गमयिष्यामि पञ्चालान् पदवीमद्य दुर्गमाम् ॥ ३३ ॥ अद्य पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नस्य वै निशि । न चिरात् प्रमथिष्यामि पशोरिव शिरो बलात् ॥ ३४ ॥ अद्य पांचालपाण्डूनां शयितानात्मजान्निशि । खड्गेन निशितेनाजौ प्रमथिष्यामि गौतम ॥ ३५ ॥ अद्य पाञ्चालसेनां तां निहत्य निशि सौप्तिके। कृतकृत्यः सुखी चैव भविष्यामि महामते

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कृप उवाच । दिष्ट्या ते प्रतिकर्त्तव्ये मतिर्जातेयम-

सब पंचालोंको एक२ करके मारताहुआ उनके शरीरोंसे पृथिवीको ढकदूँगा और अपने पिताके ऋणसे छूटूँगा ३२ जिस दुर्गम मार्गसे दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और सिन्धुराज गये हैं उस ही मार्गसे सब पंचालोंको भी भेज दूँगा ॥ ३३ ॥ आज रात्रिमें ही मैं पंचालोंके राजा धृष्टद्युम्नके मस्तकको पशुके मस्तककी समान जरा देरमें अपने बलसे कुचलडालूँगा ॥३४॥ हे कृपाचार्य ! आज रातमें सोयेहुए पंचालोंके और पाण्डवोंके पुत्रोंके शिरोंको अपनी तेज तलवारसे काटडालूँगा ॥ ३५ ॥ और हे महामति कृपाचार्य ! आजकी ही रातमें पंचालोंकी सोती हुई सेनाको भी मारकर निश्चिन्त और सुखी होऊँगा ॥ ३६ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

कृपाचार्यने कहा, कि-हे अचल प्रतिज्ञावाले अश्वत्थामा ! तेरा विचार वैरका बदला लेनेका है, यह ठीक

जेतुमुत्सहते कश्चिदपि देवेषु वासवः ॥७॥ कृपेण सहितं यान्तं गुप्तश्च कृतवर्मणा । को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट् ८ ते वयं निशि विश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः । प्रभातायां निशायां वै निहनिष्याम शात्रवान् ९ तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः। सात्वतोपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः ॥ १० ॥ ते वयं सहितास्तात सर्वान् शत्रून् समागतान् । प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलाम् ॥ ११ ॥ विश्रमस्व त्वमव्यग्रः स्वप चेमां निशां सुखम् । अहञ्च कृतवर्मा च त्वां प्रयांतं नरोत्तमम् ॥ १२ ॥ अनुयास्याव सहितौ धन्विनौ परतापनौ । रथिनं त्वरया यान्तं रथमास्थाय दंशितौ ।१३।

देवताओंका राजा इन्द्र भी तुझे जीतनेका साहस नहीं करसकता ॥७॥ ऐसा तू जिस समय कृपाचार्यके सहित कृतवर्मासे रक्षा पाता हुआ युद्धमें चढ़ाई करेगा तब देवराज इन्द्र भी युद्धमें तेरे सामने नहीं लड सकेगा ८ इस लिये हम आजकी रात सोलें और परिश्रम तथा ग्लानिरहित होलें तब कल प्रातःकालके समय शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ ९ ॥ निःसन्देह तेरे और मेरे दोनोंके अस्त्र दिव्य हैं, कृतवर्मा बडा धनुषधारी है और अनेकों प्रकारके युद्ध करनेमें प्रवीण है ॥ १० ॥ इसलिये हे तात ! हम तीनों इकट्ठे होकर, चढकर आयेहुए सब शत्रुओंको रणमें मार डालेंगे, ऐसा करनेसे हमें बडी ही प्रसन्नता प्राप्त होगी ॥ ११ ॥ परन्तु इस समय तो व्यग्रताको छोडकर विश्राम ले और आजकी रातमें सुखसे सो, जब तू रथ में बैठकर शत्रुके ऊपर चढ़ाई करेगा, उस समय धनुषधारी और शत्रुओंको दबानेवाले हम दोनों भी शरीर

हता वा स्वर्गगा वयम् ॥ १६ ॥ सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमाहवे । सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ ॥ २० ॥ एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः । अब्रवीन्मातुलं राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥ आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च । अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः । तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम् ॥ २२ ॥ यस्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमन्हाय नाशयेत् । किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन् पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ २३ ॥ हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति । यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः २४

मरेंगे और ऐसा होने पर स्वर्गमें जायँगे ॥ १६ ॥ हे निर्दोष अश्वत्थामा ! हम प्रातःकालके समय अपनी शक्ति भर सब प्रकारके उपाय करके तुझे सहायता देंगे हे महाबाहु अश्वत्थामा ! यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥२०॥ इसप्रकार मामाने अश्वत्थामासे हितकी बात कही, तब हे राजन् ! अश्वत्थामा क्रोधसे लाल २ आँखें करके मामासे कहनेलगा, कि-२१ ॥ जो मनुष्य आतुर हो, जो क्रोधमें भरा हो उसको नींद कहांसे आवे ? जो पुरुष अर्थोंका विचार करता हो अथवा जो कामके विषय का विचार करता हो, उसको भी निद्रा कहाँसे आवे ? आज ये चारों बातें मेरे पास आयी खड़ी हैं, इस बात को आप देख लीजिये ॥ २२ ॥ इन आतुर आदि चारों में चौथा अमर्ष मेरी निद्राको झट नाश करदेता है,पिता के मारेजानेकी याद आते ही मुझे जो दुःख होता है, क्या उसकी समान कोई और दुःख हो सकता है ? २३ इन पापियोंने जिसप्रकार मेरे पिताको मारडाला,उसका

यत्येष वारिवेग इवार्णवम् । एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥३० ॥ वासुदेवार्जुनाभ्यां हि तानहं परिरक्षितान् । अविसह्यतमान्मन्ये महेन्द्रेणापि मातुल ३१ न चास्मि शक्तः संयन्तुं कोपमेतं समुत्थितम् । न तं पश्यामि लोकेस्मिन् यो मां कोपान्निवर्त्तयेत् ॥ ३२ ॥ तथैव निश्चिता बुद्धिरेषा साधुमता च मे । वार्त्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः ॥ ३३॥ पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे । अहन्तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके। ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः ३४

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमंत्रणायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

को बढ़ारही है, आजकल मेरा मन खेदसे एकतार रहता है, फिर मुझे निद्रा कैसे आवे ? और सुख भी कहाँसे होसकता है ? ॥२९-३०॥ हे माननीय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन पंचालोंकी रक्षा करते हैं, इसलिये मेरी समझमें रणमें महेन्द्र भी उनके सामने टक्कर नहीं ले सकता ३१ तैसे ही मैं भी अपने उभरे हुए कोपको नहीं दबासकता, इस लोकमें मैं ऐसे किसी भी पुरुषको नहीं देखता, कि-जो मेरे कोपको शान्त करसके ॥ ३२ ॥ मैं आपसे जैसा कहचुका हूं, मैंने ऐसा ही करनेका अपनी बुद्धिसे निश्चय करलिया है और मेरे इस विचारको सत्पुरुष अवश्य ही अच्छा कहेंगे, जिस समय दूतोंने मेरे मित्रोंकी पराजय और पाण्डवोंकी विजयका समाचार मुझसे कहा, वह मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे हृदयको जलाये देता है, इसलिये आज रातमें सोयेहुए शत्रुओंको मारकर ही मैं विश्राम लूँगा तथा दुःखरहित होकर सुखसे सोऊँगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

दुरात्मा पापपूरुषः। दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहु पापकम् ॥ ६ ॥ नाथवन्तन्तु सुहृदः प्रतिषेधन्ति पातकात् । निवर्त्तते तु लक्ष्मीवान्नालक्ष्मीवान्निवर्त्तते ॥ ७ ॥ यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते । तथैव सुहृदां शक्यो न शक्यस्त्ववसीदति ॥ ८ ॥ तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम् । प्राज्ञाः संप्रतिषेधन्ति यथाशक्ति पुनः पुनः ॥ ९ ॥ स कल्याणे मनः कृत्वा नियम्यात्मानमात्मना कुरु मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे १०

मेंको नहीं लाया जासकता तथा जो दुष्टात्मा और पापी हो वह पुरुष, उपदेश कियेहुये कल्याणके मार्गको छोड़ कर बहुतसे पापकर्म ही किया करता है ॥ ६ ॥ जिसके ऊपर गुरुजन होते हैं उसको उसके स्नेही पापकर्म करने से रोका करते हैं और जिस पुरुषका कल्याण होनेवाला होता है वही पापकर्म करनेसे रुकता है और जिसका अमङ्गल होनेवाला होता है वह पुरुष पापकर्म करनेसे नहीं रुकता ॥ ७ ॥ जिसका चित्त विक्षिप्त होगया हो उस पुरुषके स्नेहियोंको चाहिये, कि-अनेकों प्रकारसे समझा कर, धमका कर, कटुशब्द कहकर उसको अपने वशमें रक्खें, यदि उसको वशमें नहीं रखसकते हैं तो वह दुःख पाता है ॥ ८ ॥ किसीका कोई बुद्धिमान् स्नेही पुरुष, पाप कर्म करनेको उद्यत होरहा हो तो चतुर पुरुष उसको वारंवार शक्तिके अनुसार समझा कर पापकर्म करनेसे रोकते हैं और ऐसा करना उनका धर्म है ॥ ९ ॥ हे तात ! तू भी अपने मनको वशमें करके उसको कल्याणका काम करने में लगा और मेरा कहना मान, कि-जिससे तुझे पीछेसे पछतावा न करना पड़े ॥ १० ॥ जो सोते हों,

हितम् । शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं मवेदिति मतिर्मम ।१७।
अश्वत्थामोवाच । एवमेव यथात्थ त्वं मातुलेह न संशयः
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षं
भूमिपालानां भवताञ्चापि सन्निधौ । न्यस्तशस्त्रो मम
पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ १९ ॥ कर्णश्च पतिते चक्रे
रथस्य रथिनां वरः । उत्तमे व्यसने मग्नो हतो गाण्डीव-
धन्वना ॥ २० ॥ तथा शान्तनवो भीष्मो न्यस्तशस्त्रो
निरायुधः । शिखण्डिनं पुरस्कृत्य हतो गांडीवधन्वना २१
भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे । क्रोशतां भूमि-
पालानां युयुधानेन पातितः ॥ २२ ॥ दुर्योधनश्च भीमेन

श्वेत वस्तुमें लाल वस्तुका होना संभव नहीं है तैसे ही
मेरी समझमें तू पापकर्म करे यह संभव नहीं है ॥ १७ ॥
अश्वत्थामाने कहा, कि-हे मामाजी ! आप जो कहते हैं
सो ठीक ही है, परन्तु पांडवोंने पहलेसे ही इस धर्मके
सेतुके सैंकड़ों टुकड़े कर डाले हैं ॥ १८ ॥ राजाओंके
और तुम्हारे सामने मेरे पिताने शस्त्र छोड़ दिये थे तो
भी धृष्टद्युम्नने उनको मार ही डाला ॥ १९ ॥ कर्णके रथ
का पहिया कीचमें फँस गया था और वह बड़े दुःख में
डूबगया था, उस समय उसको गांडीवधारी अर्जुनने
क्या नहीं मारा था ? ॥ २० ॥ शन्तनुके पुत्र भीष्म
शस्त्रोंको त्याग कर आयुधहीन होगये थे, उस समय
अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके क्या उनको नहीं मार
डाला ? ॥ २१ ॥ महाधनुषधारी भूरिश्रवा रणमें अन-
शन (अन्नजलके त्यागका) व्रत धारण करके बैठगया
था, तो भी राजे द्वन्द मचाने लगे और युयुधानने उस
को मार डाला ॥ २२ ॥ रणमें राजाओंके सामने भीम-

र्पयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम् ॥ २९ ॥ सञ्जय उवाच।
एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्। एकान्ते योज-
यित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान् ॥३०॥ तमब्रूतां महा-
त्मानौ भोजशारद्वतावुभौ। किमर्थं स्यन्दनो युक्तः किं च
कार्यं चिकीर्षितम् ॥ ३१ ॥ एकसार्थप्रयातौ स्वस्त्वया
सह नरर्षभ। समदुःखसुखौ चापि नावां शङ्कितुमर्हसि ३२
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन्। ताभ्यां तथ्यं
तदाचख्यौ यदस्यात्मचिकीर्षितम् ३३ हत्वा शतसहस्राणि
योधानां निशितैः शरैः। न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन
पातितः ॥ ३४ ॥ तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तवर्माणमद्य

है ? ॥ २८ ॥ इस जगत्में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं जन्मा है और न जन्मे होगा, कि—जो पंचालोंको मारने के मेरे निश्चयको डिगासके ॥ २९ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! प्रतापी अश्वत्थामा कृपाचार्यसे इस प्रकार कहकर एकान्तमें गया और अपने घोड़ोंको रथमें जोतकर शत्रुओंके ऊपर चढ़ायी करनेकी तयारी करनेलगा ॥ ३० ॥ तब महात्मा कृपाचार्य और कृतवर्माने अश्वत्थामासे बूझा, कि—तुम रथको क्यों जोड़ते हो ? तुम क्या काम करना चाहते हो ? ॥ ३१ ॥ हे महात्मा पुरुष ! हम दोनों तेरे साथ ही रहते हैं और तेरे सुख दुःखके साथी हैं, इस लिये तुझे हमारे विषयमें शङ्का नहीं करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ यह सुन कर पिताके मारे जानेकी याद आजानेसे बड़े क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाने उन दोनोंको अपने मनकी बात स्पष्टरूपसे कह सुनायी कि ॥३३॥ मेरे पिताने तेज किये हुए बाणोंसे लाखों योधाओंको मार कर जब अपने शस्त्रोंको त्याग दिया था उस समय धृष्ट-

ययुश्च शिबिरं तेषां संप्रसुप्तजनं विभो। द्वारदेशन्तु संप्राप्य द्रौणिस्तस्थौ महारथः॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिपांडव-
शिबिरगमने पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

धृतराष्ट्र उवाच। द्वारदेशे ततो द्रौणिमवस्थितमवेक्ष्य तौ। अकुर्वतां भोजकृपौ किं सञ्जय वदस्व मे॥ १॥ सञ्जय उवाच। कृतवर्माणमामन्त्र्य कृपश्च स महारथः। द्रौणिर्मन्युपरीतात्मा शिबिरद्वारमासदत्॥ २॥ तत्र भूतं महाकायं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम्। सोऽपश्यत् द्वारमाश्रित्य तिष्ठन्तं लोमहर्षणम्॥ ३॥ वसानश्चर्म वैयाघ्रं महारुधिरविस्रवम्। कृष्णाजिनोत्तरासंगं नागयज्ञो-

---

चढ़ाई करदी और महारथी अश्वत्थामा छावनी के द्वार पर जाकर खड़ा होगया ४० पाँचवाँ अध्याय समाप्त ५

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय! अश्वत्थामाको छावनी के दरवाजे पर खड़ा हुआ देख कर कृतवर्माने तथा कृपाचार्य ने क्या किया था वह मुझे सुना॥ १॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! क्रोधमें भराहुआ महारथी अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यकी आज्ञा माँग कर छावनीके दरवाजेके पास आपहुँचा॥ २॥ तहाँ उसने बड़ी भारी काया वाले और चन्द्रमा तथा सूर्यकी समान कान्तिमान् एक पुरुषको छावनीके द्वारको रोक कर खड़े हुए देखा, उस पुरुषको देखते चण ही अश्वत्थामाके रोमाञ्च खड़े होगये॥ ३॥ वह पुरुष अपने शरीर पर बहुतसे लोहू टपकते हुए व्याघ्रके चमड़ेको लपेट रहा था और शरीरके ऊपरके भागमें काले मृगकी

दिव्यैरस्त्रैर्वर्षैरवाकिरत् ॥१०॥ द्रौणिमुक्ताञ्छरांस्तांस्तु तद्भूतं महदग्रसत् । उदधेरिव वार्योघान् पावको वडवामुखः॥११॥ग्रस्यमानांस्तदा भूतं द्रौणिना प्रहिताञ्छरान् । अश्वत्थामा तु संप्रेक्ष्य शरौघांस्तान्निरर्थकान्॥१२॥रथशक्तिं मुमोचास्मै दीप्तामग्निशिखामिव । सा तमाहत्य दीप्ताग्रा रथशक्तिरदीर्य्यत ॥१३॥ युगान्ते सूर्य्यमाहत्य महोल्केव दिवश्च्युता । अथ हेमत्सरुं दिव्यं खड्गमाकाशवर्च्चसम् ॥ १४ ॥ कोषात् समुद्बबर्हाशु बिलाद्दीप्तमिवोरगम् । ततः खड्गवरं धीमान् भूताय प्राहिणोत्तदा ॥ १५ ॥ स तदासाद्य भूतं वै विलयं नकुलवद्ययौ । ततः स कुपितो

देखकर अश्वत्थामा घबड़ाया नहीं, किन्तु उसके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ १० ॥ उस समय जैसे बड़वानल समुद्रके जलकी तरङ्गोंको खाता है तैसे ही वह महान् समर्थ देव, अश्वत्थामाके छोड़ेहुए उन बाणोंको निगलने लगा॥११॥ अश्वत्थामाके मारेहुए बाणोंको वह देवता निगलगया, उसके बाण निरर्थक गये, यह देखकर अश्वत्थामाने अग्निकी शिखाकी समान प्रदीप्त रथशक्ति उस अलौकिक प्राणीके ऊपर छोड़ी परन्तु मिथुन राशिके बीतजाने पर आकाशमेंसे गिरी हुई बड़ीभारी उल्का जैसे सूर्यके साथ टकराती हुई टूटकर गिरपड़ती है, तैसे ही अश्वत्थामाकी मारी हुई जाज्वल्यमान रथशक्ति भी उस अलौकिक देवताके शरीरसे टकराकर टूटगयी, तब जैसे बिलमेंसे प्रकाशमान सर्प बाहरको निकलता हो तैसेही सुवर्णकी मूठ और आकाश समान निर्मल कांतिवाली दिव्य तलवारको तुरन्त ही म्यानमेंसे निकालकर बुद्धिमान् अश्वत्थामाने उस प्राणीके मारी ॥ १२–१५ ॥

हीनप्राणजडान्धेषु सुप्तभीतोत्त्थितेषु च । मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि निपातयेत् ॥ २२ ॥ इत्येवं गुरुभिः पूर्वमुपदिष्टं नृणां सदा । सोऽहमुत्क्रम्य पन्थानं शास्त्रदृष्टं सनातनम् ॥ २३ ॥ अमार्गेणैवमारभ्य घोरामापदमागतः। ताञ्चापदं घोरतरां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥ यदुद्यम्य महत् कृत्यं भयादपि निवर्त्तते । अशक्तश्चैव तत् कर्त्तुं कर्म शक्तियलादिह ॥ २५ ॥ न हि दैवाद्गरीयो वै मानुषं कर्म कथ्यते । मानुष्यं कुर्वतः कर्म यदि दैवान्न सिध्यति २६ स पथाभ्च्युतो धर्माद्विपदं प्रतिपद्यते । प्रतिघातं त्वविज्ञातं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७॥ यदारभ्य क्रियां काञ्चिद् भ-

---

अन्धा, सोयाहुआ, भयभीतहुआ, निद्रामेंसे जागाहुआ, मदमत्त, उन्मत्त और प्रमादी इतने मनुष्योंके ऊपर शस्त्रका प्रहार नहीं करना चाहिये ॥ १८-२२ ॥ इसप्रकार महात्मा पुरुषोंने पहले मनुष्योंको उपदेश दिया है, तो भी मैं शास्त्रमें बनायेहुए सनातनधर्मको न मानकर उलटे कामका आरम्भ करनेलगा, इसलिये घोर आपत्तिमें आपड़ा हूँ, किसी बड़ेभारी कामको करनेका उद्योग करके भयके कारण उससे पीछेको हटजाना, इसको पण्डित महाभयानक आपत्ति कहते हैं, इस जगत्में मनुष्य शक्तिके बलसे किसी कामको पूरा नहीं करसकता, क्योंकि-मनुष्यका काम दैवसे बढ़कर नहीं कहलाता है, पुरुषार्थ करने पर भी जो काम दैवयोगसे सिद्ध नहीं होता है तो मनुष्य धर्ममार्गमेंसे भ्रष्ट होकर आपत्तिमें ही आपड़ता है और किसी भी कामका आरम्भ करनेकी प्रतिज्ञा करके उस कामको आरम्भ करनेके अनन्तर भयके कारण उस कामको छोड़ दियाजाता है तो उसको

हि देवोत्यगाद्देवांस्तपसा विक्रमेण च। तस्माच्छरणमभ्येमि गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि महाभूतदर्शने
द्रौणिचिन्तायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच। एवं स चिन्तयित्वा तु द्रोणपुत्रो विशाम्पते। अवतीर्य रथोपस्थाद्देवेशं प्रणतः स्थितः ॥१॥ द्रौणिरुवाच। उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं सर्वमीशानमीश्वरम्। गिरिशं वरदं देवंभव भावनमीश्वरम् ॥२॥ शितिकण्ठमजं शुक्रं दक्षक्रतुहरं हरम्। विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥३॥ श्मशानवासिनं दृप्तं महागणपतिं विभुम्।

देव, उमापति, मुण्डमालाको धारण करनेवाले, भग देवताके नेत्रोंका नाश करनेवाले, पापहारी, शूलपाणि रुद्रदेवकी मैं शरणागत हूँ ॥ २३-२४ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! ऐसा विचार करके अश्वत्थामा रथमेंसे नीचे उतरपड़ा और देवाधिदेव महादेवजीको प्रणाम करके खड़ा२ स्तुति करताहुआ कहनेलगा, ॥ १ ॥ अश्वत्थामा स्तुति करनेलगा, कि-तुम उग्र हो, तुम स्थाणु (अचल) हो, तुम शिव, रुद्र, शर्व, ईशान (सब विद्याओंके स्वामी) हो, तुम ईश्वर, गिरिश (पर्वत पर शयन करनेवाले) हो, तुम वरदान देनेवाले और देव हो तुम भवभावन (संसारको उत्पन्न करनेवाले) ईश्वर हो ॥ २ ॥ तुम शितकण्ठ (नीले कण्ठवाले) अजन्मा, शुक्ररूप (वीर्य) हो, तुम दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले, हर (पापोंका नाश करनेवाले) और विश्वरूप हो, तुम विरूपाक्ष (भयानक

विद्यते। इष्वस्त्रोत्तमभर्त्तारं दिगन्तं देशरक्षिणम् ॥ १० ॥ हिरण्यकवचं देवं चन्द्रमौलिविभूषणम् । प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना॥ ११ ॥ इमाञ्चेदापदं घोरां तराम्यद्य सुदुस्तराम् । सर्वभूतोपहारेण यक्ष्येऽहं शुचिना शुचिम्॥१२॥इति तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा योगात् सुकर्मणः। पुरस्तात् काञ्चनी वेदी प्रादुरासीन्महात्मनः ॥ १३ ॥ तस्यां वेद्यां तदा राजंश्चित्रभानुरजायत । स दिशो विदिशः खञ्च ज्वालाभिरभिपूरयन् ॥१४॥ दीप्तास्यनयनाश्चात्र नैकपादशिरोभुजाः । रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ १५ ॥ द्वीपशैलप्रतीकाशाः प्रादुरासन्महागणाः।

वाले, उमाके आभूषणरूप, ब्रह्मादिसे भी श्रेष्ठ, परात्पर और जिनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ऐसे, उत्तम धनुषको धारण करने वाले, दिशाओंके अन्तमें बसने वाले, देशोंके रक्षक, सुवर्णका कवच पहिरने वाले, मस्तक पर चन्द्रमाका आभूषण धारण करने वाले, भगवान् शङ्कर की मैं परम-समाधिसे शरण लेता हूँ ॥ ९–११ ॥ यदि आज मैं इस महा भयंकर दुस्तर आपत्तिसे तर जाऊँगा तो मैं अपने इस पञ्चभूतके बने हुए पवित्र शरीरका बलिदान देकर आपका पूजन करूँगा ॥१२॥ इस प्रकार पवित्रात्मा अश्वत्थामाके काम करनेके दृढ़ विचारको जानकर, द्रोण-पुत्र महात्मा अश्वत्थामाके सामने सुवर्णकी वेदी प्रकट होगई ॥ १३ ॥ उस वेदीमेंसे अपनी ज्वालाओंसे दिशा उपदिशा और आकाशको भरते हुएसे अग्निदेव प्रकट होगए ॥ १४॥ उसमेंसे चमकीले मुख नयन वाले अनेक भुजा, पैर और शिर वाले, रत्नजटित बाजूबन्द वाले, ऊँची भुजा वाले, हाथीकी समान मोटे और पर्वत

मेषवक्त्रास्तथैवान्ये तथा छागमुखास्तथा ॥२३॥ शंखाभाः शंखवक्त्राश्च शंखवर्णास्तथैव च । शंखमालापरिकराः शङ्खध्वनिसमस्वनाः ॥ २४ ॥ जटाधराः पञ्चशिखास्तथा मुण्डाः कृशोदराः॥चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्जिह्वाः शंकुकर्णाः किरीटिनः ॥२५॥ मौञ्जीधराश्च राजेन्द्र तथाकुञ्चितमूर्धजाः । उष्णीषिणो मुकुटिनश्चारुवक्त्राः स्वलंकृताः ॥ २६ ॥ पद्मोत्पलापीडधरास्तथा मुकुटधारिणः । माहात्म्येन च संयुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥ शतघ्नीवज्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः । भुशुण्डीपाशहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥२८॥ पृष्ठे बद्धेषुधयश्चित्रबाणोत्करास्तथा । सध्वजाः सपताकाश्च सघण्टाः सपरश्वधाः ॥२६॥ महा-

---

समान वर्णवाले, अग्निकी ज्वालाकी समान केशवाले, प्रदीप्त रोमोंवाले, चार भुजावाले, मेढे और बकरेकेसे मुखवाले, शंखकी समान कान्ति वाले, शंखकी समान मुख और वर्ण वाले, शंखोंकी माला पहरने वाले और शंखोंकी सी ध्वनि वाले, जटाधारी, पाँच चुटियों वाले, मुँडे शिर वाले, पतले पेट वाले, चार जीभ वाले, चार डाढ़ वाले, शंकुकेसे कान वाले, मुकुटधारी, मूँजकी कौंधनी वाले, घुँघुराले बाल वाले, पगड़ी वाले, मुकुटधारी, सुन्दर मुख वाले, आभूषणोंसे अलंकृत कमल और उत्पलोंके मुकुट वाले, माहात्म्ययुक्त सैकड़ों और सहस्रों गण तहाँ प्रकट हुए ॥ १५-२७ ॥ तथा हाथमें शतघ्नी, वज्र और मूसल लिये हुए, भुशुण्डी, पाश और दण्डा हाथमें पकड़े हुए, पीठ पर भाथे बाँधने वाले, विचित्र प्रकारके उत्कट बाणों वाले ध्वजा, पताका और परशुओंको थामे हुए, बड़े २ पाश और लकड़ियें हाथमें

धराः समुद्यतकरास्तथा ॥ ३६ ॥ हन्तारो द्विषतां शूराः प्रसह्यासह्यविक्रमाः । पातारोऽसृग्वसौघानां मांसांत्रकृतभोजनाः ॥ ३७ ॥ चूडालाः कर्णिकाराश्च प्रहृष्टाः पिठरोदराः । अतिह्रस्वातिदीर्घाश्च प्रलम्बाश्चातिभैरवाः ॥ ३८ ॥ विकटाः काललम्बोष्ठा बृहच्छेफाण्डपिण्डिकाः । महार्हनाना विकटा मुंडाश्च जटिलाः परे ३९ सार्केन्दुग्रहनक्षत्रां द्यां कुर्युस्ते महीतले । उत्सहेरंश्च ये हंतुं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥४०॥ ये च वीतभया नित्यं हरस्य भ्रुकुटीसहाः । कामकारकरा नित्यं त्रैलोक्यस्ये-

हुए भुजाएँ उठा रहे थे ॥ ३६ ॥ वे शत्रुओंको मारने वाले और असह्य पराक्रमी थे तथा रक्त और वसाको पी जाते थे और मांस तथा आंतड़ियोंको खाजाते थे ३७ उन सबके कानों और मस्तकों पर गहने थे और सब प्रसन्न थे, उनके पेट घड़ेके ठीकरेकी समान थे, कितने बहुत ठिगने थे और कितने बहुत ही लम्बे थे, कितने ही बहुत ही मोटे थे, कितने देखनेमें बहुत ही भयानक थे।३८। कितनों ही की आकृति विकृत और कितनों ही के ओठ, इन्द्रिय, वृषण और पैरकी पिंडलियें बड़ी मोटी थीं और कितनोंहीके बहुमूल्य नानाप्रकारके मुकुट थे और बहुतों के माथे टेढ़े बेडे थे, कितनोंहीके मस्तक पर जटाएँ थीं ॥ ३९ ॥ वे सब चन्द्र, सूर्य, ग्रह और आकाशको पृथ्वी पर गिरानेकी शक्ति रखते थे और वे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चारों प्रकारके प्राणियोंका संहार कर सकते थे ॥४०॥ वे निर्भय होकर महेश्वरके भ्रूभंग को भी सह सकते थे, सदा इच्छानुसार काम किया करते थे और तीनों लोकोंके ईश्वरके भी ईश्वर थे ।४१।

गर्जितैः ४७ सन्त्रासयन्तस्ते विश्वमश्वत्थामानमभ्ययुः। संस्तुवन्तो महादेवं भाः कुर्वाणाः सुवर्चसः ॥ ४८ ॥ विवर्द्धयिषवो द्रौणेर्म्महिमानं महात्मनः। जिज्ञासमानास्तत्तेजः सौप्तिकञ्च दिदृक्षवः ॥ ४६ ॥ भीमोग्रपरिघालातशूलपट्टिशपाणयः। घोररूपाः समाजग्मुर्भूतसंघा समन्ततः ॥ ५० ॥ जनयेयुर्भयं ये स्म त्रैलोक्यस्यापि दर्शनात्। तान् प्रेक्षमाणोऽपि व्यथां न चकार महाबलः ॥५१॥ अथ द्रौणिर्धनुष्पाणिर्बद्धगोधांगुलित्रवान्। स्वयमेवात्मनात्मानमुपहारमुपाहरत् ॥ ५२ ॥ धनूंषि समिधस्तत्र पवित्राणि सिताः शराः। हविरात्मवतश्चात्मा

को थपोड़ कर चीत्कार और गर्जना कर विश्वको त्रास देते हुए और अपनी कान्तिसे दिशाओंमें प्रकाश फैलाते हुए तथा महादेवकी स्तुति करते हुए, द्रोणपुत्र महात्मा अश्वत्थामाकी महिमाको बढ़ानेकी इच्छासे और उसके तेजको जाननेकी इच्छासे तथा सौप्तिक–संहार देखनेकी इच्छासे चारों ओरसे महात्मा अश्वत्थामाके पास आने लगे ॥ ४५–४६ ॥ वे सब भूत भयंकर थे, वे भयंकर तथा उग्र परिघ, शूल, पट्टिश, बरेंटियोंको लिये हुए चारों दिशाओंमेंसे आने लगे ॥ ५० ॥ जिनको देखनेसे तीनों लोक डर जाँय उन भूतगणोंको देखकर भी अश्वत्थामाको भय नहीं लगा ॥ ५१ ॥ उसके पीछे गोहके चमडेके मोजे पहिरने वाले और हाथमें धनुष धारण करे हुए अश्वत्थामाने अपने शरीरकी बलि देनेका विचार किया ।५२। हे भरतवंशी राजन्! उस कर्मको पूर्ण करनेके लिये अश्वत्थामाने धनुषको काष्ठके स्थानमें रक्खा और तीक्ष्ण बाणोंको दर्भ बनाया तथा अपनी आत्माको हविरूपसे

इत्युक्त्वा द्रौणिरास्थाय तां वेदीं दीप्तपावकाम्। सन्त्यज्यात्मानमारुह्य कृष्णवर्त्मन्युपाविशत् ॥ ६० ॥ तमूर्ध्वबाहुं निश्चेष्टं दृष्ट्वा हविरुपस्थितम्। अब्रवीद्भगवान् साक्षान्महादेवो हसन्निव ॥ ६१ ॥ सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च। क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च बुद्ध्या च वचसा तथा ॥ ६२ ॥ यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा। तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥ ६३ ॥ कुर्वता तस्य सम्मानं त्वाञ्च जिज्ञासता मया। पञ्चालाः सहसा गुप्ता मायाश्च बहुशः कृताः॥६४॥ कृतस्तस्यैव सम्मानंपञ्चालान्रक्षता मया। अभिभूतास्तु कालेन नैषामद्यास्ति जीवितम् ॥ ६५ ॥एवमुक्त्वा महा-

मेरे शरीरको ग्रहण करो ॥५९॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इस प्रकार स्तुति करके अग्निसे प्रदीप्त वेदीके ऊपर चढ़गया और अग्निमें शरीर त्याग करनेके लिये दोनों हाथ ऊँचे कर हिले डुले बिना स्थिर हो अग्निके बीचमें आसन लगाकर बैठ गया अश्वत्थामाको अग्निमें बलिरूपसे पड़े हुए देखकर साक्षात् भगवान् महादेव हँस कर बोले कि–॥ ६०--६१ ॥ उत्तम कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने सत्य–शौच–सरलता–दान–तप–नियम–क्षमा–भक्ति–धैर्य–बुद्धि और वाणीसे मेरी विधिपूर्वक उपासना की है, अतः श्रीकृष्णसे बढ़कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है ॥६२॥६३॥ मैंने श्रीकृष्णका मान रखनेके लिये और तेरे स्वरूपको जाननेकी इच्छासे पञ्चालोंकी रक्षा की थी और बारंबार बहुतसी मायायें भी की थीं ॥ ६४ ॥ पञ्चाल राजाओंकी रक्षा मैंने श्रीकृष्णका सम्मान करनेके लिये ही की थी, परंतु अब पञ्चालोंका समय आगया है अतः वह अब जीवित

हत्वा सोमकपाण्डवान्। दुर्योधनस्य पदवीं गतौ परमिकां रणे ॥ ३ ॥ पाञ्चालैर्निहतौ वीरौ कच्चिन्नस्तु स्वपतां क्षितौ। कच्चित्ताभ्यां कृतं कर्म तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ४
सञ्जय उवाच। तस्मिन् प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महात्मनि। कृपश्च कृतवर्मा च शिबिरद्वार्यतिष्ठताम् ॥ ५ ॥
अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ। प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ यत्तौ भवन्तौ पर्याप्तौ सर्वक्षत्रस्य नाशने। किं पुनर्योधशेषस्य प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ ७ ॥ अहं प्रवेक्ष्ये शिबिरं चरिष्यामि च कालवत्। यथा न कश्चिदपि वां जीवन्मुच्येत मानवः ॥ ८ ॥

और पाञ्चालोंको मार वे दुर्योधनकीसी परमपदवीको तो प्राप्त नहीं होगए ? ॥ ३ ॥ वे पाञ्चालों से मारे जाकर भूमिमें तो नहीं सोगए उन्होंने क्या कुछ काम भी किया था ? हे सञ्जय ! यह सब तू मुझे बता ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा कि–हे राजन् ! महात्मा द्रोणपुत्र जब शत्रुओंकी छावनीमें घुसा, तब कृतवर्मा और कृपाचार्य छावनीके दरवाजे पर खड़े थे ॥ ५ ॥ अश्वत्थामा उन दोनों महारथियोंको लड़नेके लिये तयार हुए देखकर बड़े ही हर्षमें भरगया, फिर धीरे२ उनसे कहने लगा, कि– ॥ ६ ॥ यदि तुम दोनों फेंट बाँधकर लड़नेको तयार होजाओ तो सब क्षत्रियोंका नाश करसकते हो, तो फिर मरते२ बचेहुए और विशेषकर निद्राके वशमें हुओंको मारडालनेमें तो कहना ही क्या है ? ॥७॥ मैं छावनीमें पहुँचता हूँ और तहाँ कालकी समान घूमूँगा, मेरा विचार है, कि–तुम यहाँ छावनीके द्वार पर खड़े रहो और ध्यान रक्खो, कि–कोई भी मनुष्य जीताहुआ छावनीमेंसे

पते । संबुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः ॥१५॥ अभ्य-
जानदमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम् । तमुत्पतन्तं शयना-
दश्वत्थामा महाबलः ॥ १६ ॥ केशेष्वालम्ब्य पाणिभ्यां
निष्पिपेष महीतले । स बलात्तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च
भारत ॥ १७ ॥ निद्रया चैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं
तदा । तमाक्रम्य पदा राजन् कण्ठे चोरसि चोभयोः १८
नदन्तं विस्फुरन्तञ्च पशुमारममारयत् । तुदन्नखैस्तु स
द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत् ॥ १९ ॥ आचार्यपुत्र शस्त्रेण
जहि मां मा चिरं कृथा । त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान्
गच्छेयं द्विपदांवर ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा तु वचनं विर-

रथी अश्वत्थामाको देखा, वह तुरन्त ही शय्यापरसे उठने लगा, परन्तु महारथी अश्वत्थामाने तत्काल दोनों हाथोंसे जोरसे अश्वत्थामाकी चोटी पकड़ कर उसको पृथ्वी पर दबादिया ॥ १३-१६ ॥ उस समय धृष्टद्युम्न भय और निद्राके वशमें होरहा था, इसलिये वह ज़रा भी पराक्रम नहीं दिखासका, अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको पृथिवी पर गिराकर उसकी छाती और कण्ठ दोनोंको घुटनोंसे दबादिया ॥ १७-१८ ॥ और जैसे पशुको पीटते हैं तैसे ही धृष्टद्युम्नको पीटनेलगा, उस समय धृष्टद्युम्न चीखें मारने लगा और ऊँचा नीचा होनेलगा, परन्तु वह सब व्यर्थ था, कुछ वश नहीं चला, तब धृष्टद्युम्न अश्वत्थामा को नखोंसे बकोटने लगा और अन्तमें वह बड़बड़ाती हुई वाणीमें अश्वत्थामासे कहने लगा, कि- ॥ १९ ॥ अरे आचार्यके पुत्र ! तू मुझे शस्त्रसे मारडाल, विलम्ब न कर, हे महापुरुष ! तू ऐसा बर्ताव कर कि-मैं तेरे हाथसे मरकर पुण्यलोकोंमें चलाजाऊँ

निष्ठत तेजस्वी रथं प्राप्य सुदर्शनम् । स तस्य भवनाद्राजन् निष्क्रम्यानादयन्दिशः ॥ २७ ॥ रथेन शिबिरं प्रायाज्जिघांसुर्द्विषतो बली । अपक्रान्ते ततस्तस्मिन् द्रोणपुत्रे महारथे ॥ २८ ॥ सहितैः रक्षिभिः सर्वैः प्रणेदुर्योषितस्तदा । राजानं निहतं दृष्ट्वा भृशं शोकपरायणाः २९ व्याक्रोशन् क्षत्रियाः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य भारत । तासान्तु तेन शब्देन समीपे क्षत्रियर्षभाः ॥ ३० ॥ क्षिप्रञ्च समनह्यन्त किमेतदिति चाब्रुवन् । स्त्रियस्तु राजन् वित्रस्ता भारद्वाजं निरीक्ष्य ताः ॥ ३१ ॥ अब्रुवन् दीनकण्ठेन क्षिप्रमाद्रवतेति वै । राक्षसो वा मनुष्यो वा नैनं जानीमहे वयम् ॥३२॥ हत्वा पाञ्चालराजानं रथमारुह्य तिष्ठति।

और उसके तम्बूमेंसे बाहर निकल आया और उत्तम रथमें बैठकर दिशाओंको गुञ्जारता हुआ शत्रुओंको मारनेके लिये पांडवोंकी छावनीमें घूमनेलगा, महारथी अश्वत्थामाके तंबूमेंसे बाहर चलेजाने पर उसकी सब रानियें और रक्षक राजा धृष्टद्युम्नको मराहुआ देखकर शोकसे बहुत ही व्याकुल होगये और वे डीख फोड़कर रोने लगे ॥ २३–२९ ॥ उनके विलापको सुनकर समीप मेंके क्षत्रिय तुरन्त कवच पहरकर तयार होगये और कहनेलगे, कि–क्या होगया ? क्या होगया ? तब अश्वत्थामाको देखकर भयभीत हुई स्त्रियें गद्गद हुए कण्ठसे कहने लगीं, कि–दौड़ो रे ! जल्दी दौड़ो ! यह राक्षस है या मनुष्य है, हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३०–३२ ॥ परन्तु वह पञ्चालराजको मारकर रथमें बैठाहुआ छावनीमें घूमरहाहै, यह सुनते ही मुख्य २ योधा बड़ी शीघ्रतासे दौड़ेहुए आये और उन्होंने अश्वत्थामा

ततोऽन्यान् समुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥ संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान्। स्फुरतो वेपमानांश्च शमितेव पशून्मखे ॥ ३९ ॥ ततो निस्त्रिंशमादाय जघानान्यान् पृथग्जनान्। भागशो विचरन्मार्गानसियुद्धविशारदः ॥४०॥ तथैव गुल्मे संप्रेक्ष्य शयानान्मध्यगौल्मिकान्। श्रान्ताञ्व्यस्तायुधान् सर्वान् क्षणेनैव व्यपोथयत् ॥ ४० ॥ योधानश्वान् द्विपांश्चैव प्राच्छिनत् स वरासिना। रुधिरोक्षितसर्वांगः कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ४२ ॥ विस्फुरद्भिश्च तैर्द्रौणिर्निस्त्रिंशस्योद्यमेन च। आक्षेपणेन

आदिको मारनेके अनन्तर निद्राके वशमें पड़े हुए दूसरे महारथियोंके ऊपर चढ़ाई की और यज्ञभूमिमें घातक जैसे सब पशुओंका संहार करता है तैसे ही अश्वत्थामाने भी तलवार लेकर काँपते हुए सब महारथियोंको मार डाला ॥ ३४-३९ ॥ तलवारके युद्धमें चतुर अश्वत्थामा आवश्यकतानुसार अनेकों प्रकारके युद्धके पैंतरोंसे छावनी में घूमनेलगा, उसने छावनीके थानेमें देखा तो मध्यम सैनिक परिश्रमके कारण निद्राके वशमें होरहे थे और उनके शस्त्र इधर उधर पड़े थे, उन सबोंको भी अश्वत्थामाने क्षणभरमें तलवारसे काटडाला, योधा, घुड़सवार, घोड़े तथा हाथियोंको भी बहुमूल्य तलवारसे काटडाला, उस समय अश्वत्थामाका सब शरीर शत्रुओंके रुधिरकी धारें उड़नेसे लोहूलुहान होरहा था, इसलिये उस समय वह कालके रचे हुए अन्तककी समान मालूम होता था ॥ ४०-४२ ॥ रुधिरसे भरेहुए जो शत्रु चढ़कर आते थे, उनके शरीरोंमेंसे टपकती हुई रुधिरकी बूँदोंसे लोहूलुहान हुई तलवारको ऊँची करतेमें

द्रौपदेया विशाम्पते ॥ ४८॥ अवाकिरञ्छरव्रातैर्भारद्वाजमभीतवत् । ततस्तेन निनादेन संप्रबुद्धाः प्रभद्रकाः ॥४६॥ शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन् । भारद्वाजः स तान् दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः ॥ ५० ॥ ननाद बलवन्नादं जिघांसुस्तान्महारथान् । ततः परमसंक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ५१ ॥ अवरुह्य रथोपस्थात्त्वरमाणोऽभिदुद्रुवे । सहस्रचन्द्रं विमलं गृहीत्वा चर्म संयुगे ॥ ५२ ॥ खड्गञ्च विपुलं दिव्यं जातरूपपरिस्कृतम् । द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यधमद्बली ॥ ५३ ॥ ततः स नरशार्दूल प्रतिविन्ध्यं महाहवे । कुक्षिदेशेऽवधीद्राजन् स हतो न्यपतद्भुवि ॥ ५४ ॥ प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिन्तु सुतसोमः

दूसरे धनुषधारी महारथी तो सहमगये, परन्तु अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको मारडाला, यह सुनकर द्रौपदीके पुत्र निर्भयपनेके साथ अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, उनके शब्दको सुनकर प्रभद्रक जागउठे ॥ ४८–४६ ॥ शिखण्डी भी अश्वत्थामाके बाण मारने लगा, उनको बाणोंकी वर्षा करते देखकर अश्वत्थामाने जोरमें भरकर बड़ी भारी गर्जनाकी, फिर उसने महारथियों को मारनेकी ठानली तथा अपने पिताके मरणकी याद आनेसे वह बड़े ही कोपमें भरगया ॥५०–५१॥ वह रथके ऊपरसे नीचे उतरपड़ा और चाँदीकी हजारों फुल्लियों से चमकती हुई ढाल तथा सोनेसे मढ़ीहुई निर्मल और दिव्य तलवार लेकर एकसाथ द्रौपदीके पुत्रोंके ऊपरको झपटपड़ा और उस नरशार्दूलने तलवारसे प्रतिविंध्यकी कोखको चीरकर मारडाला, वह मरकर रणभूमिमें गिरपड़ा ॥ ५२–५४ ॥ तब प्रतापी सुतसोमने द्रोणपुत्र

श्रुतकीर्त्तिर्महारथः। अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत् ॥६१॥ तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः। सकुण्डलं शिरः कायाद् भ्राजमानमुपाहरत् ॥६२॥ ततो भीष्मनिहन्तारं सह सर्वैः प्रभद्रकैः। अहनत् सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली ॥ ६३ ॥ शिलीमुखेन चान्येन भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत्। स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः ६४ शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना। शिखण्डिनं ततो हत्वा क्रोधाविष्टः परन्तपः ॥ ६५ ॥ प्रभद्रकगणान् सर्वानभिदुद्राव वेगवान्। यच्च शिष्टं विराटस्य बलन्तु भृशमाद्रवत् ॥ ६६॥ द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि। चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ६७

विकरालसूरत हो मरकर भूमिमें गिरपड़ा ॥५९-६० ॥ उस शब्दको सुन महारथी श्रुतकीर्त्ति अश्वत्थामाके पास आ उस पर बाण बरसाने लगा ॥ ६१ ॥ परन्तु अश्वत्थामाने उसकी बाणोंकी बौछारको ढाल पर रोक लिया और कुण्डलसे शोभायमान उसके शिरको धड़से अलग कर दिया ॥ ६२ ॥ इसके पीछे बली अश्वत्थामा नानाप्रकारके बाणोंसे भीष्मके मारनेवाले शिखण्डीको और प्रभद्रकोंको मारनेलगा ॥ ६३ ॥ क्रोधमें भरे महाबली द्रोणपुत्रने शिखण्डीके भौंके बीचमें एक बाण मारा ॥ ६४ ॥ फिर शिखंडीके पास पहुँचकर उसने उसके तलवार मार दो टुकड़े कर दिये, शिखंडीको मारनेके बाद क्रोधमें भरा ॥ ६५ ॥ महाबली अश्वत्थामा वेगके साथ सब प्रभद्रकों पर टूट पड़ा और जो राजा विराट का सेनादल बचा था उस पर भी झपटा ॥ ६६ ॥ महाबली अश्वत्थामा द्रुपदके पुत्र, पौत्र और मित्रोंका देख

पश्यन् द्रौणिमेव च ॥७३॥ तांस्तु दैवहतान् पूर्वं पश्चाद्
द्रौणिर्न्यपातयत् । त्रासयन् सर्वभूतानि विनदन् भैरवा-
न्रवान् ॥ ७४ ॥ तदनुस्मृत्य ते वीरा दर्शनं पूर्वकालिकम्।
इदं तदित्यमन्यन्त दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ७५ ॥ ततस्तेन
निनादेन प्रत्यबुध्यन्त धन्विनः । शिविरे पाण्डवेयानां
शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७६ ॥ सोऽच्छिनत् कस्यचित् पादौ
जघनञ्चैव कस्यचित् । कांश्चिद्बिभेद पार्श्वेषु कालसृष्ट
इवान्तकः ॥ ७७ ॥ अत्युग्रप्रतिपिष्टैश्च नदद्भिश्च भृशो-
त्कटैः । गजाश्वमथितैश्चान्यैर्मही कीर्णाभवत् प्रभो॥७८॥
क्रोशतां किमिदं कोऽयं कः शब्द किन्नु किं कृतम् । एवं

जाती हुई देखा करते थे और अश्वत्थामा नित्य मानो
सबोंका संहार कररहा हो,ऐसा दीखा करता था ६९-७३
पहले उन योधाओंको दैव मारडालता था, तदनन्तर
अश्वत्थामा भयानक गर्जनासे सब प्राणियोंको त्रास
देताहुआ मारडालता था ॥ ७४ ॥ दैवके कारण कष्टमें
पड़ेहुए वीर पुरुष ऊपर वर्णन कियेहुए दृश्यको याद कर
'यही वह पुरुष है' ऐसा मानने लगे ॥७५॥ अश्वत्थामा
की गर्जनाको सुनकर पाण्डवोंकी छावनीमें सैकड़ों और
सहस्रों धनुषधारी जाग उठे थे ॥ ७६ ॥ कालके रचेहुए
मृत्युकी समान उस अश्वत्थामाने किसीके पैर काट
डाले, किसीकी जाँघें काटडालीं और किन्हींकी पसलियें
फोड़ दीं ॥७७॥ हे राजन् ! अतिभयानक रूपसे कुचले
हुए, महाउत्कट चीखें मारतेहुए और हाथी तथा घोड़ों
के कुचले हुए मनुष्योंसे भूमि भरगयी थी ॥ ७८ ॥ यह
क्या हुआ ? यह कौन है ? यह शब्द किसका है ? यह
क्या किया ? इत्यादि वाक्य कहते और चिल्लाते हुए

विधावति । शरवर्षैश्च विविधैरवर्षच्छात्रवांस्ततः ॥८५॥
पुनश्च सुविचित्रेण शतचन्द्रेण चर्मणा । तेन चाकाश-
वर्णेन तदाचरत् सोऽसिना ॥ ८६ ॥ तथा स शिबिरं तेषां
द्रौणिराहवदुर्मदः । व्यक्षोभयद् राजेन्द्र महाह्रदमिव
द्विपः ॥ ८७ ॥ उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन् विचेतसः।
निद्रार्त्ताश्च भयार्त्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः ॥ ८८ ॥
विस्वरं चुक्रुशुश्चान्ये बह्वबद्धं तथावदन्। न च स्म प्रत्य-
पद्यन्त शस्त्राणि वसनानि च ॥ ८९ ॥ विमुक्तकेशाश्चा-
प्यन्ये नाभ्यजानन् परस्परम्। उत्पतन्तोपतञ्छ्रान्ताः केचि-
त्तत्राभ्रमंस्तदा ॥ ९० ॥ पुरीषमसृजन् केचित् केचिन्मूत्रं
प्रसुस्रुवुः । बन्धनानि च राजेन्द्र सञ्छिद्य तुरगा द्विपाः

अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ८५ ॥ फिर
सुवर्णकी सौ फुल्लियोंवाली विचित्र ढाल और आकाश
के वर्णकी तलवार ले अश्वत्थामा छावनीमें घूमनेलगा॥८६
हे राजेन्द्र ! युद्धमें मदमस्त अश्वत्थामाने हाथी जैसे बड़े
तालावको घँघोल डाले तैसे पाण्डवोंको क्षुब्ध करडाला
॥ ८७ ॥ इस संहारके समय अश्वत्थामाकी गर्जनाको
सुन सोते हुए योधा एक दम जाग उठे और डर गये
तथा चेतनाशून्यसे हो टेढ़े तिरछे भागने लगे ॥ ८८ ॥
कितने ही चीखने और किलियें मारने लगे, कितने ही
प्रलाप करनेलगे, वे अपने वस्त्र और शस्त्रोंको ढूँढ रहे
थे परन्तु वे उनको मिलते ही नहीं थे ॥ ८९ ॥ कितनोंके
बाल बिखर गए थे, कितने ही एक दूसरेको भूलगए थे,
वे इधर उधर भागनेके कारण थककर गिर गए ॥ ९० ॥
कितनोंहीका मलमूत्र निकल पड़ा था, घोड़े और हाथी
रस्से तुड़ा भागते हुए छावनीमें गड़बड़ी मचारहे थे,कितने

अताडयंस्तथा मज्ञ स्तथामृद्नंश्च भारत। ते भग्नाः प्रपतन्ति स्म निघ्नन्तश्च परस्परम् ॥ ९९ ॥ न्यपातयंस्तथा चान्यान् पातयित्वा तदापिषन्। विचेतसः सनिद्राश्च तमसा चावृता नराः ॥ १०० ॥ जघ्नुः स्वानेव तत्राथ कालेनाभिप्रचोदिताः। त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वास्थास्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः ॥ १०१ ॥ प्राद्रवन्त यथाशक्ति कान्दिशीका विचेतसः। विप्रनष्टाश्च तेऽन्योन्यं नाजानन्तस्तथा विभो ॥ १०२ ॥ क्रोशन्तस्तात पुत्रेति दैवोपहतचेतसः। पलायतां दिशस्तेषां स्वानप्युत्सृज्य बान्धवान् ॥१०३॥ गोत्रनामभिरन्योन्यमाक्रन्दन्त ततो जनाः। हाहाकारञ्च कुर्वाणाः पृथिव्यां शेरते परे ॥ १०४ ॥ तान्

भूमिमें गिरने लगे ॥ ९८-९९ ॥ इतना ही नहीं वे दूसरोंको भी भूमिमें लुटाने लगे और गिरा कर पैरोंसे खुँदलने लगे (इस संहारके समय) कितने ही पुरुष निद्रामें भरे बेहोश पड़े हुए थे, वे अँधेरेमें (उठकर) कालकी प्रेरणासे अपने ही योधाओंको मारने लगे, उस हड़बड़ीमें द्वारपाल द्वारोंको और थानेदार थानोंको छोड़ कर दिशाओंका भान न रहने कारण भयके मारे मूढ़से हो अपनी शक्तिके अनुसार छावनीमें ही चक्कर काटने लगे और एक दूसरेको न पहिचान आपसमें टकरा कर नष्ट होगए ॥ १००-१०२ ॥ और प्रारब्धके मारे बहुतसे मनुष्य हाय! बेटा! हाय चाचा! कहकर चिल्ला रहे थे, और कितने ही योधा अपने बान्धवोंको छोड़ इधर उधर भाग रहे थे और कितने ही दूसरोंका नाम और गोत्र लेले कर चिल्ला रहे थे और बहुतसे हाय २ करते २ ही पृथ्वीमें गिरे जाते थे ॥१०३-१०४ ॥ अश्वत्थामा रणमें

ष्यचरत्कृतहस्तवत् । काँश्चिदापततो वीरानपरांश्चैव धावतः ॥१११॥ व्ययोजयत् खड्गेन प्राणैर्द्विजवरोत्तमः । कांश्चिद्योधान् स खड्गेन मध्ये संछिद्य वीर्यवान् ११२ अपातयद् द्रोणपुत्रः संरब्धस्तिलकाण्डवत् । विनदद्भिर्भृशायस्तैर्नराश्वद्विरदोत्तमैः ॥ ११३ ॥ पतितैरभवत् कीर्णा मेदिनी भरतर्षभ । मानुषाणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च ॥ ११४॥ उदतिष्ठन् कबन्धानि बहून्युत्थाय चापतन् । सायुधान् साङ्गदान् बाहून्विचकर्त्त शिरांसि च ॥ ११५ ॥ हस्तिहस्तोपमानूरून् हस्तान् पादांश्च भारत । पृष्ठच्छिन्नान् पार्श्वच्छिन्नान् शिरश्छिन्नांस्तथा परान् ॥११६॥ स महात्माकरोद् द्रौणिः कांश्चिच्चापि पराङ्मुखान् । मध्य-

---

प्रकाशसे पिताको प्रसन्न करनेवाला अश्वत्थामा तलवार लेकर शिक्षित पुरुषकी समान छावनीमें घूमनेलगा ॥११॥ कितने ही योधा उसके ऊपर चढ़ आये और कितने ही भाग गये, वह तलवारसे योधाओंका नाश कररहा था ॥१२॥ पराक्रमी और क्रोधमें भरेहुए अश्वत्थामाने कितने ही योधाओंको तलवारके झटकेसे मारकर तिलके पेडकी समान बीचमेंसे ही काटकर भूमि पर गिरादिया ॥१३॥ गर्जना करते तथा बहुत ही घायल होकर पड़ेहुए मनुष्य घोड़े और उत्तम हाथियोंसे पृथिवी ढकगयी, हजारों मनुष्य मरकर पृथिवी पर पड़ेहुए थे ॥ १४ ॥ उनमेंसे अनेकों धड़ खड़े होजाते थे और खड़े होते ही गिरपड़ते थे, हे भरतवंशी राजन् ! महात्मा अश्वत्थामाने कितनों हीके शस्त्रसहित और बाजूबन्द पहरेहुए भुजदण्डोंको, कितनोंहीकी हाथीकी शुण्डकी समान साँथलोंको और कितनोंहीके पैरोंको तलवारसे काटडाला, कितनोंहीकी

कर्मभिः॥ १२२ ॥ असान्निध्याद्धि पार्थानामिदं नः कदनं कृतम् । न चासुरैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः॥ १२३ ॥ शक्यो विजेतुं कौन्तेयो गोता यस्य जनार्दनः । ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १२४ ॥ न स सुप्तं प्रमत्तं वा न्यस्तशस्त्रं कृताञ्जलिम् । धावन्तं मुक्तकेशं वा हन्ति पार्थो धनञ्जयः ॥ १२५ ॥ तदिदं नः कृतं घोरं रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः । इति लालप्यमानाः स्म शेरते बहवो जनाः ॥ १२६ ॥ स्तनताञ्च मनुष्याणामपरेषाञ्च कूजताम् । ततो मुहूर्त्तात् प्राशाम्यत्स शब्दस्तुमुलो महान् ॥ १२७ ॥ शोणितव्यतिषिक्तायां वसुधायाञ्च भूमिप । तद्रजस्तुमुलं घोरं क्षणेनांतरधीयत ॥ १२८ ॥

था ॥ १६ २२ ॥ पांडवोंके पास न होनेसे ही इन्होंने हमारा संहार करडाला है, परन्तु जनार्दन श्रीकृष्ण जिसके रक्षक हैं ऐसे अर्जुनको तो असुर, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस भी नहीं जीतसकते, ब्राह्मणोंकी रक्षा करने वाला, सत्यवादी, इन्द्रियोंका दमन करनेवाला और सब प्राणियोंके ऊपर दया रखनेवाला अर्जुन सोतेहुएको, प्रमत्तको, शस्त्रहीनको, दोनों हाथ जोड़कर खड़े हुएको, भागतेहुएको और खुले केशवालेको नहीं मारता है ॥२३-२५॥ मालूम होता है, कि-यह घोर कर्म तो दारुण कर्म करनेवाले राक्षसोंने ही किया है इसप्रकार बातें करतेहुए बहुतसे लोग तो बाहर न निकलकर छावनीमें ही सोते रहे थे ॥ २६ ॥ गर्जना करतेहुए तथा हायर करतेहुए मनुष्योंका महाघोर शब्द दो घड़ीके बाद शान्त पड़गया ॥ २७ ॥ और हे राजन् ! पृथिवीके लोहूसे भीगजानेके कारण उड़ती हुई भयानक धूलभी क्षणभर

शंकद्गता रजस्वलाः। जटिला दीर्घशंखाश्च पञ्चपादा। महोदराः ॥ १३५ ॥ पश्चादंगुलयो रूक्षा विरूपा भैरवस्वनाः। घण्टाजालावनद्धाश्च नीलकण्ठा विभीषणाः१३६ सपुत्रदारा सुक्रूराः सुदुर्दर्शाः सुनिर्घृणाः। विविधानि च रूपाणि तत्राहश्यन्त रक्षसाम् ॥ १३७ ॥ पीत्वा च शोणितं हृष्टाः प्रानृत्यन् गणशो परे। इदं परमिदं मेध्यमिदं स्वाद्विति चाब्रुवन्। । १३८ ॥ मेदोमज्जास्थिरक्तानां वसानाञ्च भृशाशिताः। परमांसानि खादन्तः क्रव्यादा मांसजीविनः ॥ १३९ ॥ वसाश्चैवापरे पीत्वा पर्यधावन् विकुक्षिकाः। नानावक्त्रास्तथा रौद्राः। क्रव्यादाः पिशिताशिनः ॥ १४० ॥ अयुतानि च तत्रासन्प्रयुतान्यर्बुदानि च। रक्षसां घोररूपाणां महतां क्रूरकर्मणाम् १४१

धूलिसे सनेहुए, शिर पर बड़े२ केश रक्खे, बड़े२ कपालों वाले, पाँच पैर और मोटे पेटवाले थे ॥ ३५ ॥ किन्हींकी पीठमें अंगुलि थीं, रूखे शरीरवाले, विरूप, भयानक, दुन्द मचानेवाले, घूँघरुओंके गुच्छे बाँधेहुए, कृष्णकण्ठ, भयानक दीखनेवाले अत्यन्त क्रूर और बड़े ही निर्दयी राक्षस पुत्र और स्त्रियोंके सहित घूमरहे थे ॥३६-३७॥ उन राक्षसोंमें कितने ही रुधिर पोकर आनन्दमें भरेहुए नाचरहे थे, कोई यह उत्तम है, यह पवित्र है, यह स्वादु है ऐसी बातें कररहे थे ॥३८॥ मांसजीवी राक्षस मरेहुओंका मांस खाकर, मेद मज्जा, हड्डी, लोहू और चरबीको पीकर बड़े ही तृप्त होरहे थे ॥ ३९ ॥ जो बिना पेटके, अनेकों मुखोंवाले, मांसाहारी, भयानक थे वे राक्षस चरबीको पीकर आनन्दके साथ इधर उधरको दौड़रहे थे ॥४०॥ हे राजन् ! उस छावनीमें हजारों लाखों और

सङ्कुल्य वीर्यवान् ॥ १४७ ॥ आचख्यौ कर्म तत् सर्वं हृष्टः संहर्षयन् विभो । तावप्याचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ॥ १४८॥ पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिकृत्तान् सहस्रशः । प्रीत्या चोच्चैरुदक्रोशंस्तथैवास्फोटयंस्तलान् १४९ एवं विधा हि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये । प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत् सुभृशदारुणा ॥ १५० ॥ असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः । तादृशा निहता यत्र कृत्वास्माकं जनक्षयम् ॥१५१॥ धृतराष्ट्र उवाच । प्रागेव सुमहत्कर्म द्रौणिरेतन्महारथः । नाकरोदीदृशं कस्मान्मत्पुत्रविजये धृतः ॥ १५२ ॥ अथ कस्माद्धते क्षुद्रं कर्मेदं कृत-

शान्ति फैलजाने पर छावनीमेंसे बाहर चला आया, और कृतवर्मा तथा कृपाचार्यसे मिलकर अपना कियाहुआ सब काम आनन्दके साथ उनको सुनाकर प्रसन्न किया, अश्वत्थामाका प्रिय करनेवाले उन दोनोंने भी अश्वत्थामाको प्रिय समाचार देतेहुए कहा, कि—हमने हजारों पंचालों और हजारों सृञ्जयोंको मारडाला है, यह समाचार सुनकर अश्वत्थामा प्रसन्न हुआ और गर्जना करके वारंवार दोनों खम्भोंको ठोकने लगा, हाथोंसे तालियें बजानेलगा ॥ ४३—४९ ॥ वह रात निद्रासे अचेत पड़ेहुए सोमकोंका संहार करनेके लिये बड़ी दारुण होगयी थी ॥ ५० ॥ वास्तवमें कालके उलट फेरको कोई नहींटाल सकता, जिन्होंने हमारे योधाओंका संहार किया था, इसप्रकार उनका भी सर्वनाश होगया ॥ ५१ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! मेरी पुत्रकी विजय करनेको उद्यत हुए महारथी अश्वत्थामाने ऐसा महाभयानक काम पहलेसे क्यों नहीं किया था ? ॥ ५२ ॥ मेरे

सोमका मत्स्यशेषाश्च सर्वे विनिहता मया। इदानीं कृत-कृत्याः स्म याम तत्रैव मा चिरम्। यदि जीवति नो राजा तस्मै संशामहे प्रियम्॥ १५९ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि रात्रियुद्धे पाञ्चालादिवधेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

संजय उवाच। ते हत्वा सर्वपंचालान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः। आगच्छन् सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः॥ १ ॥ गत्वा चैनमपश्यन्त किञ्चित्प्राणं जनाधिपम्। ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवात्मजम्॥ २ ॥ तं भग्नसक्थं राजेन्द्रं कृच्छ्रप्राणमचेतसम्। वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन् वसुधा-तले॥३॥ वृतं समन्ताद्बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः। शाला-वृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात्॥ ४ ॥ निवारयन्तं

कृत्य होगये, इसलिये अब हम, जहाँ राजा दुर्योधन पड़ा है तहाँ शीघ्रही चलें और यदि हमारा राजा जीवित हो तो हम चलकर उसको यह समाचार सुनावें॥१५८-१५९॥

आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ❀ ❀

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र! वे तीनों महारथी सब पांचाल राजोंको और द्रौपदीके पुत्रोंको मारकर जहाँ घायल हुआ राजा दुर्योधन पड़ा था तहाँ इकट्ठे होकर आये॥ १ ॥ उन्होंने जाकर देखा तो राजा दुर्योधनमें कुछ एक प्राण बाकी था, वे महारथी रथोंपर से उतर कर तुम्हारे पुत्रके चारोंओर खड़े होगये॥ २ ॥ हे राजेन्द्र! जिसकी जङ्घायें टूटगयी थीं ऐसा तुम्हारा पुत्र ज्यों त्यों करके कष्टसे जीरहा था, उसको चेत नहीं था, मुखमेंसे रुधिर ओकरहा था, वह भूमि पर पड़ा था, बड़े ही भयानक दीखने वाले खानेको उद्यत हुए नाहर

दृश्यमूमस्तो शेते दुर्योधनो हतः॥१०॥पश्य चामीकराभस्य चामीकरविभूषिताम्। गदां गदाप्रियस्येमां समीपे पतितां भुवि॥११॥इयमेनं गदा शूरं न जहाति रणे रणे। स्वर्गायापि व्रजन्तं हि न जहाति यशस्विनम्॥१२॥ पश्येमां सह वीरेण जाम्बूनदविभूषिताम्। शयानां शयने हर्म्ये भार्यां प्रीतिमतीमिव॥ १३ ॥ योऽयं मूर्द्धाभिषिक्तानामग्रे यातः परन्तपः। स हतो ग्रसते पांशून् पश्य कालस्य पर्ययम्।१४। येनाजौ निहता भूमावशेरत हतद्विषः। स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम् ॥ १५ ॥ भयान्न-

सेनाओंका पोषण करने वाला दुर्योधन लोहूलुहान हुआ पृथिवी पर पड़ा है, यह देखकर अनुमान होता है, कि-दैवको कोई भी काम करनेमें परिश्रम नहीं पड़ता है।१०। देखो सोनेकेसे रङ्गवाला राजा दुर्योधन, जिसकी गदापर प्रीति है, उसकी क्या दशा है और उसके पास ही सुवर्णसे मढ़ी हुई गदा पृथिवीपर पड़ी है॥११। यह गदा किसी भी रणमें दुर्योधनसे अलग नहीं होती थी, यहाँ तक कि-जब यह स्वर्गमें जायगा तब भी यह यशस्विनी इसके पीछे ही पीछे जायगी ॥ १२ ॥ देखो! देखो! जैसे महालयमें प्रीतिवाली भार्या अपने पतिके साथ शय्या पर सोती हो तैसे ही सोनेकी पत्तरसे सजायी हुई यह गदा वीर दुर्योधनके साथ सोरही है॥ १३ ॥ शत्रुओंको दहलानेवाला जो राजा मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चलता था वह राजा आज घायल होकर धूलि चाटरहा है। जरा इस कालके उलट फेरको तो देखो ! ॥ १४ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले अनेकों योधा जिसके हाथसे युद्ध में मरकर पृथिवी पर ढहपड़े थे वही यह कौरवोंका राजा

कथं त्वां सर्वधर्मज्ञं क्षुद्रः पापो वृकोदरः। निकृत्या हतवान् मन्दो नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २२ ॥ धर्मयुद्धे ह्यधर्मेण समाहूयौजसा मृधे। गदया भीमसेनेन निर्भग्ने सक्थिनी तव ॥ २३ ॥ अधर्मेण हतस्याजौ मृद्यमानं पदा शिरः। य उपेक्षितवान् क्षुद्रं धिक्कृष्णं धिग्युधिष्ठिरम् २४ युद्धेष्वपवदिष्यन्ति योधा नूनं वृकोदरम्। यावत् स्थास्यन्ति भूतानि निकृत्या ह्यसि पातितः ॥ २५ ॥ ननु रामोऽब्रवीद्राजंस्त्वां सदा यदुनन्दनः। दुर्योधनसमो नास्ति गदया इति वीर्यवान् ॥ २६ ॥ श्लाघते त्वां हि वार्ष्णेयो राजन् संसत्सु भारत। स शिष्यो मम कौरव्यो

भीमसेनके हाथसे घायल हुआ देखरहे हैं ॥ २१ ॥ तुम सकल धर्मोंको जानने वाले हो, फिर तुम्हे पापी मूर्ख और क्षुद्र भीमसेनने ,कैसे मारडाला ! ओः ! वास्तवमें कालको कोई नहीं लाँघसकता ॥ २२ ॥ आपको धर्मयुद्धमें बुलाकर भीमसेनने अधर्मसे जबरदस्ती आपकी जङ्घायें तोडडाली हैं ॥ २३ ॥ धिक्कार है कृष्ण और युधिष्ठिरको, कि-जो युद्धमें अधर्मसे घायल करके तुम्हारे मस्तकको पैरसे ठुकराने पर भी उन्होंने क्षुद्र भीमसेनको नहीं ललकारा ! ॥ २४ ॥ ओः ! आपको कपटसे घायल करडाला है, इसलिये जबतक इस जगत्में प्राणी रहेंगे तबतक योधा भीमसेनकी निन्दा ही करेंगे ॥ २५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदुनन्दन बलराम आपके लिये सदा कहा करते हैं, कि-पराक्रमी दुर्योधनकी समान गदायुद्धमें दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥ गदायुद्धमें दुर्योधन मेरा शिष्य है, ऐसा कहकर हे राजन् ! बलदेवजी बीच सभा में नित्य आपकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ २६ ॥ महर्षि-

प्रायशोऽभिमुखः शत्रून् धर्मेण पुरुषर्षभ । हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा ॥३३॥ प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते । धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपञ्च महारथम् ॥ ३४ ॥ ये वयं न गताः स्वर्गं त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम् । दातारं सर्वकामानां रक्षितारं प्रजाहितम् ३५ यद्वयं नानुगच्छाम त्वां धिगस्मान्नराधमान् । कृपस्य तव वीर्येण मम चैव पितुश्च मे ॥ ३६ ॥ सभृत्यानां नरव्याघ्र रत्नवन्ति गृहाणि च । भवत्प्रसादादस्माभिः समित्रैः सह बान्धवैः ॥ ३७ ॥ अवाप्ता क्रतवो मुख्या बहवो भूरिदक्षिणाः । कुतश्चापीदृशं पापाः प्रवर्त्तिष्यामहे वयम् ॥३८॥ यादृशेन पुरस्कृत्य त्वं गतः सर्वपार्थिवान् ।

जिसके पुत्र और संबंधी मारेगये हैं ऐसी गांधारी और दुराधर्ष अन्धे राजा धृतराष्ट्रकी अब क्या गति होगी ? ३३ सब कामनायें पूरी करनेवाले, रक्षक और प्रजाके हितैषी ऐसे आपसरीखे राजाको आगे करके हम भी जो तुम्हारे साथ स्वर्गमें नहीं जारहे हैं अर्थात् अभीतक जीवित हैं, इसलिये मुझे, कृतवर्माको और महारथी कृपाचार्यको धिक्कार है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे नरव्याघ्र राजन् ! कृपाचार्य के तुम्हारे मेरे और पिताके पराक्रमसे हमारे ही नहीं किन्तु हमारे नौकर चाकरोंके घर भी रत्नोंसे भरपूर होगये हैं ॥ ३६ ॥ आपकी कृपासे हमने अपने मित्र और बांधवोंके साथ बहुतसी दक्षिणावाले बड़े २ बहुतसे यज्ञ किये हैं ॥ ३७ ॥ परन्तु आपने सब राजाओंको आगे करके जैसी परमगति पायी है उस परमगतिको हम पापी कैसे पासकते हैं ? ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जब तुम परमगतिको प्राप्त होरहे हो तब हम तीनों जो तुम्हारे

स्त्तमान् ॥ ४५ ॥ अस्माद्वाक्यात् परिष्वज्य संपृच्छे-
स्त्वमनामयम् ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । इत्येवमुक्त्वा
राजानं भग्नसक्थमचेतनम् । अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुन-
र्वचनमब्रवीत् ॥४७॥ दुर्योधन जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्र-
सुखं शृणु। सप्त पाण्डवतः शेषा धार्त्तराष्ट्रास्त्रयो वयम्४८
ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोथ सात्यकिः। अहञ्च कृत-
वर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ४६ ॥ द्रौपदेया हताः सर्वे
धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः । पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्य-
शेषञ्च भारत ॥ ५० ॥ कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि

स्वर्गमें पहुँचेहुए दूसरे बड़े २ राजाओंसे मेरी प्रार्थनानु-
सार मिल भेंटकर कुशल समाचार बूझना ॥ ४२-४६ ॥
सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! ऐसा कहकर टूटी
हुई जङ्घाओं वाले और अचेत होकर पृथिवी पर पड़ेहुए
दुर्योधनके सामनेको जाकर अश्वत्थामा उससे फिर कहने
लगा कि-॥ ४७ ॥ हे दुर्योधन ! यदि अभी तुममें कुछ
प्राण शेष हो तो अपने कानोंको आनन्द देनेवाले इस
समाचारको सुनो कि-अब पांडवपक्षमें सात और कौरव-
पक्षमें हम तीन ही बचे हैं ॥ ४८ ॥ पांडवपक्षमेंके पाँच
पांडव, श्रीकृष्ण और सात्यकी ये सात हैं और कौरव
पक्षमें मैं, कृतवर्मा तथा कृपाचार्य ये तीन बचे हैं ४६
हे भरतवंशी दुर्योधन ! द्रौपदीके सब पुत्र तथा
धृष्टद्युम्नके भी सब पुत्र मारेगये, सब पंचाल राजे तथा
जो कुछ मत्स्य देशके क्षत्रिय बचे थे उनको भी मैंने मार
डाला ॥ ५० ॥ पांडवोंने जो तुम्हारा सर्वनाश किया था,
उसके बदलेमें मैंने जो कुछ किया है उसको तुम देखो,
पांडवोंके सब पुत्र मारेगये, रात्रिके समय उनका छावनी

विशत् ॥ ५७ ॥ एवं ते निधनं यातः पुत्रो दुर्योधनो नृप। अग्रे यात्वा रणे शूरः पश्चाद्विनिहतः परैः ॥ ५८ ॥ तथैव ते परिष्वक्तो परिष्वज्य च ते नृपम् । पुनः पुनः प्रेक्षमाणाः स्वकानारुह्य रथान् ॥ ५९ ॥ इत्यहं द्रोणपुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम् । प्रत्यूषकाले शोकार्त्तः प्राद्रवन्नगरं प्रति६० एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपांडवसेनयोः।घोरो विशसनो रौद्रो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६१ ॥ तव पुत्रे गते स्वर्गं शोकार्त्तस्य ममानघ । ऋषिदत्तं प्रनष्टं तद्दिव्यदर्शित्वमद्य वै ॥ ६२ ॥ वैशम्पायन उवाच । इति श्रुत्वा स नृपतिः

आत्मा पुण्यवान् स्वर्गलोकमें चलागया और शरीर पृथिवी पर पडा रहगया ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन इसप्रकार मरणको प्राप्त हुआ, वह सबसे पहले शूरोंके ऊपर चढ़कर गया था और सबसे पीछे शत्रुओंके हाथसे मारागया ॥ ५८ ॥ मरनेसे पहले दुर्योधनने उन तीनों वीरोंको छातीसे लगाया और उन्होंने भी दुर्योधनका आलिङ्गन किया था, फिर बारंबार दुर्योधनको देखते हुए वे तीनों अपने २ रथोंमें बैठगये ॥५९॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी करुणाजनक बातको सुनकर शोकसे व्याकुल हुआ मैं, प्रातःकाल ही हस्तिनापुरमें आनेके लिये झपट आया ॥ ६० ॥ हे राजन ! तुम्हारे अपने अन्यायसे कौरवोंकी और पांडवोंकी सेनाका यह जो संहार हुआ बडा ही भयानक और घोर था ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रके स्वर्गवासी होनेसे मैं शोकसे बडा ही व्याकुल होरहा हूँ अतः व्यास ऋषिने जो मुझे दिव्यदर्शीपना दिया था वह भी आज नष्ट होगया ।६२। वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय! अपने पुत्रके

ञ्भिर्निःशेषं ते बलं कृतम् ॥ ४ ॥ छिद्यमानस्य महतो वन-
स्येव परश्वधैः । शुश्रुवे सुमहान् शब्दो बलस्य तव भारत
॥ ५ ॥ अहमेकोऽवशिष्टस्तु तस्मात् सैन्यान्महामते ।
मुक्तः कथञ्चिद्धर्मात्मन् व्यग्राच्च कृतवर्मणः ॥६॥ तच्छ्रु-
त्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । पपात मह्यां
दुर्द्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ७ ॥ तं पतन्तमतिक्रम्य
परिजग्राह सात्यकिः । भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च
पाण्डवौ ॥ ८ ॥ लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया
गिरा । जित्वा शत्रून् जितः पश्चात् पर्यदेवयदार्त्तवत् ९

काटकर तुम्हारी सेनाका संहार करडाला है ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जैसे कुल्हाड़ियोंसे बड़ेभारी वनको काटडालाजाता है और उसका जैसा शब्द होता है, तैसे ही जब तुम्हारी सेनाको कुल्हाड़ियोंसे काटागया, उस समय हाहाकारका बड़ा ही कोलाहल सुननेमें आया ॥ ५ ॥ हे महामति धर्मात्मा युधिष्ठिर ! कृतवर्मा घबड़ाहटमें था इसलिये एक मैं ही उस सेनाके संहारमेंसे किसी प्रकार बचकर निकल आया हूँ ॥६॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर किसीसे भय खानेवाले नहीं थे तो भी इस अमङ्गल-समाचारको सुनकर पुत्रशोकसे व्याकुल हो पृथिवी पर ढहपड़े ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर अधीर होकर पृथिवी पर गिरे, कि-सात्यकी, भीमसेन, अर्जुन और माद्रीके दोनों पुत्रोंने उनको पकड़लिया ॥८॥ जब चेत हुआ तब राजा युधिष्ठिर, कि-जिन्होंने पहले शत्रुओंको जीता था और पीछेसे जिनको शत्रुओंने जीतलिया, वह शोकसे विह्वल हुई वाणीमें विपत्तिमें पड़ेहुए मनुष्यकी समान विलाप करते हुए कहनेलगे, कि-॥ ९ ॥ हाय ! हाय ! शत्रुओंको

जिह्वस्य संयुगे । चापव्यात्तास्यरौद्रस्य ज्यातलस्वनादिनः ॥ १५ ॥ क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः । ये व्यमुच्यन्त कर्णस्य प्रमादात्त इमे हताः ॥१६॥ रथह्रदं शरवर्षोर्मिमन्तं रत्नाचितं वाहनवाजियुक्तम् । शक्तृष्टिमीनध्वजनागनक्रं शरासनावर्त्तमहेषुफेनम् १७ संग्रामचन्द्रोदयवेगवेलं द्रोणार्णवं ज्यातलनेमिघोषम् । ये तेरुरुच्चावचशस्त्रनौभिस्ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् १८ नहि प्रमादात् परमोस्ति कश्चिद्वधो नराणामिह जीवलोके।

प्रसन्न हुए पुत्रोंको ही मारडाला यह उनकी विजय ही है ॥ १४ ॥ युद्धमें कर्णी और नालीक नामके बाण ही जिसकी डाढें थीं,तलवार जिसकी जीभ थी, धनुष जिसका खुला हुआ मुख था और प्रत्यञ्चाका शब्द जिसका गर्जना मालूम होता था,उस सिंहकी समान संग्रामोंमें पीछेको पैर न देनेवाले,क्रोधमें भरेहुए कर्णके हाथसे जो योधा बचगये थे वे योधा हमारे समीपमें न होनेसे मारेगये ॥१५-१६॥ रथरूप कुण्डेवाले, बाणोंकी वर्षारूप तरङ्गमालावाले, रत्नोंसे जटित, वाहनरूप दरियाई घोड़ों वाले, शक्ति और ऋष्टिरूप मछलियोंवाले, ध्वजायें तथा हाथीरूप नाकोंवाले, धनुषरूप भँवर और बड़े२ बाणरूप झागोंवाले, संग्रामरूप चन्द्रोदयके समय होनेवाले वेग को धारण करनेमें तटरूप, धनुषकी डोरी, हाथकी हथेली और रथके पहियोंके शब्दरूप गर्जना करते हुए द्रोणाचार्य रूप समुद्रको, जो राजपुत्र छोटे बड़े शस्त्ररूप नौकाओंके द्वारा तरकर पार होगये थे, वे योधा हमारी असावधानी से मारेगये ॥१७-१८॥ इस मनुष्यलोकमें प्रमादसे बढ़कर दूसरा कोई भी मनुष्योंका नाश नहीं है अर्थात् प्रमाद

समुद्रं वणिजः समृद्धा मग्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः २३
अमर्षितैर्ये निहताः शयाना निःसंशयं तेपि दिवं प्रपन्नाः ।
कृष्णान्तु शोचामि कथं नु साध्वी शोकार्णवं साद्य विश-
य्यभीता ॥ २४ ॥ भ्रातृंश्च पुत्रांश्च हतान्निशम्य पश्चाल-
राजं पितरञ्च वृद्धम् । ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां
सा शोष्यते शोककृशांगयष्टिः ।२५। तच्छोकजं दुःखमपार-
यन्ती कथं भविष्यत्युचिता सुखानाम् । पुत्रक्षयभ्रातृवधप्र-
णुन्ना प्रदह्यमानेव हुताशनेन २६ इत्येवमार्त्तः परिदेवयन्
स राजा कुरूणां नकुलं बभाषे । गच्छानयैनामिह मंद-
भाग्यां समातृपक्षामिति राजपुत्रीम् ॥ २७ ॥ माद्रीसुत-

मारेगये ॥ २३ ॥ शत्रुओंने ईर्षाके कारण जिनको सोतेमें मारडाला है वे निःसन्देह स्वर्गमें पहुँचगये, परन्तु मुझे द्रौपदीके लिये शोक होरहा है, कि—वह विचारी निर्भय होकर शोकसागरमें कैसे प्रवेश करेगी ? ॥ २४ ॥ जिस समय द्रौपदी, मेरे भाई, पुत्र और बूढे पिता पंचालराज मारेगये इस अशुभ समाचारको सुनेगी, उस समय, जिसका शरीर शोकसे दुर्बल होरहा है ऐसी वह द्रौपदी मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर ही पड़ेगी, और वह मानो सूख ही जायगी ॥ २५ ॥ सुख भोगनेके योग्य द्रौपदी अपने पुत्र और भाइयोंके नाशका समाचार सुनते ही मूर्छित होजायगी और मानो अग्निसे जलती हुईसी पुत्रोंके और भाइयोंके मरणके दुःखको नहीं सहसकेगी, ओः ! वह अपने जीवनको कैसे धारण कर सकेगी ? ॥२६॥ इसप्रकार व्याकुल होकर कुरुराज युधिष्ठिर विलाप करते२ नकुलसे कहने लगे, कि—भाई ! तू जा और मन्द-भाग्या राजकुमारी द्रौपदीको उसके मातृकुलवालोंके

वैशम्पायन उवाच । स दृष्ट्वा निहतान् संख्ये पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा । महादुःखपरीतात्मा बभूव जनमेजय ॥१॥ ततस्तस्य महान् शोकः प्रादुरासीन्महात्मनः । स्मरतः पुत्रपौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च ॥ २ ॥ तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतनम् । सुहृदो भृशसंविग्नाः सान्त्वयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ३ ॥ ततस्तस्मिन् क्षणे काल्यो रथेनादित्यवर्चसा । नकुलः कृष्णया सार्द्धमुपायात् परमार्त्तया ॥ ४ ॥ उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् । तदा विनाशं पुत्राणां सर्वेषां व्यथिताऽभवत् ५ कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता । कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्त्ता न्यपतद्भुवि ॥६॥ बभूव वदनं तस्याः

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! युद्धमें पुत्र, पौत्र और मित्रोंको मराहुआ देखकर युधिष्ठिरका मन दुःखके मारे विक्षिप्तसा होगया ॥ १ ॥ भाई पुत्र, पौत्र और संबंधियोंको याद करतेहुए महात्मा राजा युधिष्ठिर को बड़ा ही दुःख होनेलगा ॥ २ ॥ उनकी दोनों आँखें आँसुओंसे भरगयीं, वह भौचक्केसे होकर काँपनेलगे, इसकारण उनके स्नेही भी बड़े ही उदास होगये और वे धर्मराजको धीरज देनेलगे ॥३॥ इतनेमें ही नकुल सूर्यकी समान दमकती हुई कान्तिवाले रथमें बैठालकर परम शोकसे व्याकुल हुई द्रौपदीको लेकर आगया ॥४॥ द्रौपदी उपप्लव्य नामक स्थानमें थी, सब पुत्रोंके मरणके महा अशुभ समाचारको सुनकर वह घबड़ागयी थी ॥ ५ ॥ और पवनके झोकसे जैसे केला काँप उठता है तैसे ही वह काँप रही थी, वह राजा युधिष्ठिरके पास तो आयी, परंतु राहुके ग्रसेहुए चंद्रमाकी समान, प्रफुल्लित कमलकी

द्रौणिना पापकर्मणा । शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयम् ॥ १३ ॥ तस्य पापकृतो द्रौणिर्न चेदद्य त्वया मृधे । ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम् ॥१४॥ इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः । न चेत् फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा ततः कृष्णा पाण्डवं प्रत्युपाविशत् । युधिष्ठिरं याज्ञसेनी धर्मराजं यशस्विनी ॥ १६ ॥ दृष्ट्वोपविष्टां राजर्षिः पाण्डवो महिषीं प्रियाम् । प्रत्युवाच स धर्मात्मा द्रौपदीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ धर्म्यं धर्मेण धर्मज्ञे प्राप्तास्ते निधनं शुभे । पुत्रास्ते भ्रातरश्चैव तान्न शोचितुमर्हसि ॥ १८ ॥ स

सुनकर उपप्लव्यमें मेरे साथ उनको याद भी नहीं करते! १२ हे कुन्तीनन्दन राजाजी! पापकर्म करनेवाले अश्वत्थामा ने निद्रामें असावधान पड़े हुए मेरे पुत्रोंको मारडाला, उनके शोकका अग्नि मुझे ऐसे भस्म करे डालता है, जैसे अग्नि किसी मकानको भस्म करता हो॥१३॥हे राजाजी! यदि तुम आज ही उस पापी अश्वत्थामाको उसकी सेनाके सहित, पराक्रम करके नहीं मारडालोगे, हे पांडवों! यदि अश्वत्थामा अपने पापकर्मका फल नहीं पाजायगा तो सुनलो मैं अन्नजल नहीं लूँगी, उपवास ही करती रहूंगी ॥ १४-१५ ॥ यज्ञसेन राजाकी यशस्विनी पुत्री द्रौपदी ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरके पासमेंको जा बैठी, राजर्षि राजा युधिष्ठिर, सुन्दर दर्शनीय प्यारी पटरानी द्रौपदीको पास बैठी हुई देखकर उससे कहने लगे, कि-॥ १६-१७ ॥ हे धर्मको जाननेवाली रानी! तेरे पुत्र और भाई धर्मयुद्ध करके क्षत्रियको शोभा देनेवाली मृत्युको प्राप्त हुए हैं, इसलिये तुझे उनका शोक करना

नगरे वारणावते२४हिडिम्बदर्शने चैव तथा त्वमभवो गतिः
तथा विराटनगरे कीचकेन भृशार्दिताम् ॥२५॥मामभ्युद्-
धृतवान्कृच्छ्रात्पौलोमीं मघवानिव । यथैतान्यकृथाः पार्थ
महाकर्माणि वै पुरा । तथा द्रौणिममित्रघ्न विनिहत्य
सुखी भव । तस्या बहुविधं दुःखं निशम्य परिदेवितम्२७
न चामर्षत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः । स काञ्चन-
विचित्राङ्गमारुरोह महारथम् ॥२८॥ आदाय रुचिरं चित्रं
समार्गणगुणं धनुः । नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे
धृतः ॥ २९ ॥ विस्फार्य सशरश्चापं तूर्णमश्वानचोदयत् ।

से सुनो जाती है, जब पाण्डव वारणावतमें महासङ्कट में पड़गये थे, तब तुमने ही इनकी रक्षा की थी ॥ २४ ॥ हिडिम्बासुरका दर्शन होने पर भी तुम रक्षक हुए थे, विराटनगरमें कीचकने मुझे बहुत दुःखी किया था तब भी जैसे इन्द्रने इन्द्राणीकी रक्षा की थी तैसे ही तुमने उस दुःखसे मेरी रक्षा की थी, ऐसे ही पहले तुमने और भी बड़े २ काम किये थे, तैसे ही इस समय भी शत्रुओंका नाश करनेवाले अश्वत्थामाको मारकर सुखी हूजिये, इसप्रकार द्रौपदीके अनेकों प्रकारके दुःख और विलापको सुनकर ॥ २५-२७ ॥ महाबली कुन्ती-नन्दन भीमसेन सह नहीं सका और सोनेसे बने विचित्र अङ्गोंवाले बड़े रथ पर सवार होगया ॥ २८ ॥ साथमें भाँति २ के बाण और सुन्दर धनुष लेलिया तथा नकुल को सारथी बनाकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके मारनेका निश्चय करलिया ॥ २९ ॥ धनुष पर बाण चढ़ाकर टङ्कार देनेलगा और शीघ्र ही घोड़ोंको हाँकदिया, हे पुरुषव्याघ्र ! वायु की समान वेगवाले वे घोड़े हाँकदेने पर वेगसे दौड़ने

महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम् । प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ५ ॥ तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः । ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव ॥ ६ ॥ विदितं चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः । सर्वधर्मविदाचार्यः सोऽन्वशात् स्वसुतं ततः ॥ ७ ॥ परमापद्गतेनापि न स्म तात त्वया रणे । इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः ॥ ८ ॥ इत्युक्तवान् गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान् । न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ ॥९॥ स तदाज्ञाय दुष्टात्मा पितुर्वचनमप्रियम् । निराशः सर्व-

चार्यने पृथिवीको भी भस्म करडालनेवाला जो ब्रह्मास्त्र उस अश्वत्थामाको सिखा दिया है, वह ब्रह्मास्त्र सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर धनञ्जयको भी सिखाया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा असहनशील है, इसलिये उसने द्रोणाचार्यसे ब्रह्मास्त्रकी याचना करते हुए कहा था, कि–अकेले मुझे ही ब्रह्मास्त्र दीजिये, इसपर अपने दुष्टात्मा पुत्रकी चपलताको जाननेवाले द्रोणाचार्यने मनमें कुछ एक खिन्न होकर पुत्रको हितकारी उपदेश देते हुए कहा था, कि– ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे तात ! तू चाहे जैसी आपत्तिमें आपड़े तो भी रणमें इस अस्त्रसे काम न लेना, जिसमें भी मनुष्यके ऊपर तो इस अस्त्रका प्रयोग कभी करना ही नहीं ॥ ८ ॥ हे महापुरुष ! द्रोणाचार्यने इतना कहकर फिर कहा, कि-हे पुत्र ! मैं देखता हूँ, कि–तू सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलने वाला नहीं है ॥ ९ ॥ दुष्टात्मा अश्वत्थामा पिताके अप्रिय वचनको सुन कर अपने सब सुखसे निराश होगया और शोकके साथ

न्धर्वमनुष्यपतगोरगाः । न समा मम वीर्यस्य शतांशे-
नापि पिण्डिताः ॥ १७ ॥ इदं धनुरियं शक्तिरिदं चक्र-
मियं गदा । यद्यदिच्छसि चेदस्त्रं मत्तस्तत्तद्ददानि ते १८
यच्छक्नोषि समुद्यन्तुं प्रयोक्तुमपि वा रणे । तद् गृहाण
विनास्त्रेण यन्मे दातुमभीप्ससि ॥१९॥ स सुनाभं सह-
स्त्रारं वज्रनाभमयस्मयम् । वव्रे चक्रं महाभागो मत्तः
स्पर्द्धन्मया सह ॥ २० ॥ गृहाण चक्रमित्युक्तो मया तु
तदनन्तरम्।जग्राहोत्पत्य सहसा चक्रं सव्येन पाणिना२१
न चैनमशकत् स्थानात् सञ्चालयितुमप्युत । अथैनं दक्षिणे-
नापि गृहीतुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥ सर्वयत्नेन तेनापि गृह्ण-

देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, पक्षी और सर्प ये सब
इकट्ठे होजायँ तोभी वे मेरे पराक्रमके सामने सौवें हिस्से
की समान भी नहीं हैं ॥१७॥ यह धनुष, यह शक्ति, यह
चक्र और यह गदा पड़े हैं, इनमेंसे जिस २ अस्त्रको तुझे
चाहना हो वही२ अस्त्र मैं तुझे देता हूँ१८बदलेमें जो तू
मुझे ब्रह्मास्त्र देनाचाहताहै,उसको भी मैं नहीं लेनाचाहता,
रणमें जिस अस्त्रको उठानेकी अथवा जिस अस्त्रका प्रयोग
करनेकी तुझमें शक्ति हो उस ही अस्त्रको तू अपनी इच्छा-
नुसार लेले।१९।तब तो मेरे साथस्पर्धा रखनेवाले मदमत्त
महात्मा अश्वत्थामाने हजार अरे और वज्रकी समान
नाभिवाले बड़े कड़े लोहेके बनेहुए सुनाभ नामके चक्रको
मुझसे माँगा ॥२०॥ मैंने उससे कहा, कि-अच्छा चक्रको
लेले, अश्वत्थामा कूदकर तुरन्त ही बायें हाथसे चक्रको
उठानेलगा, परन्तु चक्रको अपने स्थानसे जरा हिला भी
नहीं सका, फिर दाहिने हाथसे उठानेका उद्योग करने
लगा ॥ २१-२२ ॥ पूरा बल और उद्योग लगाकर वह

पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा । नोक्तपूर्वमिदं वाक्यं यत्त्वं माम-
भिभाषसे ॥ २९ ॥ ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादश-
वार्षिकम् । हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ३०
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत । सनत्कु-
मारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥ ३१ ॥ तेनाप्येतन्म-
हद्दिव्यं चक्रमप्रतिमं रणे । न प्रार्थितमभून्मूढ यदिदं
प्रार्थितस्त्वया ॥ ३२ ॥ रामेणातिबलेनैतन्नोक्तपूर्वं कदा-
चन । न गदेन न साम्बेन यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३३ ॥
द्वारकावासिभिश्चान्यैर्वृष्ण्यन्धकमहारथैः । नोक्तपूर्व-
मिदं जातु यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३४ ॥ भारताचार्य-
पुत्रस्त्वं मानितः सर्वयादवैः ॥ चक्रेण रथिनां श्रेष्ठ केन

भी हे ब्रह्मन् ! पहले कभी तेरी समान मुझसे इस चक्रको नहीं माँगा ॥ २९ ॥ मैंने हिमालय पर्वत पर बारह वर्ष पर्यन्त बैठकर महाभयानक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए तपस्या करके जिसको पाया है ॥३०॥ और जो मेरे समान ही व्रतको धारण करनेवाली रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है, जो पहले जन्ममें सनत्कुमार था और जो प्रद्युम्न नामसे मेरे यहाँ पुत्ररूपसे जन्मा है ॥ ३१ ॥ उसने भी अनुपम और दिव्य अस्त्रको मुझसे नहीं माँगा, परन्तु रे मूढ ! वही चक्र तू मुझसे माँगरहा है ! ॥३२॥ जिस चक्रको तू माँगरहा है, इसको तो महाबली बलरामने भी पहले मुझसे कभी नहीं माँगा था, गदने तथा साम्बने भी मुझसे कभी नहींमाँगा था ॥३३॥ तूने जिसके लिये प्रार्थना की है, इसके लिये तो द्वारकावासी वृष्णि अन्धक आदि महारथियोंने तथा दूसरोंने भी पहले कभी प्रार्थना नहीं की थी ॥३४॥ तू भरतवंशके राजाओंके आचार्यका

स संरम्भी दुरात्मा च चपलः क्रूर एव च। वेद चास्त्रं ब्रह्मशिरस्तस्माद्रक्ष्यो वृकोदरः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि कृष्ण-युधिष्ठिरसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनन्दनः। सर्वायुधवरोपेतमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १ ॥ युक्तं परमकाम्बोजैस्तुरगैर्हेममालिभिः। आदित्योदयवर्णस्य धुरं रथवरस्य तु ॥ २ ॥ दक्षिणामवहच्छैब्यः सुग्रीवः सव्यतोऽभवत्। पार्ष्णिवाहौ तु तस्यास्तां मेघपुष्पबलाहकौ ॥ ३ ॥ विश्वकर्मकृता दिव्या रत्नधातुविभूषिता। उच्छ्रितेव रथे माया ध्वजयष्टिरदृश्यत ॥ ४ ॥ वैनतेयः

वह अश्वत्थामा क्रोधी, दुष्टात्मा, चपल और क्रूर है, वह ब्रह्मास्त्रको जानता है, इसलिये उससे भीमसेनकी रक्षा करनेकी अवश्यकता है ॥ ४१ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय! योधाओंमें श्रेष्ठ और सब यादवोंको प्रसन्न करनेवाले श्रीकृष्ण ऐसा कहकर उत्तम रथमें सवार होगये, उस रथमें सब प्रकारके शस्त्र भरेहुए थे ॥ १ ॥ कांबोजदेशमें उत्पन्न हुए सोनेकी मालायें पहरेहुए घोड़े उसमें जुतेहुए थे, उस रथका रङ्ग उदय होते हुए सूर्यकी समान लाल २ था, उसकी दाहिनी धुरीकी ओर शैब्य और बायीं धुरीकी ओर सुग्रीव जुता हुआ था, मेघपुष्प और बलाहक नामके घोड़े उसके पिछले भागमें थे ॥ २-३ ॥ विश्वकर्मा की रचीहुई, दिव्य, रत्न और धातुओंसे शोभायमान रथपर लगीहुई ऊँची ध्वजाकी लकड़ी ऊँची मायाकी

र्षभ । भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्य वेगिनाः ॥ ११ ॥ क्रोधदीप्तन्तु कौन्तेयं द्विपदर्थे समुद्यतम् । नाशक्नुवन् धारयितुं समेत्यापि महारथाः ॥ १२ ॥ स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम् । ययौ भागीरथीतीरं हरिभिर्भृशवेगितैः ॥ १३ ॥ यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम् । स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम् ॥ १४ ॥ कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह । तञ्चैव क्रूरकर्म्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम् ॥१५॥ रजसा ध्वस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमन्तिके। तमभ्यधावत् कौन्तेयः

होने लगा ॥ १० ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! वे घोड़े महाधनुषधारी भीमसेनके पीछे चलदिये, बड़े २ वीर पुरुष भी उनके पीछे शीघ्रताके साथ दौड़नेलगे, क्षणभरमें भीमसेनके पास पहुँचगये, उससे मिलकर महारथियोंने कहा, कि–हे भीम ! तुम पीछेको लौट जाओ, परन्तु उस समय भीमसेन क्रोधके मारे तमतमा रहा था, इसलिये पास पहुँचजाने पर भी उन महारथियोंमेंसे उसको कोई रोक नहीं सका ॥ ११–१२ ॥ भीमसेन उन दृढ धनुषधारी महात्माओंके देखते हुए ही, बड़े ही वेगवाले घोड़ोंको दौड़ाकर भागीरथीके तट पर, जहाँ महात्माओंके पुत्रोंको मारडालनेवाला अश्वत्थामा बैठा है, ऐसा सुना था, तहाँ जापहुँचा, उसने जाकर देखा तो महायशस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी ऋषियोंके साथ गङ्गाके तटपर विराजमान हैं ॥१३-१४॥ और उनके पास ही क्रूर कर्म करनेवाला अश्वत्थामा शरीरपर घी चुपड़कर और कुशाओंके रेसेके वस्त्र पहरेहुए बैठा है, उसका शरीर धूलिसे अटरहा था,

ततस्तस्यामिषीकायां पावकः समजायत । प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन् कालान्तकयमोपमः ॥ २२ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्मशिरोऽस्त्रत्यागे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच । इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः । द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्त्तते । द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः संप्रति पाण्डव ॥ २ ॥ भ्रातॄणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत । विसृजैतत्त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम् ॥ ३ ॥ केशवेनैवमुक्तस्तु पाण्डवः परवीरहा । अवातरद्रथात्तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ ४ ॥

ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, तब तो उस कुशाकी तुलीमेंसे प्रलयकालके कालकी समान ऐसा अग्नि एक साथ जल उठा, कि-मानो यह लोकोंको भस्म ही करडालेगा २०-२२ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! महाबाहु श्रीकृष्ण, चेष्टा देखकर अश्वत्थामाके भावको पहले ही ताड़गये थे, उन्होंने अर्जुनसे कहा, कि हे धनञ्जय ! हे पांडुपुत्र ! द्रोणाचार्यने तुझे जिस ब्रह्मास्त्रका उपदेश दिया था और जो अस्त्र तेरे अन्तःकरणमें विराजमान है, उसका प्रयोग करनेका अब समय आया है ॥ १-२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! अपनी और अपने सगे भाइयोंकी रक्षा करनेके लिये तू भी रणमें ब्रह्मास्त्रको पीछेको लौटादेनेके लिये ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग कर ॥ ३ ॥ शत्रुका नाश करनेवाले अर्जुनने श्रीकृष्णकी बात सुनकर धनुष और बाणको हाथमें लिया, वह तुरन्त रथके ऊपर

तेजसी लोकांस्तापयन्तौ व्यवस्थिते। महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा ॥ ११ ॥ नारदः सर्वभूतात्मा भारतानां पितामहः। उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाजधनञ्जयौ १२ तौ मुनी सर्वधर्मज्ञौ सर्वभूतहितैषिणौ। दीप्तयोरस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १३ ॥ तदन्तरमनाधृष्यावुपागम्य यशस्विनौ। आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ ॥ १४ ॥ प्राणभृद्भिरनाधृष्यौ देवदानवसम्मतौ। अस्त्रतेजः शमयितुं लोकानां हितकाम्यया १५ ऋषी ऊचतुः। नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महा-

---

लोकोंको तपाने लगे, तब सकल भूतोंके आत्मारूप नारद ऋषि और भरतवंशी राजाओंके पितामह व्यासजी ने अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों वीरोंको शान्त करने के लिये एकसाथ उन तेजस्वी दोनों अस्त्रोंके मध्यमें दर्शन दिया, सब धर्मोंको जाननेवाले और सब प्राणियोंके हितैषी दोनों परमतेजस्वी मुनि उन जलतेहुए अस्त्रोंके बीचमें खड़े होगये, किसी प्राणीसे भय न खानेवाले, देवता और मनुष्योंके पूजनीय यशस्वी, दोनों ऋषि, सबोंके हितकी कामनासे और अस्त्रोंके तेजको शांत करनेके लिये जब उन दोनों अस्त्रोंके बीचमें आकर खड़े होगये, उस समय वे दोनों प्रज्वलित हुए अग्निकी समान तेजस्वी दीखनेलगे ॥ ११ ॥ १५ ॥ दोनों ऋषियोंने कहा, कि-पहले (इस ही युद्धमें) अनेकों प्रकारके अस्त्रोंको जाननेवाले अनेकों महारथी होगये हैं, परंतु उन्होंने कभी भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मनुष्योंके ऊपर नहीं किया था,

हि संयुगे ॥५॥ विसृष्टस्य रणे तस्य परमास्त्रस्य संग्रहे । अशक्तः पाण्डवादन्यः साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ६ ॥ ब्रह्मतेजोद्भवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मनः । न शक्यमावर्त्तयितुं ब्रह्मचारिव्रतादृते ॥ ७ ॥ अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वावर्त्तयते पुनः । तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्द्धानं तस्य कृन्तति ८ ब्रह्मचारी व्रती चापि दुरवापमवाप्य तत् । परमव्यसनार्त्तोपि नार्जुनोऽस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः । गुरुवर्त्ती च तेनास्त्रं संजहारार्जुनः पुनः ॥ १० ॥ द्रौणिरप्यथ संप्रेक्ष्य तावृषी पुरतः

ऐसा कहकर धनञ्जयने, देवता भी युद्धमें जिस अस्त्रका उपसंहार नहीं करसकते थे उस अपने ब्रह्मास्त्रको पीछेको लौटालिया ॥ ५ ॥ संग्राममें छोड़ेहुए उस ब्रह्मास्त्रको लौटानेकी शक्ति अर्जुनके सिवाय साक्षात् इन्द्रमें भी नहीं थी ॥ ६ ॥ वह अस्त्र ब्रह्मके तेजमेंसे उत्पन्न हुआ था अजितेन्द्रिय पुरुष उसको छोड़ तो सकता था, परन्तु उसको लौटानेकी शक्ति ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करने वालेमें ही थी ॥ ७ ॥ जिसने ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया हो वह यदि इस अस्त्रको छोड़कर पीछेको लौटाना चाहे तो यह अस्त्र कुटुम्बसहित उस पुरुषके मस्तकको काटडालता था ॥ ८ ॥ अर्जुन ब्रह्मचारी और व्रतधारी था, उसको यह दुर्लभ अस्त्र मिल तो गया था, परन्तु वह बड़ी विपत्तिमें आपड़नेपर भी उस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग नहीं करता था ॥ ९ ॥ अर्जुन, सत्यवादी, वीर ब्रह्मचारी और गुरुकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला था, इसलिये ही वह ब्रह्मास्त्रका उपसंहार करसका था ॥ १० ॥ अश्वत्थामाने उन दोनों ऋषियोंको बीचमें

सुनान् सर्वान् जीवितात् भ्रंशयिष्यति ॥१७॥ कृतं पाप-मिदं ब्रह्मन्रोषाविष्टेन चेतसा। वधमाशास्य पार्थानां मयास्त्रं सृजता रणे ॥ १८ ॥ व्यास उवाच। अस्त्रं ब्रह्म-शिरस्तात विद्वान् पार्थो धनञ्जयः। उत्सृष्टवान्न रोषेण न नाशाय तवाहवे ॥१९॥ अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संश-मयिष्यता। विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतम् ॥२०॥ ब्रह्मास्त्रमप्यवाप्यैतदुपदेशात् पितुस्तव। क्षत्रधर्मान्महा-बाहुर्नाकम्पत धनञ्जयः॥ २१ ॥ एवं धृतिमतः साधोः सर्वास्त्रविदुषः सतः। सभ्रातृबन्धोः कस्मात्त्वं वधमस्य चिकीर्षसि ॥ २२ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण

अस्त्र आज सब पाण्डवोंका नाश करडालेगा ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! पाण्डवोंका नाश करनेके लिये मैंने क्रोधके आवेशमें आकर रणमें इस अस्त्रका जो प्रयोग किया है यह पापका काम किया है ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा, कि हे तात! अर्जुन भी ब्रह्मास्त्रको जानता है, परन्तु उसने उसका प्रयोग न क्रोधसे ही किया है और न तेरा नाश करनेके लिये ही किया है ॥ १९ ॥ परन्तु अपने अस्त्रसे तेरे अस्त्रको शान्त करनेके लिये उसने युद्धमें इस अस्त्रका प्रयोग किया है और फिर उसने इस अस्त्रका उपसंहार भी करलिया है ॥ २० ॥ महाबाहु धनञ्जय ब्रह्मास्त्रको पाजाने पर भी तेरे पिताजीके उप-देशको मानकर क्षत्रिय-धर्मसे चलायमान नहीं हुआ है ॥ २१ ॥ तो भी धैर्यधारी सद्गुणी, सब प्रकारके अस्त्रोंको जाननेवाले अर्जुनका तथा उसके भाइयोंका नाश करनेकी तेरी इच्छा क्यों है? ॥ २२ ॥ जिस देशमें एक ब्रह्मास्त्र दूसरे ब्रह्मास्त्रका नाश करडालता है, उस

न तस्करभयं तथा । एवंवीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथ-
ञ्चन ॥ ३० ॥ यत्तु मे भगवानाह तस्मे कार्यमनन्तरम् ।
अयं मणिरहं चायमीषिका तु पतिष्यति ॥ ३१ ॥ गर्भेषु
पाण्डवेयानाममोघं चैतदुत्तमम् । न च शक्तोऽस्मि भग-
वन् संहर्तुं पुनरुद्यतम् ॥ ३२ ॥ एतदस्त्रमतश्चैव गर्भेषु
विसृजाम्यहम् । न च वाक्यं भगवतो न करिष्ये महा-
मुने ॥३३॥ व्यास उवाच । एवं कुरु न चान्या तु बुद्धिः
कार्या त्वयानघ। गर्भेषु पाण्डवेयानां विसृज्यैतदुपारम ३४

भूखका, देवताओंका, दानवोंका अथवा नागोंका मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहता है ॥ २९ ॥ तथा राक्षसोंका या चोरोंका भी भय मुझे नहीं रहता है, इस मणिमें ऐसा प्रभाव है, इसलिये इसको तो मुझे किसी प्रकार भी नहीं त्यागना चाहिये ॥ ३० ॥ तो भी हे पवित्रात्मा ! आपने मुझसे जो बात कही है, वह मुझे करनी चाहिये, यह मणि है और यह मैं हूँ, दोनों यहीं ही विद्यमान हैं, मेरा छोड़ाहुआ इषीकास्त्र ऐसा उत्तम है, कि—वह निष्फल नहीं जासकता, वह पाण्डवोंकी स्त्रीके गर्भका नाश तो करेगा ही, हे भगवन् ! मुझमें इस छोड़ेहुए अस्त्रको पीछेको लौटानेकी शक्ति नहीं है, इसलिये इस अस्त्रको मैं उत्तरा कुमारीके गर्भपर छोड़ता हूँ, हे महामुने ! और कोई अवसर होता तो मैं आपकी आज्ञाको नहीं टालता, परन्तु इस अवसर पर तो मैं लाचार हूँ ॥ ३१–३३ ॥ व्यासजीने कहा, कि—हे निर्दोष अश्वत्थामा ! अच्छा ऐसा ही कर, परन्तु तुझे और कुछ विचार नहीं करना चाहिये, पाण्डवोंके आगे होनेवाले पुत्रके ऊपर इस अस्त्रका प्रयोग करके शान्त हो ॥३४॥

तद्भविष्यति । परिक्षीणेषु कुरुषु पुत्रस्तव भविष्यति । परिक्षिद्भविता ह्येषां पुनर्वंशकरः सुतः ४ एवं ब्रुवाणं गोविन्दं सात्वतां प्रवरं तदा । द्रौणिः परमसंरब्धः प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥ ५ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं पक्षपातेन केशव । वचनं पुण्डरीकाक्ष न च मद्वाक्यमन्यथा ॥ ६॥ पतिष्यतीति तदस्त्रं हि गर्भे तस्या मयाक्तम् । विराटदुहितुः कृष्ण यं त्वं रक्षितुमिच्छसि ॥ ७ ॥ भगवानुवाच। अमोघः परमास्त्रस्य पातःस तु भविष्यति स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति ॥८॥ त्वान्तु कापुरुषं पापं विदुः सर्वे मनीषिणः । असकृत्पापकर्माणं बालजीवितघातकम् ॥९॥ तस्मात्त्वमस्य पापस्य कर्मणः

हो जायगा इसलिये वह परीक्षित् कहलावेगा ॥ ३ ॥ उस साधुकी यह बात सत्य होगी और इन पाण्डवोंका आगेको वंश चलानेवाला परीक्षित नामका पुत्र होगा ४ सात्वत्वंशमें श्रेष्ठ गोविन्द ऐसा कहरहे थे, उस समय अश्वत्थामाने परमक्रोधमें भरकर यह उत्तर दिया, कि– ॥ ५ ॥ हे केशव ! तुम पांडवोंका पक्षपात करके जैसा कहरहे हो, ऐसा नहीं होसकता हे पुण्डरीकाक्ष ! मेरी बात मिथ्या होही नहीं सकती ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! तुम विराटकुमारीके जिस गर्भकी रक्षा करना चाहते हो, यह मेरा छोड़ाहुआ अस्त्र उसके गर्भके ऊपर अवश्य ही पड़ेगा ॥ ७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा, कि– यह अमोघ अस्त्र उत्तराके गर्भ पर पड़ेगा और अपना काम करेगा और गर्भ मरजायगा, परन्तु फिर जीवित होकर लंबी आयु पावेगा ॥ ८ ॥ और तेरे विषयमें क्या कहूँ ! सब बुद्धिमान पुरुष जानते हैं, कि–तू कापुरुष, पापी, नित्य पापकर्मा और बालकोंका प्राणघातक

पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम॥१६॥व्यास उवाच। यस्मादनादृत्य कृतं त्वयास्मान् कर्म दारुणम्। ब्राह्मणस्य सतश्चैव यस्मात्ते वृत्तमीदृशम्॥ १७ ॥ तस्माद्यद्देवकीपुत्र उक्तवानुत्तमं वचः। असंशयन्ते तद्भावि क्षत्रधर्मस्त्वयाश्रितः ॥१८॥ अश्वत्थामोवाच। सहैव भवता ब्रह्मन् स्थास्यामि पुरुषेष्विह। सत्यवागस्तु भगवानयञ्च पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ वैशम्पायन उवाच। प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनाम्। जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनम् ॥ २० ॥ पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः। कृष्णं द्वैपायनञ्चैव नारदञ्च महामुनिम् ॥ २१ ॥ द्रोणपुत्रस्य सहजं मणिमादाय सत्वराः।

गर्भ जलाजाता है, तो भी मैं उसको जीवित करदूँगा, अरे चण्डाल! तू मेरे तपके और सत्यके पराक्रमको देख ॥ १५-१६ ॥ व्यासजीने कहा, कि-तूने मेरा अनादर करके ऐसा दारुण कर्म किया है और तू ब्राह्मणके घरं जन्म लेकर भी ऐसा आचरण करता है तथा तूने क्षत्रियके धर्मको स्वीकार किया है, इसलिये भगवान् देवकीनन्दनने जो उत्तम वचन कहा है, वह अवश्य ऐसा ही होगा ॥ १७-१८ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि-हे ब्रह्मन्! भगवान् पुरुषोत्तम कृष्णकी बात सत्य होय! अब मैं मनुष्योंमें आपके साथ ही रहूँगा ॥ १९॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि इसके बाद अश्वत्थामा, महात्मा पांडवोंको मणि देकर उदास होताहुआ सबके सामने तहाँसे वनमें चलागया ॥ २० ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले पांडव भी अश्वत्थामाकी जन्मके साथ जो मणि थी उसको लेकर तथा श्रीकृष्ण, व्यास और महामुनि नारदको आगे

रथैस्त्रिभिः । शोचन् युधिष्ठिरो राजा दाशार्हमिदमब्रवीत् १ कथं नु कृष्ण पापेन क्षुद्रेणाक्रूतकर्मणा । द्रौणिना निहताः सर्वे मम पुत्राः महारथाः ॥ २ ॥ तथा कृतास्त्रविक्रान्ताः सहस्रशतयोधिनः । द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रोणपुत्रेण पातिताः ॥ ३ ॥ यस्य द्रोणो महेष्वासो न प्रादादाहवे मुखम् । निजघ्ने रथिनां श्रेष्ठं धृष्टद्युम्नं कथं नु सः ॥४॥ किं नु तेन कृतं कर्म तथायुक्तं नरर्षभ । यदेकः समरे सर्वानवधीन्नो गुरोः सुतः ॥ ५ ॥ भगवानुवाच । नूनं स देवदेशानामीश्वरेश्वरमव्ययम् । जगाम शरणं द्रौणिरेकस्तेनावधीद्बहून् ॥ ६ ॥ प्रसन्नो हि महादेवो दद्याद-

में पड़ीहुई सब सेनाको तीनों महारथियोंने संहार कर डाला. इसलिये राजा युधिष्ठिरने शोक करते२ श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ १ ॥ हे कृष्ण ! क्षुद्र और पुण्यकर्मरहित अश्वत्थामा, जो युद्ध करनेमें कुछ भी निपुण नहीं है, उसने मेरे सब महारथी पुत्रोंको कैसे मारडाला ? ॥ २ ॥ अस्त्रविद्यामें चतुर, पराक्रमी तथा लाखों योधाओंके सामने युद्ध करनेवाले द्रुपदके पुत्रोंको अश्वत्थामाने कैसे मार डाला ? ॥३॥ महाधनुषधारी अश्वत्थामा, युद्धमें जिसके सामनेको देखभी नहीं सकता था, अर्थात् युद्धमें जिससे दूरही दूर रहता था, उस महारथी धृष्टद्युम्नको कैसे मारडाला ? ॥४॥ हे महापुरुष! गुरुपुत्र अश्वत्थामाने ऐसा कौनसा उत्तम कर्म किया था, कि—जिसके प्रभावसे उस अकेलेनेही हमारे सब सैनिकोंको मारडाला ? ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—अश्वत्थामा देवोंके देव, ईश्वरोंके ईश्वर, अविनाशी महादेवजीकी शरणमें गया था और उनकी आराधना की थी, उसकेही फलसे उस अकेलेने

नि करिष्याम्यनेन वै ॥२४॥ तपसाधिगतं चान्नं प्रजार्थं मे पितामह । ओषध्यः परिवर्तेरन् यथैव सततं प्रजाः २५ एवमुक्त्वा स सक्रोधो जगाम विमना भवः । गिरेर्मुञ्जवतः पादं तपस्तप्तुं महातपाः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि कृष्ण-युधिष्ठिरसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

भगवानुवाच । ततो देवयुगेतीते देवा वै समकल्पयन् । यज्ञं वेदप्रमाणेन विधिवद्यष्टुमीप्सवः ॥ १ ॥ कल्पयामासुरथ ते साधनानि हवींषि च । भागार्हा देवताश्चैव यज्ञियं द्रव्यमेव च ॥ २ ॥ ता वै रुद्रमजानन्त्यो याथातथ्येन देवताः । नाकल्पयन्त देवस्य स्थाणोर्भागं नरा-

---

प्रजा तो दूसरेने रचडाली फिर मैं इस लिङ्गका क्या करूँ ? ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरी तपस्यासे प्रजाके लिये अन्न उत्पन्न हुआ है और औषधोंके उलटफेरके अनुसार प्रजाओंमें भी उलटफेर होता है अर्थात् अन्नमेंसे रेत (वीर्य और रेतमेंसे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं,) महातपस्वी महादेवजी क्रोधके साथ ऐसा कहकर उदास होगये और तपस्या करनेके लिये मुञ्जवान् पर्वतके शिखर पर चलेगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

श्रीभगवान् कहते हैं, कि–महादेवजीके अन्तर्धान होजाने पर देवयुग (सत्ययुग) में देवता वेदकी आज्ञाके अनुसार विधिपूर्वक यज्ञ करनेकी इच्छासे उसके लिये तयारी करनेलगे ॥ १ ॥ वे यज्ञके साधन घी आदि हविद्रव्य, उसका भाग लेनेवाले देवता और यज्ञकी सामग्रीके दूसरे सब पदार्थोंको भी इकट्ठे करनेलगे ॥ २ ॥ वे देवता रुद्रके स्वरूपको ठीकर नहीं पहचानते थे, इसलिये

समाजिरे ॥ ८ ॥ तमात्तकार्मुकं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमव्ययम् । विव्यथे पृथिवी देवी पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ९ ॥ न ववौ पवनश्चैव नाग्निर्जज्वाल चैधितः । व्यभ्रमच्चापि संविग्नं दिवि नक्षत्रमण्डलम् ॥ १० ॥ न बभौ भास्करश्चापि सोमः श्रीमुक्तमण्डलः तिमिरेणाकुलं सर्वमाकाशञ्चाभवद् वृतम् ॥ ११ ॥ अभिभूतास्ततो देवाः विषयान्न प्रजज्ञिरे न प्रत्यभाच्च यज्ञः स देवतास्त्रेसिरे तदा १२ ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा । अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः १३ स तु तेनैव रूपेण दिवं प्राप्य व्यराजत । अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर

हुए महादेवजी, जहाँ देवता यज्ञ कररहे थे तहाँ ही उस धनुषको लेकर आये ८ अविनाशी ब्रह्मचारी महादेवजी को धनुष लेकर आये हुए देखकर पृथिवी देवीको पीड़ा होनेलगी, पहाड़ काँपने लगे, पवन चलना बन्द होगया, होम करने पर भी अग्नि प्रकाशरहित होगया, आकाशमेंका नक्षत्र मण्डल उद्विग्न होकर घूमने लगा ९-१० सूर्य और चन्द्रमाके मण्डल निस्तेज होगये, आकाश अन्धकारसे ढकगया ११ देवता भी हारगये और किसी भी बातको जान नहीं सके, उनका यज्ञ निष्फल होगया और वे घबड़ागये ॥ १२ ॥ फिर शङ्करने भयानक बाण मारकर यज्ञकी छातीको बींध डाला और अग्निरूप यज्ञ मृगका रूप धारण करके तहाँसे भागगया ॥ १३ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! वह यज्ञ मृगकेरूपसे ही स्वर्गमें गया (१) तब रुद्र धनुष लेकर उसके पीछे दौड़े जो

---

(१) यज्ञ करनेसे उसके फलको भोगता हुआ यजमान कितनेही समय तक स्वर्गमें रहता है, परन्तु तहाँसे रुद्र कहिये अहङ्कार-

कण्ठोऽवहस्य च। अवष्टभ्य धनुष्कोटिं रुरोध विबुधां-
स्ततः ॥ १८ ॥ ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोच्छि-
नत्। अथ तत् सहसा राजन् छिन्नज्यं व्यस्फुरद्धनुः १९
ततो विधनुषं देवा देवश्रेष्ठमुपागमन्। शरणं सह यज्ञेन
प्रसादञ्चाकरोत्प्रभुः ॥२०॥ ततः प्रसन्नो भगवान् स्थाप्य
कोपं जलाशये। स जलं पावको भूत्वा शोषयत्यनिशं
प्रभो ॥ २१ ॥ भगस्य नयने चैव बाहू च सवितुस्तथा।
प्रादात् पूष्णश्च दशनान् पुनर्यज्ञांश्च पाण्डव ॥ २२ ॥

चक्कर खाकर तहाँही गिरपड़े ॥ १७ ॥ इसप्रकार शङ्कर ने हँसतेर सबको निकाल दिया और अट्टहास्य करके धनुषकी नोक अड़ाकर उन देवताओंको रोकदिया १८ देवता हाहाकार करनेलगे, परन्तु उनकी आज्ञासे शङ्कर के धनुषकी डोरी एकसाथ टूटगयी (१) डोरी टूटते ही शङ्करका धनुष प्रत्यञ्चाहीन दीखनेलगा, तब यज्ञ सहित देवता देवताओंमें श्रेष्ठ शङ्करकी शरणमें गये तथा शङ्कर उनके ऊपर प्रसन्न होगये १९-२० फिर उन्होंने अपने कोपको समुद्रमें फेंकदिया, हे राजन्! जो कोपाग्नि बड़वानल बनी हुई सदा जलको सुखाया करती है २१ हे पाण्डव! फिर शङ्करने भगके नेत्र अच्छेकर दिये, फिर सविताको हाथ और पूषाको दाँत देदिये तथा यज्ञको अभय देकर यज्ञकर्ताको यज्ञके फलका

(१) धनुषकी डोरी टूटी तब,'यज्ञसे ज्ञान प्राप्त हो' ऐसी देवताओं की कहीहुई वाणीने लोकैषणा तथा देहैषणारूप दो प्रकारके वासनात्मक धनुषकी डोरी अौतयज्ञको काटडाला, अर्थात् यज्ञ निष्काम होगया तब वह ईश्वरकी प्रसन्नतार्थ हुआ, यह भाव नीलकण्ठने दिखाया है।

॥ श्रीहरिः ॥

महर्षि कृष्णद्वैपायन-वेदव्यास-रचित

महाभारत

❀ स्त्री-पर्व ❀

मुरादाबादनिवासि 'सनातनधर्मपताका' सम्पादक

(ऋषिकुमार) रामस्वरूपशर्मा कृत

हिन्दी-भाषानुवाद-सहित

The Mahabharat

STREE PARV

HINDI TRANSLATION

by

Rishikmar

RAMSWARUP SHARMA

सनातनधर्म-यन्त्रालय मुरादाबादमें छपा

प्रिंटर और पब्लिशर प० रामस्वरूप शर्मा

२० सितम्बर १९२२

॥ श्रीः ॥

महाभारत-स्त्रीपर्वकी विषयसूची

श्रीहरिः ।

महाभारत

स्त्री-पर्व

जलप्रादानिकपर्व ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

जनमेजय उवाच । हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः । धृतराष्ट्रो महाराज श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥ १ ॥ तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः । कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥ अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापादन्योन्यकारितात् । वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत सञ्जयः ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । हते पुत्रशते

नारायण, नरोंमें उत्तम नर तथा, देवीसरस्वती और व्यासदेव को नमस्कार करके इतिहास आदि ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेका आरम्भ करे ॥ १ ॥ जनमेजयने बूझा, कि–हे वैशम्पायनजी ! दुर्योधनका और उसकी सब सेनाका नाश होजाने पर उसके मरणके समाचारको सुनकर धृतराष्ट्रने क्या किया ? ॥ १ ॥ तथा महामना कुरुवंशी धर्मराज युधिष्ठिरने और कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने क्या किया वह मुझे सुनाइये ॥ २ ॥ आपसमें दिया हुआ शाप (अश्वत्थामाने परीक्षितका नाश करनेके लिये 'ब्रह्मास्त्र उसके शिरपर पड़े' यह शाप दिया और श्रीकृष्णने 'तू तीनहजार वर्षतक गलितकुष्ठी होगा' यह शाप दिया) और अश्वत्थामाके कियेहुए भयानक कर्मको मैंने सुना, परन्तु उसके पीछेका जो वृत्तान्त सञ्जयने अन्धे राजा धृतराष्ट्रसे कहा हो वह मुझे सुनाइये ॥ ३ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि–हे महाराज ! सौ पुत्रोंके मारे

किन्तु बन्धुविहीननस्य जीवितेन ममाद्य वै। लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः ॥ ११ ॥ हृतराज्यो हतबन्धुर्हतचक्षुश्च वै तदा। न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान् ॥१२॥ न कृतं सुहृदो वाक्यं जामदग्न्यस्य जल्पतः। नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ १३ ॥ सभामध्ये च कृष्णेन यत् श्रेयोऽभिहितं मम। अलं वैरेण ते राजन् पुत्रः संगृह्यतामिति ॥ १४ ॥ तच्च वाक्यमकृत्वाहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः। न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितम् ॥१५॥ दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः। दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम् ॥ १६॥ द्रोणसूर्योपरागञ्च हृदयं मे विदीर्यते। न स्मराम्यात्मनः किञ्चित् पुरा

तो निःसन्देह मुझे इस पृथिवीपर दुःखमें भटककर ही जीवन पूरा करना पड़ेगा ॥ १० ॥ पर कटेहुए और बुढ़ापेसे जीर्णहुए पक्षी की समान अब मैं भी जराजीर्ण हूँ, बान्धवोंके मरजानेसे अकेला रहगया हूँ, अब मेरे जीवनसे क्या लाभ है? ॥ ११ ॥ मेरा राज्य छीनलिया गया, मेरे संबंधियोंको मारडाला गया और मैं आँखों से अन्धा हूँ, हे महाबुद्धिमान् सञ्जय! जिसकी कान्ति क्षीण होगयी हो ऐसे चन्द्रमाकी समान मेरी शोभा भी नष्ट होगयी है॥१२॥ मैंने स्नेहियोंका कहना नहीं माना तथा परशुराम, देवर्षि नारद और वेदव्यासजीका कहना भी नहीं माना, (यह उसका ही फल पाया है) ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णने बीच सभामें मुझसे मेरे कल्याण के लिये कहा था कि—हे राजन्! तुम वैर न करो, किन्तु अपने पुत्रको वशमें रक्खो (अपने पुत्रके पास सब राज्य रहने दो, केवल पाँच गाँव पांडवोंको देदो) परन्तु मैंने मूर्खतावश यह बात भी नहीं मानी, इसकारण ही अब मैं महादुःख पारहा हूँ तथा भीष्मजीकी धर्मभरी बात भी मैंने नहीं सुनी थी ॥ १४–१५ ॥ "बैलकी समान गरजनेवाले दुर्योधन, दुःशासन और

सञ्जये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा । यथा यौवनजं दर्पमास्थिते ते सुते नृप ॥ २४ ॥ न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम् । स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना ॥ २५ ॥ असिनैवैकधारेण स्वबुद्ध्या तु विचेष्टितम् । प्रायशोऽवृत्तसम्पन्नाः सततं पर्युपासिताः ॥ २६ ॥ यस्य दुःशासनो मन्त्री राधेयश्च दुरात्मवान् । शकुनिश्चैव दुष्टात्मा चित्रसेनश्च दुर्मतिः ॥ २७ ॥ शल्यश्च येन वै सर्वं शल्यभूतं कृतं जगत् । कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च २८ द्रोणस्य च महाराज कृपस्य च शरद्वतः । कृष्णस्य च महाबाहो नारदस्य च धीमतः २९ ऋषीणाञ्च तथाऽन्येषां व्यासस्यामिततेजसः । न कृतं तेन वचनं तव पुत्रेण भारत

पहले जो२ उपदेश दिये थे वह वेदके निर्णय और अनेकों शास्त्र तथा आगम तुमने पुरे २ वृद्धोंके मुखसे सुने हैं इसलिये तुम शोकको त्यागदो हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र जब जवानीके ज़ोशमें भराहुआ था, उस समय तुमने मित्रोंकी हितकी बातें ध्यान देकर नहीं सुनीं तथा तुमने फलके लालचसे लोभी बनकर अपना कोई भी स्वार्थ नहीं साधा ॥ २३-२५ ॥ तुमने तो केवल अपनी बुद्धिसे एक तलवारकी धारसे ही काम करना आरम्भ करदिया था और जो प्रायः दुराचारी थे, उनकी ही सदा सेवाकी थी (फिर अब शोक करनेसे क्या लाभ है ?) ॥२६॥ हे महाराज ! दुःशासन, दुष्टात्मा कर्ण और उसके ही समान दुष्ट स्वभाववाला शकुनि, दुष्टबुद्धि चित्रसेन तथा जिसने सब जगत्को शल्य समान करदिया था ऐसा राजा शल्य,ये सब जिसके मंत्री थे ऐसे तुम्हारे पुत्रने कुरुवंशके वृद्ध भीष्मजीका गान्धारीका विदुरका, द्रोणाचार्यका,कृपाचार्यका,महासमर्थ श्रीकृष्णजीका, बुद्धिमान् नारदजीका और दूसरे ऋषियोंका तथा परमतेजस्वी वेदव्यासजीका भी कहना नहीं माना था, तुम्हारा पुत्र तो युद्ध ही करना चाहता

नानुपश्यति । स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येवं यथा भवान् ॥३७॥ अर्थान्न शोचन् प्राप्नोति न शोचन् विन्दते फलम् । न शोचन् श्रियमाप्नोति न शोचन् विन्दते परम् ॥ ३८ ॥ स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन् । दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः ३९ त्वयैव ससुतेनायं वाक्यवायुसमीरितः । लोभाज्येन च संसिक्तो ज्वलितः पार्थपावकः ॥ ४० ॥ तस्मिन् समिद्धे पतिताः शलभा इव ते सुताः । तान् वै शराग्निनिर्दग्धान्न त्वं शोचितुमर्हसि ४१ यच्चाश्रुपातात् कलिलं वदनं वहसे नृप । अशास्त्रदृष्टमेतद्धि न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥४२॥ विस्फुलिङ्गा इव ह्येतान् दहन्ति किल-

---

पडरहा है, परन्तु अब शोक करनेसे क्या होता है ? ॥ ३६ ॥ जिस मनुष्यकी दृष्टि केवल शहदके ही ऊपर है, परन्तु उसको लेनेकेलिये जाने पर पहाडके ऊपरसे नीचेको गिर पडना भी संभव है,इस बातको जो नहीं देखता है उस पुरुषको शहदको लेने के लोभसे तुम्हारी समान ही पछताना पडता है ॥ ३७ ॥ शोच करनेसे न कुछ धन ही मिलता है और न कुछ फल ही मिलता तथा कोई मनचीता पदार्थ भी नहीं मिलता है, प्रत्युत जो शोक करता है वह मोक्षसे भी भ्रष्ट होजाता है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य अपने आप अग्नि सुलगाकर उसको कपड़ेमें लपेटकर जल मरता है और फिर शोक करता है उसको चतुर कौन कहेगा ? ॥३९॥ तुमने ही अपने पुत्रका साथ देकर पाण्डवरूपी अग्निको वाक्यरूपी पवनसे प्रदीप्त करदिया था और उसमें लोभरूप घी डाल कर उसको और भी धधका दिया था ॥ ४० ॥ वह अग्नि जब बढ़ा तो उसमें तुम्हारे पुत्र टीड़ियोंकी समान टूटपड़े, उन बाणरूप आगमें जलने वालोंके लिये अब तुम्हे शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा मुख अश्रुपातसे मलिन होगया है, परन्तु ऐसे रोना शास्त्रके विरुद्ध है तथा समझदार

यदा शूरञ्च भीरुञ्च यमः कर्षति भारत । तत् किं न योत्स्यन्ति हि ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४ ॥ अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति । कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्त्तते ॥ ५ ॥ अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत । अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ६ ॥ न शोचन्मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः । एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ ७ ॥ कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधान्युत । न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ॥ ८ ॥ यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्त्तयति सर्वशः । तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ ॥ ९ ॥ एकसा-

---

है और जीवनके अन्तमें मरण भी अवश्य ही होता है ॥ ३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! जब यमराज वीर और डरपोक दोनोंको ही खेंचकर लेजाता है तो वे क्षत्रिय अपने धर्मानुसार क्यों न लड़ते ? ॥ ४ ॥ युद्ध न करनेवाला मरजाता है और युद्ध करने वाला जीवित रहता है, हे महाराज ! जब काल समीप आजाता है तो उसके चुङ्गलसे कोई भी नहीं बचसकता ॥ ५ ॥ हे भारत ! जन्म होनेसे पहले कोई भी प्राणी नहीं होता, बीचमें दीखने लगते हैं और अन्तमें उनका दीखना फिर बन्द होजाता है, स्वप्नमें दीखनेवालोंकी समान फिर मरने वालोंके लिये शोक क्या करना ? ॥ ६ ॥ शोक करनेसे मनुष्य मरनेवालेके पास पहुँचकर उनको जिला नहीं सकता तथा शोक करनेसे मर भी नहीं जाता, जब जगत्की स्वाभाविक ऐसी दशा है तो तुम शोक क्यों करते हो ? ॥ ७ ॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! काल नाना प्रकारके सब ही प्राणियोंका नाश करडालता है, कालको न कोई प्यारा है और न कोई द्वेषपात्र है ॥ ८ ॥ हे भरतसत्तम ! जैसे वायु तृणके अग्रभागोंको चारों ओरको अपनी इच्छानुसार घुमाता है तैसे ही काल सब प्राणियोंको

सङ्कल्पयिष्यति । इन्द्रस्यातिथयो ह्येते भवन्ति पुरुषर्षभ ॥ १५ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः ॥ १६ ॥ शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः । हूयमानाञ्छरांश्चैव सेहुस्तेजस्विनो मिथः ॥ १७ ॥ एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्गपन्थानमुत्तमम् । न युद्धादधिकं किञ्चित् क्षत्रियस्येह विद्यते ॥ १८ ॥ क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः । आशिषः परमाः प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि ॥ १९ ॥ आत्मानमात्मनाश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ । नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कायमुत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २० ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च । संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ २१ ॥ शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।

के अतिथि होंगे ॥ १५ ॥ वीर पुरुष रणमें मरनेसे जिसप्रकार स्वर्गमें जाते हैं तैसे दक्षिणावाले यज्ञ करनेसे, तपस्या करनेसे अथवा आत्मज्ञानसे नहीं जाते ॥ १६ ॥ इन वीर क्षत्रियोंने अपने शरीररूप अग्नियोंमें बाणरूप आहुतियोंका होम किया था और उन आहुतियोंको तेजस्वी पुरुषोंने आपसमें सहलिया था ॥ १७ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियोंके लिये तो इस लोकमें युद्ध करतेहुए स्वर्गमें चलेजानेकी अपेक्षा दूसरा और कोई भी श्रेष्ठ मार्ग नहीं है १८ इस लड़ाईमें लड़नेवाले और मरनेवाले क्षत्रिय महात्मा, वीर और युद्धको शोभा देनेवाले थे, उन्होंने तो उत्तम ही फल पाया है, इसलिये वे सब शोकके योग्य नहीं है ।१९। इसलिये हे श्रेष्ठ राजन् ! तुम अपने मनको धीरज दो और शोक न करो, आज तुम्हें शोकने दबालिया है, परन्तु इससे तुम्हें अपने शरीरका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥ इस संसारमें हमने अनेकों बार जन्म लेकर हजारों माता पिता, सैंकड़ों पुत्र और स्त्रियोंका अनुभव किया है, परन्तु वे किसके हुए और हम किसके

अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च ॥२८॥ मनुष्या मानसैर्दुःखैर्दह्यन्ते चाऽल्पबुद्धयः । नार्थो न धर्मो न सुखं यद्देतदनुशोचसि ॥ २९ ॥ न च नापैति कार्यार्थात् त्रिवर्गाच्चैव हीयते । अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ॥ असन्तुष्टा प्रमुह्यन्ति संतोषं यान्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥ प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः । एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ३१ शयानञ्चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति । अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् ॥ ३२ ॥ यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभम् । तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३३ ॥

जितना ही ध्यान दो यह उतना ही बढता है, अप्रिय वस्तुके मिलने पर और प्रिय वस्तुका वियोग होनेपर ओछी बुद्धिवाले मनुष्य ही मानसिक दु खसे जला करते हैं, अब तुम जो शोक कर रहे हो, इससे अर्थ, धर्म या सुख नहीं मिलता ॥२८॥२९॥ किन्तु उलटा वह अपने कर्त्तव्य कार्यसे भ्रष्ट होता चलाजाता है और उसका धर्म–अर्थ–कामरूप त्रिवर्ग भी नष्ट होजाता है, इस प्रकार उलटफेरकी दशामें पड़े हुए असन्तोषी मनुष्य अत्यन्त दुःखी होते हैं, परन्तु विवेकी मनुष्योंके ऊपर शोकका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता और वे सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥३० ॥विवेकसे मानसिक दुःखको दूर करना,औषधोंसे शरीरके दुःखको दूर करना इसको ही विज्ञानकी शक्ति कहते हैं, परन्तु जो मूर्ख हैं वे इस शान्तिको नहीं पासकते ॥ ३१ ॥ मनुष्यका पहले जन्ममें कियाहुआ कर्म, उसके सोने पर सोजाता है और उसके उठने पर वह भी उठ बैठता है तथा जब मनुष्य दौड़ता है तो उसके पीछे २ दौड़ने लगता है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार देखाजाय तो मनुष्य जिस२ अवस्थामें जो२ शुभ अशुभ कर्म करता है, उस२ अवस्थामें उसको वैसा२ ही फल मिलता है ॥ ३३ ॥ तथा मनुष्य जिस२ शरीरसे

तु पण्डिताः ॥२॥ विदुर उवाच । यतो यतो मनो दुःखात् सुखाद्वा विप्रमुच्यते । ततस्ततो नियम्यैतच्छान्ति विन्देत वै बुधः ॥ ३ ॥ अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ । कदलीसन्निभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते ॥ ४ ॥ यदा प्राज्ञाश्च मूढाश्च धनवन्तोथ निर्धनाः । सर्वे पितृवनं प्राप्य स्वपन्ति विगतज्वराः ॥ ५ ॥ निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धिभिः । किं विशेषं प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ॥६॥ येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् । कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति विप्रलब्धधियो नराः ॥ ७ ॥ गृहाणीव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः । कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकन्तु शाश्वतम् ॥ ८ ॥ यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु

विदुरने कहा, कि-विद्वान् पुरुष जैसे२ मानसिक दुःखमेंसे अथवा सुखमेंसे मुक्त होताजाता है तैसे२ मनको नियममें रखता है और उससे मनको शान्ति मिलती है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! विचार करने पर मालूम होता है, कि-यह सब जगत् नाशवान् है और सब लोक केलेके वृक्षकी समान हैं, इनमें कुछ सार है ही नहीं ४ जब बुद्धिमान् और मूर्ख, धनी और निर्धन ये सबही मरकर सन्तापरहित मांसरहित,कङ्कालरूप,नसोंसे बँधेहुए शरीरोंके द्वारा श्मशान में जाकर सोजाते हैं, फिर दूसरे पुरुष तहाँ उनमें कौनसी विशेषता देखते हैं, जिससे उनके कुल और रूपकी विशेषताको पासकें (जब मरजाने पर सबही समान हैं तो लोभभरी बुद्धिवाले मनुष्य परस्परकी पदवियें छीननेके लिये क्यों लार टपकाते हैं?)।५-७। पण्डित कहते हैं,कि-मनुष्योंके स्थूल शरीर तो घरोंकी समान हैं उन घरोंका (स्थूल शरीरों)का समय पाकर वियोग (नाश) होजाता है, एक सत्त्वरूप जीवात्मा ही अविनाशी है ॥ ८ ॥ मनुष्य जैसे पुरानेहुए अथवा नयेही वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे वस्त्र धारण करना चाहता है ऐसेही जीव भी जीर्ण अथवा नयेही देहको

मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते ॥ १६ ॥ प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च । एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे १७ यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसन्तरन् । उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किञ्चित् सत्त्वं नराधिप ॥ १८ ॥ एवं संसारगहने उन्मज्जन-निमज्जने । कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाऽल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥ ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्त्वे संसारान्तगवेषिणः । समागमज्ञा भूतानां ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे विदुरवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर । एत-दिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ।

बूढ़ा होजाने पर नष्ट होजाते हैं ॥ १२–१६ ॥ प्राणी पहले जन्मके कर्मानुसार जन्मते हैं और फिर नहीं रहते, जगत्का स्वरूप वा स्वभावही ऐसा है, फिर तुम किसलिये शोक करते हो ? ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जैसे कोई प्राणी जलमें क्रीडाके लिये तैरता हुआ कभी ऊपरको उभर आता है और कभी डूबभी जाता है, ऐसेही इस गहन संसारमें जीवभी कभी बचजाता है और कभी नष्ट होजाता है तथा कर्मका फल भोगनेके लिये कभी जन्मधारण करता है और बन्धनमें भी पड़जाता है, ऐसी दशा देखकर ओछी बुद्धिवाले मनुष्य दुःखित होते हैं ॥ १८॥१९ ॥ परन्तु जो बुद्धिमान् , सत्त्वगुणी सबका हित चाहनेवाले और 'प्राणिमात्रका समागम कर्मानुसार होता है' इस बातको समझनेवाले होते हैं वे ही इस संसारमें परमगति पाते हैं ॥ २० ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! मैं यह बूझता हूँ, संसारके गहन स्वरूपको कैसे जानाजाय ? मैं इस तत्त्व को सुनना चाहता हूँ, तू सुना ॥ १ ॥ विदुरने कहा, कि–

पाशैः सङ्गस्वादुभिरावृतम् । व्यसनान्यपि वर्त्तन्ते विविधानि नराधिप ॥ ८ ॥ बध्यमानश्च तैर्भूयो नैव तृप्तिमुपैति सः । तदा नावैति चैवायं प्रकुर्वन् साध्वसाधु वा ॥ ९ ॥ तथैव परिरक्षन्ति ये ध्यानपरिनिष्ठताः । अयं न बुध्यते तावद्यमलोकमथागतम् ॥१०॥ यमदूतैर्विकृष्यंश्च मृत्युं कालेन गच्छति ॥ १० ॥ वाग्घीनस्य च यन्मात्रमिष्टानिष्टं कृतं मुखे । भूय एवात्मनात्मानं बध्यमानमुपेक्षते ॥ ११ ॥ अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः । लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते ॥ १२ ॥ कुलीनत्वे च

सङ्ग बड़ा मीठा लगता है ऐसी इन्द्रियोंकी फाँसियोंमें वह जीव बँधा रहता है, अनेकों प्रकारके व्यसनोंमें लिपटजाता है ॥ ८ ॥ और विषयसुखोंमें ऐसा बँधजाता है, कि-उनसे अघाता ही नहीं और भला या बुरा काम करता हुआ भी उसको समझ नहीं सकता ॥ ९ ॥ परन्तु जो ध्यान धारणा आदिमें प्रवीण होते हैं वेही अपने आत्माको विषयोंकी ओरको जानेसे रोकसकते हैं, इस साधारण मनुष्यको तो इतना भी ज्ञान नहीं होता है, कि-मुझे अन्तमें यमलोकमें जाना है (जबतक मनुष्य कदाचित् ऐसा विचार करनेकी योग्यता पाता है) इतनेमें ही काल आकर खड़ा होजाता है-मनुष्य मरजाता है, यमदूत इसे खोलमेंसे खेंचकर यमराजके पास लेजाते हैं, तहाँ इस जीवको पूर्वजन्ममें जो कुछ पाप या पुण्य किया होता है उसका फल भोगना पड़ता है, किये हुए कर्मके भले या बुरे फलको भोगकर, फिर यह जीव अपने ही कियेहुए कर्मसे अपने नाशके लिये संसारमें बँधजाता है-जन्म धारण कर लेता है, फिर भी वह उसमेंसे छूटनेके लिये जरा भी उद्योग नहीं करता, किन्तु उधरको उपेक्षा ही रखता है १०-११ ओः ! प्राणी स्वयं ही धोखा खायाहुआ, लोभके वशीभूत, लोभ, क्रोध और भयसे उन्मत्त होता है, इसलिये अपने स्वरूपको जरा

दन्योन्यमिच्छन्ति मलब्धुमिह दुर्बुधाः ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च यो निशम्य श्रुतिं त्विमाम्। अध्रुवे जीवलोकेस्मिन् यो धर्ममनुपालयन् ।जन्मप्रभृति वर्त्तेत प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ १९ ॥ एवं सर्वं विदित्वा वै यस्तत्त्वमनुवर्त्तते। स प्रमोक्षयते सर्वान् पन्थानो मनुजाधिप ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। यदिदं धर्मगहनं बुद्ध्या समनुगम्यते। तद्धि विस्तरशः सर्वं बुद्धिमार्गं प्रशंस मे ॥१॥ विदुर उवाच। अत्र ते वर्त्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे। यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः ॥ २ ॥ कश्चिन्महति कान्तारे वर्त्तमानो द्विजः किल। महद्दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम् ॥ ३ ॥ सिंहव्याघ्रगज-

---

खोटे विचार लाकर आपसमें धोखादेही क्यों करते हैं ?॥१८॥ इस वेदके उपदेशको शास्त्रमें प्रत्यक्ष लिखा देखकर अथवा किसीसे सुनकर जो प्राणी इस नाशवान् जीवलोकमें बालकपनसे ही धर्माचरण करता रहता है वही परमगतिको पाता है॥१९॥ हे राजन्! जैसा मैंने कहा है इस सब तत्त्वको जानकर जो पुरुष इसके अनुसार ही वर्त्ताव करता है वही संसारके सब मार्गोंसे छूटकर परम गतिको पाता है ॥ २० ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे विदुर ! तू कहता है, कि–धर्मका मार्ग गहन है और उसको बुद्धिसे जानाजासकता है तू मुझे सब प्रकार का बुद्धिमार्ग विस्तारके साथ सुना ॥ १ ॥ विदुरने कहा, कि–स्वयंभू परमात्माको नमस्कार करके मैं तुम्हें, जैसी संसारकी गति महर्षियोंने वर्णन की है वैसी ही विस्तारके साथ सुनाता हूँ ॥२॥ कहते हैं, कि–किसी बड़े भारी वनमें कोई एक ब्राह्मण रहता था, वह फिरता २ मांसभक्षी हिंसक प्राणियोंसे भरेहुए बड़े दुर्गम

संवृतः। पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ॥ ११ ॥ विलग्नश्चाभवत्तस्मिन् लतासन्तानसंकुले। पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् ॥ १२॥ स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधःशिराः। अथ तत्रापि चान्योस्य भूयो जात उपद्रवः ॥ १३ ॥ कूपमध्ये महानागमपश्यत महाबलम्। कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥ १४ ॥ षड्वक्त्रं कृष्णशुक्लञ्च द्विषट्कपदचारिणम्। क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥ १५ ॥ तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः। नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः ॥१६॥ आसते मधु संवृत्य पूर्वमेव निकेतजाः। भूयो भूयः

भराहुआ था, उस वनमें एक कुआँ था, जो तृणोंसे ढकीहुई बड़ी मजबूत लताओंसे ढकाहुआ था, वह ब्राह्मण दौड़ता२ उस लताओंसे ढके हुएकुएमें जापड़ा ॥ ६–११॥ परन्तु लताओंके जालमें उलझजानेके कारण जैसे कठहलका बड़ा फल डंडीके आधारपर लटका रहता है तैसेही वह ब्राह्मण उस कुएमें ऊपरको पैर और नीचेको शिर होकर लटका रहगया, फिर इस उलटे टँगनेकी दशासे ही इसका छुटकारा नहीं हुआ, किन्तु तहाँ इसके ऊपर एक और विपत्ति आगयी ॥ १२ ॥ १३ ॥ उलटा होकर लटक रहा था, कि–इतनेमेंही इसको कुएके भीतर एक महाबली बड़ाभारी सर्प दीखा और कुएके मुखके पासको दृष्टि गयी तो वहाँ एक बड़ाभारी हाथी खड़ा दीखा॥ १४॥ उस हाथीके छः मुख थे, उसके शरीर का रङ्ग सफेद और काला था, वह बारह चरणोंसे धीरे २ चल रहा था और लतावृक्षोंसे ढकाहुआ था ॥ १५ ॥ उस कुएके पास एक वृक्ष था, उस वृक्षकी शाखा और टहनियोंके ऊपर अनेकरूपधारी भयानक दीखनेवाली मधुमक्खियें पहलेसेही अपना निवासस्थान (छत्ता) बनाकर मधु (शहद) को ढकेहुए तहाँ बैठी थीं, हे भरतवंशी राजन्! वे मक्खियें बारम्बार मधुकी इच्छा

महद्भयम् ॥ २३ ॥ एवं स सते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे । न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अहो खलु महद्दुःखं कृच्छ्रवासश्च तस्य ह । कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदताम्वर ॥ १ ॥ स देशः क्व नु यत्रासौ वसते धर्मसंकटे । कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात् ॥२॥ एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामहे तदा । कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन हि ॥ ३ ॥ विदुर उवाच । उपमानमिदं राजन् मोक्षविद्भिरुदाहृतम् । सुकृतं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ॥ ४॥ उच्यते यत्तु कान्तारं महासंसार एव सः । वनं दुर्गं

इस प्रकार वह संसारसागरमें पड़ाहुआ मनुष्य दुःख और भयसे भरपूर उस वनमें निवास कररहा था, परन्तु उसको अपने जीवनकी आशा पर खेद नहीं होता था ॥ २४॥ पाँचवां अध्याय समाप्त ५

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! ओः ! उस ब्राह्मणको तो उस वनमें बड़े कष्टसे रहना पड़ा होगा और इस दशामें उसको बड़ाही दुःख हुआ होगा, तो भी उसको ऐसे निवास पर प्रेम और सन्तोष कैसे होता था ? ॥ १ ॥ वह ब्राह्मण जहाँ ऐसे धर्मसङ्कटमें अपना जीवन बितारहा है वह कौनसा देश है ? और वह मनुष्य उस महाभयानक स्थानमेंसे कैसे छूटे ? २ यह सब मुझे सुनाइये तो हम इस विषयमें अच्छा उद्योग करें, उसका उद्धार करनेके लिये मेरे मनमें बड़ी दया उत्पन्न होरही है ॥ ३ ॥ विदुरने कहा, कि–हे महाराज ! मोक्षको जाननेवाले पण्डितोंने यह तो एक दृष्टान्तरूप उदाहरण दिया है, कि-जिसको समझनेसे मनुष्य धर्माचरण करके परलोकमें उसका फल पाता है ॥ ४ ॥ जिसको बड़ाभारी वन कहा है उसको महासंसार

यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम् । तांस्तु कामरसान् विद्याद्यत्र मज्जन्ति मानवाः ॥ १३ ॥ एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तं विदुर्बुधाः । येन संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः १४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अहोऽभिहितमाख्यानं भवता तत्त्वदर्शिना । भूयः एव तु मे हर्षः श्रुत्वा वागमृतं तव ॥ १ ॥ विदुर उवाच । शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम् । यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः ॥ २ ॥ यथा तु पुरुषो राजन् दीर्घमध्वानमास्थितः । क्वचित् क्वचिच्छ्रमाच्छ्रान्तः कुरुते वासमेव च ३ एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत । कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते

और जो शहदकी मक्खियें कही हैं उनको कामनायें जानो ११-१२ और शहदकी टपकती हुई बहुतसी धाराओंको कामनाओंके रस जानो, कि-जिन कामनाओंके रसोंमें मनुष्य डूब जाते हैं ॥१३ ॥ बुद्धिमान् विद्वान् ही इस प्रकार संसाररूप चक्रके परिवर्त्तन (उलट-फेर) को जानते हैं और वे वैराग्यरूप तलवारसे संसारचक्रकी फाँसियोंको काटडालते हैं ॥ १४ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे विदुर ! तत्त्वको जानने वाले तूने मुझे जो कथा सुनायी यह वास्तवमें अचरजसे भरी हुई है, तेरी वाणीरूप अमृतको पीकर मुझे बड़ा ही हर्ष हो रहा है ॥ १ ॥ विदुर ने कहा, कि-जिसको सुनकर विचारवान् पुरुष संसारके दुःखोंसे छूटजाते हैं ऐसे इस तत्त्वमार्गको मैं तुम्हें फिर विस्तारके साथ सुनाता हूँ, सुनिये-॥ २ ॥ हे राजन् ! जैसे लंबा मार्ग तय करने के लिये यात्रा करता हुआ पुरुष चलनेके परिश्रमसे थक जानेके कारण मार्गमें कहीं कहीं विश्राम करता है ॥ ३ ॥ हे भारत ! ऐसे ही जो अल्पज्ञानी हैं उनको संसारयात्रामें अकेला चलकर

क्रमेणास्योपयुञ्जन्ति रूपमायुस्तथैव च ॥ ११ ॥ एते कालस्य निधयो नैतान् जानन्ति दुर्बुधाः । धात्रा विलिखितान्याहुः सर्वभूतानि कर्मणा ॥ १२ ॥ रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम् । इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्म बुद्धिश्च रश्मयः ॥ १३ ॥ तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति । स तु संसारचक्रेऽस्मिन् चक्रवत् परिवर्त्तते ॥१४॥ यस्तान् संयमते बुद्ध्या स यतो न निवर्त्तते । ये तु संसारचक्रेऽस्मिन् चक्रवत् परिवर्त्तिते ॥ १५ ॥ भ्रममाणा न मुह्यन्ति संसारे न भ्रमन्ति ते । संसारे भ्रमतां राजन् दुःखमे-

---

अज्ञानी जीवको घेरलेते हैं, इसप्रकार यह विचारा संसारी जीव मज्जा और मांसरूप कीचके निराधार खड्डमें पड़ा२ लथड़ता रहता है, वर्ष महीने, पक्ष, और दिनरातकी सन्धिके विभाग इस अज्ञानी जीवके रूप तथा आयुका क्रमसे नाशकिया करते हैं१०-११ ये संवत्सर आदि सब कालकी सहायता करनेवाले हैं, मूढ़ मनुष्य इनको पहचानते नहीं, सब प्राणी कहते हैं, कि–विधाताने हमारे लिये कर्मोंके फल पहलेसे ही ललाटमें लिखदिये हैं (और उनके अनुसार ही सब कुछ होता है) ॥ १२ ॥ परन्तु विद्वान् कहते हैं, कि–प्राणियोंका शरीर एक रथ है, सत्त्व-बुद्धि सारथी है, इन्द्रियें घोड़े हैं और मन उनकी लगाम है ॥ १३ ॥ इन्द्रियरूप घोड़े बड़े वेगके साथ दौड़रहे हैं, जो मनुष्य इन घोड़ों के पीछे २ दौडता है वह इस संसारचक्रमें पहियेकी समान घूमता ही रहता है अर्थात् जो इन्द्रियोंके द्वारा कर्ममार्गमें प्रवृत्त रहता है वह इस संसारमें आवागमनके चक्र पर चढ़ा रहता है ॥ १४ ॥ परन्तु जो मनुष्य खूब सावधान रहकर बुद्धिसे इन इन्द्रियरूप घोड़ोंको अपने वशमें रखता है उसको फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता है, यह संसार एक चक्र है जो पहियेकी समान घूमता रहता है, इसमें चक्कर लगाने पर भी जो मोहमें नहीं पड़ते,

यथात्मा स्थिरसंयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत । दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः ॥ २३ ॥ शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे । त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२४॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति महीपते । स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम् ॥ २५ ॥ न तत् क्रतुसहस्रेण नोपवासैश्च नित्यशः । अभयस्य हि दानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ २६ ॥ न ह्यात्मनः प्रियतरः किञ्चित् भूतेषु निश्चितम् । अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ॥२७॥ तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता । नानामोहसमायुक्ता

त्माको दुःखमेंसे मुक्त करता है, तैसे पराक्रम, धन, मित्र और स्नेही पुरुष दुःखमेंसे नहीं छुटासकते ॥ २२ ॥ इसलिये हे भरत-वंशी राजन् ! पुरुषको दया धारण करके शीलवान् होना चाहिये दम, दानशक्ति और सावधानता ये तीन परमात्माके घोड़े हैं ॥ २३ ॥ जो पुरुष इन घोड़ोंसे जुते मनके रथमें बैठकर शील-रूप लगामको पकड़े रहता है वह पुरुष ही मृत्युके भयसे छूटकर ब्रह्मलोकमें जाता है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान देता है वह विष्णुके अविनाशी परमपदको पाता है ॥ २५ ॥ मनुष्य अभय देनेसे जिस फलको पाता है वह फल न सहस्रो यज्ञ करनेसे मिलता है और न नित्य उपवास करनेसे मिलता है ॥ २६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! प्राणीमात्रको अपने आत्माकी अपेक्षा दूसरी कोई भी वस्तु अधिक प्यारी नहीं है, ऐसे ही प्राणीमात्रको मरणसे बढ़कर और कोई वस्तु अप्रिय भी नहीं है ॥ २७ ॥ इसलिये विचारवान्को सब प्राणियोंके ऊपर दया करनी चाहिये, सांसारिक पदार्थोंके ऊपर मोह करनेवाले, बुद्धिके जालमें उलझेहुए स्थूल दृष्टिवाले मनुष्य इस संसारमें अनेकों योनियोंमें जन्म धारण करते हैं, परन्तु हे राजन् ! अत्यन्त

ण्यं मानुषेषु परिग्रहे। यतो मूलानि दुःखानि संभवन्ति मुहुर्मुहुः॥६
पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसम्बन्धिनामथ। प्राप्यते सुमहद्दुःखं
विषाग्निप्रतिमं विभो॥७॥ येन दहन्ति गात्राणि येन प्रज्ञा विन-
श्यति। येनाभिभूतः पुरुषो मरणं बहु मन्यते॥८॥ तदिदं व्य-
सनं प्राप्तं मया भाग्यविपर्ययात्। तस्यान्तं नाधिगच्छामि ऋते
प्राणविमोक्षणात्॥९॥ तथैवाहं करिष्यामि अद्यैव द्विजसत्तम।
इत्युक्त्वा तु महात्मानं पितरं ब्रह्मवित्तमम्॥१०॥ धृतराष्ट्रोऽ-
भवन्मूढः स शोकं परमं गतः। अभूच्च तूष्णीं राजासौ ध्यायमानो
महीपते॥११॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनः प्रभुः। पुत्र-
शोकाभिसन्तप्तं पुत्रं वचनमब्रवीत्॥१२॥ व्यास उवाच। धृत-
राष्ट्र महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु। श्रुतवानसि मेधावी धर्मा-

भोगने पड़ते हैं॥२-६॥ हे राजन्! पुत्रका नाश होनेपर, धनका नाश होने पर, जातिवालोंका और संबन्धियोंका नाश होने पर विष और अग्निके दाहकी समान महादुःख भोगना पड़ता है॥७॥ जिससे कि-मनुष्यका शरीर जलकर खाक होजाता है और बुद्धिका नाश होजाता है तथा जिस दुःखसे पीड़ित हुआ मनुष्य जीवित रहनेसे अपना मर जाना अच्छा समझता है॥८॥ भाग्यके पलटा खाजानेसे आज मेरे ऊपर वैसा ही दुःख आकर पड़ा है, हाय! अब प्राण त्यागे विना मुझे इस दुःखका अन्त आता नहीं दीखता॥ ९॥ इस लिये हे द्विज-सत्तम व्यास! मैं आज ही अपने प्राणोंको त्यागदूँगा इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता महात्मा पिता व्यासजीसे कहकर बड़े ही शोकमें डूबा हुआ राजा धृतराष्ट्र मूढ़ बनगया और हे राजन्! चुप होकर भविष्यके लिये विचार करने लगा॥१०॥११॥ प्रभु कृष्ण द्वैपायनजी उस धृतराष्ट्रकी इस बातको सुनकर पुत्रोंके शोकसे सन्ताप करते हुए धृतराष्ट्रसे इस प्रकार बोले॥१२॥ व्यासजी

यथा स्थैर्यं भवेत्तव ॥ २० ॥ पुराहं त्वरितो यातः सभामैन्द्रीं जितक्लमः । अपश्यं तत्र च सदा समवेतान् दिवौकसः ॥२१ ॥ नारदप्रमुखाश्चापि सर्वे देवर्षयोनघ । तत्र चापि मया दृष्टा पृथिवी पृथिवीपते ॥२२॥ कार्यार्थमुपसम्प्राप्ता देवतानां समीपतः । उपगम्य तदा धात्री देवानाह समागतान् ॥ २३ ॥ यत् कार्यं मम युष्माभिर्ब्रह्मणः सदने तदा । प्रतिज्ञातं महाभागास्तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ २४ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्लोकनमस्कृतः । उवाच वाक्यं प्रहसन् पृथिवीं देवसंसदि ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां यस्तु ज्येष्ठः शतस्य वै । दुर्योधन इति ख्यातः स ते कार्यं करिष्यति ॥ २६ ॥ तञ्च प्राप्य महीपालं कृतकृत्या भविष्यसि । तस्यार्थे पृथिवीपालाः कुरुक्षेत्रे समागताः ॥ २७ ॥ अन्योन्यं

॥ १९ ॥ देवताओंका जो काम था वह भी मैंने प्रत्यक्षरूपसे सुना था, वह मैं तुझसे कहता हूँ, सुन, उससे तुझे धीरज मिलेगा२० पहले एक समय मैं सावधान होकर इन्द्रकी सभामें गया था, उस समय मैंने तहाँ सब देवताओंको इकट्ठेहुए देखा ॥ २१ ॥ हे निर्दोष राजन् ! नारद आदि सब देवर्षि और पृथिवी देवीको भी मैंने तहाँ देखा ॥ २२ ॥ पृथिवी अपने कामके लिये देवताओंके पास आयी थी, वह उनके समीपमेंको जा इकट्ठेहुए देवताओंसे कहने लगी, कि–॥ २३ ॥ हे महाभाग देवताओं और महर्षियों ! तुमने पहले ब्रह्मलोकमेंमुझसे जिस कामको करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अब उसको शीघ्रही करना चाहिये ॥ २४ ॥ पृथिवीकी इस बातको सुनकर जिनको सब लोक नमस्कार किया करते हैं ऐसे विष्णुभगवान्ने देवसभामें हँसतेहुए पृथिवीसे यह बात कही, कि–॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें जो बड़ा पुत्र दुर्योधन नामसे प्रसिद्ध है वह तेरे कामको करेगा ॥ २६ ॥ उस राजाको पाकर तेरा काम सिद्ध होजायगा, उसके लिये बहुतसे राजे कुरु-

वेद तत्त्ववित् ॥ ३४ ॥ आत्मापराधात् पुत्रास्ते विनष्टाः पृथिवी-पते । मा तान् शोचस्व राजेन्द्र न हि शोकेऽस्ति कारणम् ।३५। न हि ते पाण्डवाः स्वल्पमपराध्यन्ति भारत । पुत्रास्तव दुरात्मानो यैरियं घातिता मही ॥ ३६ ॥ नारदेन च भद्रन्ते पूर्वमेव न संशयः । युधिष्ठिरस्य समितौ राजसूये निवेदितम् ॥ ३७ ॥ पाण्डवाः कौरवाःसर्वे समासाद्य परस्परम् । न भविष्यन्ति कौन्तेय यत्ते कृत्यं तदाचर ॥ ३८ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा तदाशोचन्त पाण्डवाः । एवं ते सर्वमाख्यातं देवगुह्यं सनातनम् ॥ ३९ ॥ कथं ते शोकनाशः स्यात् प्राणेषु च दया प्रभो । स्नेहश्च पाण्डुपुत्रेषु ज्ञात्वा दैवकृतं विधिम् ॥ ४० ॥ एष चार्थो महाबाहो पूर्वमेव मया श्रुतः । कथितो धर्मराजस्य राजसूये क्रतूत्तमे ॥ ४१ ॥ यतिते

जी जानते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! तेरे पुत्र अपनेही अपराधसे मारेगये हैं, इसलिये हे राजेन्द्र ! तू उनका शोक न कर, शोक करनेका कोई कारण नहीं है ॥ ३५ ॥ हे भारत ! पांडवोंने तेरा जरा भी अपराध नहीं किया है, तेरे पुत्रही दुष्ट थे, जिन्होंने इस देशका नाश करवादिया ॥ ३६ ॥ तेरा कल्याण हो, नारदने यह बात पहलेही राजसूय यज्ञके समय बीचसभामें युधिष्ठिरसे कहदी थी कि–॥ ३७ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! सब पाण्डव और कौरव आपसमें युद्ध करके मरजायेंगे, इसलिये तुम्हें जो कुछ करना हो सो करलो।३८।नारदकी बात सुनकर उस समय पांडवोंने शोक किया था, इसप्रकार यह मैंने तुझे देवसभामेंकी सनातन कालकी गुप्त बात सुनादी है ॥३९॥ देवताओंके रचेहुएपरिणामको जानकर, तेरा शोक कैसे शान्त हो, तुझे अपने प्राणोंके ऊपर कैसे दया आवे और यह सब दैवकीही कर्त्तव्यता है ऐसा जानकर तेरा पांडवोंके ऊपर कैसे स्नेह हो, इसके लियेही मैंने यह बात कही है,यह बात मैंने तो पहलेही सुनली थी, इसलिये हे महाबाहु राजा

तपश्चिरात् ॥ ४८ ॥ पुत्रशोकं समुत्पन्नं हुताशं ज्वलितं यथा । प्रज्ञाम्भसा महाभाग निर्वापय सदा सदा ॥ ४९ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा तस्य वचनं व्यासस्यामिततेजसः । मुहूर्त्तं समनुध्याय धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ ५० ॥ महता शोकजालेन प्रणुन्नोस्मि द्विजोत्तम । नात्मानमवबुध्यामि मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ५१ इदन्तु वचनं श्रुत्वा तव दैवनियोगजम् । धारयिष्याम्यहं प्राणान् घटिष्ये न तु शोचितुम् ॥ ५२ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः सत्यवतीसुतः । धृतराष्ट्रस्य राजेन्द्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
धृतराष्ट्रशोकापनोदने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जनमेजय उवाच । गते भगवति व्यासे धृतराष्ट्रो महीपतिः । किमचेष्टत विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ तथैव कौरवो

चिरकालतक तप करनेका फलभी प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥ हे महाभाग ! जलतेहुए अग्निकी समान तुझे जो पुत्रका शोक होरहा है उसको इस श्रेष्ठ ज्ञानरूप जलसे सदा शान्त करता रह ॥४९॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—अपारतेजस्वी व्यासजीके उपदेशको सुन कर धृतराष्ट्र कुछ देरतक विचार करते रहे और फिर कहनेलगे, कि—॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! मैं शोकरूप बड़ेभारी जालमें बँधगया हूँ,वारम्वार मूर्छा आजानेसे मैं अपने आपको भी भूल जाता हूँ ॥ ५१॥ परन्तु दैवकी आज्ञानुसार आपकी इस वातको सुनकर अब मैं अपने प्राणोंको नहीं त्यागूँगा और शोकभी नहीं करूँगा ॥ ५२ ॥ हे राजेन्द्र ! सत्यवतीके पुत्र व्यासजी धृतराष्ट्र की इस वातको सुनकर तहाँही अन्तर्धान होगये ॥ ५३ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८॥ ॥ छ ॥ छ

जनमेजयने बूझा, कि—हे मुनि वैशम्पायनजी ! भगवान् वेद व्यासजीके चलेजाने पर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? वह मुझे

तले ॥ ८ ॥ तं शयानमुपागम्य पृथिव्यां पृथिवीपतिम् । विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे मा शुचो भरतर्षभ । एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः १० अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत । अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ११ ॥ न शोचन्मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः । एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ १२ ॥ अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानस्तु जीवति । कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्त्तते ॥ १३ ॥ कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधानि च । न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ॥ १४ ॥ यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्त्तयति सर्वतः । तथा कालवशं यान्ति

बातको सुनकर राजा धृतराष्ट्र प्राणरहित हुए शवकी समान मूर्छित होकर फिर पृथिवी पर गिरगये ॥ ८ ॥ उनको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर सब धर्मोंको जाननेवाले विदुरजीने यह बात कही, कि—॥ ९ ॥ हे भरतसत्तम राजन् ! उठकर खड़े होजाओ, क्यों पड़े हो ? अब शोक न करो, हे राजन् ! अन्तमें सब प्राणियोंकी यही गति होनी है ॥ १० ॥ हे भारत ! ये सब देही न जन्मसे पहले होते हैं और न मरकर रहते हैं, केवल बीचमेंही कुछ समयको दीखजाते हैं, इनके लिये शोक क्या करना ? ॥ ११ ॥ शोक करनेवाला मरनेवालेके पीछे२ नहीं जाता और न शोक करसे२ मरही जाता है, जब संसारका प्रवाहही ऐसा है तो तुम शोक क्यों करते हो ? ॥ १२ ॥ युद्ध न करनेवाला मरजाता है और युद्ध करनेवाला जीवित रहता है, ऐसी कालकी गति है, परन्तु हे महाराज ! कालके झपाटेमें आजानेपर फिर उससे कोई नहीं बचसकता ॥ १३ ॥ काल तो भाँति२के सब ही प्राणियोंको खेंचकर लेजाता है, हे कुरुसत्तम ! कालका तो न कोई प्यारा है, न कोई द्वेषपात्र है ॥ १४ ॥ हे भरतसत्तम ! जैसे वायु

यस्येह विद्यते ॥ २१ ॥ क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः । आशिषं परमां प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि ॥ २२ ॥ आत्मनात्मानमाश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ । नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कार्यमुत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विदुरवाक्ये नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच। विदुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः। युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ।१। धृतराष्ट्र उवाच । क्षिप्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः । वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥२॥ एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्मवित्तमम् । शोकविप्रहतज्ञानो यानमेवान्वपद्यत ॥३॥ गान्धारी पुत्रशोकार्त्ता भर्त्तृ-

कोई उत्तम मार्ग नहीं है ॥ २१ ॥ महात्मा, वीर और युद्धको शोभा देनेवाले क्षत्रिय राजे अपने कर्मके उत्तम फलको पागये हैं, इसलिये वे सब शोक करनेके योग्य नहीं है ॥ २२ ॥ हे महापुरुष! तुम शोक करना त्याग दो और अपने मनको धीरज दो, तुमने जो आज शोकके कारण हार खाकर जलदान आदि कर्मको छोड़कर रक्खा है, यह उचित नहीं है ॥ २३ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! महात्मा धृतराष्ट्र विदुरजीकी बातको सुन रथको जोतनेकी आज्ञा देकर फिर यह बात कहनेलगे ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—गान्धारीको और भरतवंशकी सब स्त्रियोंको शीघ्र ही बुलालाओ और वहाँ जो और स्त्रियें हों वे भी बहू कुन्तीको साथ लेकर आवें ॥ २ ॥ ऐसा धर्मवेत्ता विदुरसे कहकर शोकसे ज्ञानहीन हुआ धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र रथमें बैठा ॥ ३ ॥ पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हुई गान्धारी पतिकी आज्ञाको सुनकर कुन्ती तथा दूसरी स्त्रियोंके

नारीणां सदा वृन्दान्यनेकशः । शोकार्त्तान्यवद्रन्नाजन् किशोरी-
णामिवाङ्गने ॥ ११ ॥ प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन्
पितॄनपि । दर्शयन्तीव ता ह स्म युगान्ते लोकसंक्षयम् ॥ १२ ॥
विलपन्त्यो रुदन्त्यश्च धावमानास्ततस्ततः । शोकेनोपहतज्ञानाः
कर्त्तव्यं न प्रजज्ञिरे ॥ १३ ॥ व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीना-
मपि योषितः । ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन् १४
परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वाश्वासयंस्तदा । ता शोकविह्वला राज-
न्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ १५ ॥ ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः
सहस्रशः । निर्ययौ नगरादीनस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १६ ॥

हिमालयकी गुफाओंमेंसे निकलती हुई हिरनियोंकी समान मालूम होती थीं ॥ १० ॥ हे राजन् ! नाच सीखनेके आँगनमें जैसे घोड़ोंकी बछड़ियें दौड़ भागकरती हैं तैसे ही कौरववंशकी तरुण स्त्रियें भी शोकसे व्याकुल होकर इधर उधरको दौड़ने लगीं ११ पुत्र, पिता और भाइयोंके शोकमें हाथ पकड़२कर रोनेलगीं और प्रलय-कालमें होने वाले संहारका दृश्य दिखाने लगीं ॥ १२ ॥ कौरव-कुलकी सब स्त्रियें विलाप करती और रोती हुई इधर उधरको दौड रही थीं, उस शोकके कारण पागल होकर अपने कर्त्तव्यको भी भूलरही थीं ॥ १३ ॥ पहले जो स्त्रियें अपनी सखियोंके पास भी एक वस्त्र पहर कर खडी होती हुई लज्जित होती थीं वे स्त्रियें इससमय निर्लज्ज होकर एकवस्त्रसे ही अपने सास ससुर के आगे खड़ी थीं ॥ १४ ॥ पहले जो स्त्रियें एक छोटेसे शोकके लिये भी आपसमें एक दूसरीको धीरज बँधाया करती थीं वे स्त्रियें आज बड़े भारी शोकसे व्याकुल होकर एक दूसरीकी ओर टगर टगर देखती हुई खडी रहगयीं ॥ १५ ॥ रोती हुई हजारों स्त्रियें राजा धृतराष्ट्रको घेरे खडी थीं, उन सबोंको राजा धृतराष्ट्र अपने साथ लेकर रणभूमिकी ओरको चल दिये ॥१६॥ शिल्पी, वैश्य,

सुतस्तव महाराज कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । गतः सानुचरो राज-
श्छक्रलोकं महीपते ॥ ३ ॥ दुर्योधनबलान्मुक्ता वयमेव त्रयो रथाः ।
सर्वमन्यत् परिक्षीणं सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्त्वा
राजानं कृपः शारद्वतस्ततः । गान्धारीं पुत्रशोकार्तामिदं
वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अभीता युध्यमानास्ते घ्नन्तः शत्रु-
गणान् बहून् । वीरकर्माणि कुर्वाणाः पुत्रास्ते निधनं गताः ॥६॥
ध्रुवं संप्राप्य लोकांस्ते निर्मलान् शस्त्रनिर्जितान् । भास्वरं देह-
मास्थाय विहरन्त्यमरा इव ॥ ७॥ न हि कश्चिद्धि शूराणां युध्य-
मानः पराङ्मुखः । शस्त्रेण निधनं प्राप्तो न च कश्चित् कृताञ्जलिः॥८
एवं तां क्षत्रियस्याहुः पुराणाः परमां गतिम् । शस्त्रेण निधनं

लेकर रोते २ उनसे कहने लगे कि—॥ २ ॥ हे महाराज ! तुम्हारा बड़ा पुत्र, दूसरोंसे न होसके ऐसा पराक्रम करके अपने सेवकोंके साथ इन्द्रलोकमें चला गया॥ ३ ॥ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दुर्योधनकी सेनामें केवल हम तीन महारथी ही बच गये हैं आपकी और सब सेना मारीगयी ॥ ४ ॥ शारद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर फिर पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हुई गान्धारीसे यह बात कही, कि—॥ ५ ॥ हे गान्धारी ! तुम्हारे पुत्रोंने रणमें निडर होकर लड़ते हुए बहुतसे शत्रुओंको मारडाला और वे वीरोंके योग्य पराक्रम करते २ ही मरे हैं ॥ ६ ॥ उन्होंने निःसन्देह शस्त्रोंसे निर्मल देवलोकोंको जीत लिया है और अब वे तेजस्वी शरीरको धारण करके देवताओंकी समान देवलोकोंमें विहार कररहे हैं ७ तुम्हारे वीर पुत्रोंमेंसे युद्ध करते हुए कोई भी रणमेंसे भागता हुआ शस्त्रसे नहीं मारागया और किसीने हाथ भी नहीं जोड़े ॥ ८ ॥ प्राचीनकालके ऋषि कहगये हैं, कि—रणमें लड़ते हुए शस्त्रसे मरजाय, यह काम क्षत्रियको परमगति देता है,

स्त्वमनुजानीहि धैर्यमातिष्ठ चोत्तमम् । दिष्टान्तं पश्य चापि त्वं क्षात्रं धर्मञ्च केवलम् ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् । कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८ ॥ अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् । गङ्गामनु महाराज तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १६ ॥ अपक्रम्य तु ते राजन् सर्वे एव महारथाः । आमन्त्र्यान्योन्यमुद्विग्नास्त्रिधा ते प्रययुस्तदा ॥ २० ॥ जगाम हास्तिनपुरं कृपः शारद्वतस्तदा । स्वमेव राष्ट्रं हार्दिक्यो द्रौणिर्व्यासाश्रमं ययौ ॥ २१ ॥ एवं ते प्रययुर्वीरा वीक्षमाणाः परस्परम् । भयार्त्ताः पाण्डुपुत्राणामागस्कृत्वा महात्मनाम् ॥ २२ ॥ समेत्य वीरा राजानं तदा त्वनुदिते रवौ । विप्रजग्मुर्महात्मानो यथे-

रहसकें, हे रानी ! अब हमें जानेकी आज्ञा दो और तुम मनमेंसे शोकको दूर करदो ॥ १६ ॥ और हे राजन् ! आप भी हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और मरणकी ओर तथा क्षत्रियके धर्मपर दृष्टि डालकर उत्तम धीरज धारण करिये ॥ १७ ॥ इसप्रकार राजा धृतराष्ट्रसे कहकर और उनकी प्रदक्षिणा करके हे भरतवंशी राजन् ! कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा इन तीनोंने मनस्वी राजा धृतराष्ट्रकी ओरको देखतेर अपने घोड़ोंको गङ्गानदीकी ओरको दौड़ादिया ॥ १८–१६ ॥ हे राजन् ! वे तीनों महारथी दूर निकलगये तब एक दूसरेसे मिलभेटकर मनमें उदास होतेहुए तीनों जने तीन मार्गोंमेंको फट गये ॥ २० ॥ उस समय शारद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य तो हस्तिनापुरमेंको चलेगये, कृतवर्मा द्वारका की ओरको चलागया और अश्वत्थामा व्यास आश्रममें पहुँच गया ॥२१॥ इस प्रकार महाबली पांडवोंका अपराध करके भयभीत हुऐ वे तीनों वीर एक दूसरेकी ओरको देखते २ भिन्न २ स्थानोंको भागगये ॥ २२ ॥ शत्रुओंका दमन करनेवाले वे वीर पुरुष राजा धृतराष्ट्रसे सूर्योदयसे पहले ही मिल कर अपनी

ताभिः परिवृतो राजा क्रोशन्तीभिः सहस्रशः । ऊर्ध्वबाहुभिरार्त्ताभी रुदतीभिः प्रियाप्रियैः ॥ ६ ॥ क्व नु धर्मज्ञता राज्ञः क्व नु साद्यानृशंसता । यच्चावधीत् पितृन् भ्रातृन् गुरून् पुत्रान् सखीनपि ॥ ७ ॥ घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मञ्चापि पितामहम् । मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम् ॥ ८ ॥ किं नु राज्येन ते कार्यं पितृन् भ्रातृनपश्यतः । अभिमन्युञ्च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥९॥ अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव । ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥ ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः । न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः ११ तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः । अप्रीयमाणः शोकार्त्तः

स्त्रियोंकी चहुंचरफ़ ठौलियें देखीं ॥५॥ पाण्डवोंके प्रिय अभिमन्यु आदि और अप्रिय दुर्योधन आदि पुरुषोंके नाम ले लेकर और ऊंचे हाथ करके आर्त्तस्वरसे रोती हुई हजारों स्त्रियोंने आकर युधिष्ठिरको घेर लिया ॥ ६ ॥ वे रोते२ कहने लगीं, कि-हे राजन् ! जब चचा ताऊ, भाई, गुरु, पुत्र, सकल स्नेही और मित्रोंका तुमने नाश करडाला है तो फिर तुम्हारा धर्मात्मापन, सत्यवादीपन और दयालुपन कहाँ रहा ? ॥ ७ ॥ हे महाबाहु राजन् ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और जयद्रथको मारतेमें तुम्हारे मनमें कैसे विचार उठे थे ? ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! ताऊ, चाचा, भाई, प्रबल वीर अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रों का वियोग पाकर अब यह राज्य तुम्हारे किस कामका है ?॥९ ॥ महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर इसप्रकार टटीरियोंकी समान विलपती हुई सब स्त्रियोंमेंसे निकलकर अपने ताऊ धृतराष्ट्रके पासगये और उनको प्रणाम किया ॥१०॥ फिर शत्रुओंका नाश करनेवाले दूसरे सब पांडवोंनेभी धर्मानुसार ताऊजीको प्रणाम करके अपने२ नाम निवेदन किये ॥११॥ पुत्रोंका नाश होनेसे दुःखीहुए पिता धृतराष्ट्र

प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः ॥ १९ ॥ प्रत्यगृह्णाच्च तं विद्वान् सूतो गावल्गणिस्तदा । मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन् सान्त्वयन्निव ॥ २० ॥ स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामना । हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः शोकसमन्वितः ॥ २१ ॥ तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितम् । वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः । आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया राजन्निपातिता ॥ २३ ॥ त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ । मयापकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥ २४ ॥ न हि ते राजशार्दूल बले तुल्योऽस्ति कश्चन । कः सहेत महाबाहो बाह्वोर्विग्रहणं नरः ॥ २५ ॥ यथान्तकमनु-

और वह मुखमेंसे रुधिर ओकने लगे ॥ १८ ॥ और फिर जिसकी टहनियों पर फूल आगये हों ऐसे लाल रङ्गके पारिजात वृक्षकी समान लोहूलुहान होकर पृथिवीमें ढहगए ॥ १९ ॥ उस समय गवल्गणके पुत्र और धृतराष्ट्रके सारथी विद्वान् सञ्जयने उनको पकड़लिया और हे महाराज ! इसप्रकार धीरजको न छोड़ो, ऐसा कहकर उनको ढाढस दिया ॥ २० ॥ बड़े मनवाले राजा धृतराष्ट्र अपना कोप शान्त होजाने पर क्रोधरहित होकर शोकमें भरे हुए हाय भीम ! हाय भीम ! ऐसा कहकर रोनेलगे ॥२१॥ भीमसेनको मैंने मारडाला है, ऐसा समझकर दुःखी होरहे हैं और अब उनका क्रोध शान्त होगया है यह देखकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने उनसे यह बात कही, कि—॥ २२ ॥ हे धृतराष्ट्र ! तुम शोक न करो. यह तुमने भीमसेनको नहीं मारडाला है, हे राजन् ! यह तो तुमने लोहेकी प्रतिमा कुचलडाली है ॥ २३ ॥ हे भरतसत्तम ! तुम्हें क्रोधके वशमें हुआ जानकर मैंनेही मृत्युकी दाढोंमें पहुँचे हुए भीमसेनको खेंचलिया है ॥ २४ ॥ हे राजसिंह ! बलमें तुम्हारी समता रखनेवाला कोईभी नहीं है, हे महाबाहो ! तुम्हारे

वैशम्पायन उवाच । तत एनमुपातिष्ठन् शौचार्थं परिचारिकाः । कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि विविधानि च । श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः ॥ २ ॥ एवं विद्वान् महाप्राज्ञः समर्थः सन् बलाबले । आत्मापराधात् कस्मात्त्वं कुरुषे कोपमीदृशम् ॥ ३ ॥ उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत । विदुरः सञ्जयश्चैव वाक्यं राजन्न तत् कृथाः ॥ ४ ॥ स वार्यमाणो नास्माकमकार्षीर्वचनं तदा । पाण्डवानधिकं जानन् बले शौर्ये च कौरव ॥ ५ ॥ राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते । देशकालविभागञ्च परं श्रेयः स विन्दति ॥६॥ उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते ।

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! तुरन्तही टहलनियें राजा युधिष्ठिरके रुधिरसे सनेहुए शरीरको साफ करने के लिये उनके पास आगयीं, जब उन्होंने धृतराष्ट्रका शरीर पोंछ दिया, तब श्रीकृष्णने उनसे फिर कहा, कि—हे राजन् ! तुमने वेद और अनेकों शास्त्र पढ़े हैं, पुराण और शुद्ध राजधर्मभी सुने हैं ॥ २ ॥ ऐसे विद्वान्, महाबुद्धिमान् और बलाबलको अच्छे प्रकारसे समझसकनेवाले होकरभी अपनेही अपराधसे होनेवाले इस कुटुम्बनाशके विषयमें तुम ऐसा कोप क्यों करते हो ? ॥३॥ हे भरतवंशी राजन् ! मैंने तो तुमको तबही समझाया था और भीष्म पितामह, गुरुद्रोणाचार्य, विदुर तथा सञ्जयने भी समझाया था, परन्तु तुमने किसीकी भी बात नहीं मानी ॥ ४ ॥ तुम जानते थे, कि—पाण्डव बलमें और वीरतामें दुर्योधनादिसे अधिक हैं और इसलियेही हमने तुम्हें रोका भी था, परन्तु उस समय तुमने हमारी बात नहीं मानी ॥ ५ ॥ जो राजा स्थिर बुद्धिवाला होता है, जो स्वयं अपने दोषोंको देखसकता है और देशकालको भी समझता है वही परम श्रेय पाता है ॥ ६ ॥

हश्च धर्मात्मन् धैर्यान्मां समचालयत् ॥ १३ ॥ दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान् सत्यविक्रमः । त्वद्गतो नागमत् कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम॥१४॥ इदानीन्त्वहमेकाग्रो गतमन्युर्गतज्वरः । मध्यमं पाण्डवं वीरं द्रष्टुमिच्छामि माधव ॥ १५ ॥ हतेषु पार्थिवेन्द्रेषु पुत्रेषु निहतेषु वै । पाण्डुपुत्रेषु वै शर्म प्रीतिश्चाप्यवतिष्ठते ॥१६॥ ततः स भीमञ्च धनञ्जयञ्च माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ । पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रानाश्वास्य कल्याणमुवाच चैतान् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
धृतराष्ट्रकोपविमोचने पाण्डवपरिष्वङ्गो
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः । अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सह केशवाः ॥ १ ॥ ततो ज्ञात्वा

पुरुषोंमें व्याघ्रसमान, सत्यपराक्रमी, बलवान् भीमसेन तुम्हारे रक्षा करनेसे मेरी कौलियामें नहीं आया, यह बहुत ही अच्छा हुआ ॥ १४ ॥ हे माधव ! अब मैं शांत होगया हूँ, मेरा क्रोध और शोक दूर होगया है, तथा मैं पांडुके मध्यम वीर पुत्रको देखना चाहता हूँ ॥ १५ ॥ ठीक समझिये कि—बड़े २ राजे और मेरे पुत्रोंके मरजाने पर मेरा सुख और मेरी प्रीति पांडवोंके ही आधार पर है ॥१६॥ ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने रोते २ सुन्दर शरीर वाले भीम; अर्जुन तथा महापराक्रमी नकुल और सहदेवको अपने हृदयसे लगाकर धीरज दिया और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर उनको आशीर्वाद दिया ॥ १७ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—तदनन्तर सब पाण्डव भाई श्रीकृष्णके साथ राजा धृतराष्ट्रसे आज्ञा लेकर गान्धारीके पास गये ॥ १ ॥ परन्तु सौ पुत्रोंके मरणके शोकसे खिन्न हुई पवित्रचरित्रा गान्धारीने 'युधिष्ठिर अपने शत्रुओंको मारकर आरहा है' यह

त्वं काले काले जयैषिणा । उक्तवत्यसि गान्धारि यतो धर्मस्ततो जयः ॥९॥ न चाप्यतीतां गान्धारि वाचं ते वितथामहम् । स्मरामि तोषमाणायास्तथा प्राणिहिता ह्यसि ॥ १० ॥ विग्रहे तुमुले राज्ञां गत्वा पारमसंशयम् । जितं पाण्डुसुतैर्युद्धे नूनं धर्मस्तुगोऽधिकः ॥ ११ ॥ क्षमाशीला पुरा भूत्वा साद्य न क्षमसे कथम् । अधर्मं जहि धर्मज्ञे यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १२ ॥ स्वञ्च धर्मं परिस्मृत्य वाचञ्चोक्तां मनस्विनि । कोपं संयच्छ गान्धारि मैवं भूः सत्यवादिनि ॥ १३ ॥ गान्धार्युवाच । भगवन्नाभ्यसूयामि नैतानिच्छामि नश्यतः । पुत्रशोकेन तु बलान्मनो विह्वलतीव मे १४

विजय चाहने वाले दुर्योधनने हरएक समय तुमसे प्रार्थना की थी, उस समय क्या तूने उससे नहीं कहा था, कि-"यतो धर्मस्ततो जयः" जहाँ धर्म है वहाँ ही विजय है? ॥९॥ हे गान्धारी! दुर्योधनको सन्तुष्ट करनेके लिये उस समय तूने जो बात कही थी, क्या उसको तू मिथ्या करना चाती है ? मेरी समझमें तो यह बात नहीं आती, क्योंकि-तू सदा सब प्राणियोंका कल्याण चाहने वाली है ॥ १० ॥ पांडवोंने राजाओंके साथ होनेवाले भयानक संग्राममें निःसन्देह पार पाकर सच्ची विजय पाई है, इसलिये निश्चयके साथ कहा जा सकता है, कि-उनके पक्षमें अधिक धर्म रहा है ॥ ११ ॥ तेरा स्वभाव सदासे क्षमाका है, फिर इस समय क्षमा क्यों नहीं करती ? हे धर्मको जाननेवाली गान्धारी ! तू अधर्मको त्यागदे, क्योंकि-जहाँ धर्म है तहाँ विजय है (यह तेरा सदाका कहना है)॥१२॥ हे सत्य बोलनेवाली ! धीरजवाली गान्धारी ! तू अपने धर्मको और अपनी कही हुई बातको विचार कर क्रोधको शान्त कर, क्रोधी न बन ॥ १३ ॥ गान्धारीने कहा, कि-हे भगवन् ! मैं पाण्डवोंको देखकर जलती नहीं हूँ तथा उनका नाश होजाय, यह भी मैं नहीं चाहती, परन्तु

तु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः । त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथञ्चन ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
गान्धारीसान्त्वनायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भीमसेनोथ भीतवत् । गान्धारीं प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं तदा ॥ १ ॥ अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात्तत्र मया कृतः । आत्मानं त्रातुकामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ न हि युद्धेन पुत्रस्ते धर्म्येण स महाबलः । न शक्यः केनचिद्धन्तुमतो विषममाचरम् ॥ ३ ॥ अधर्मेण जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः । निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरम् ॥ ४ ॥ सैन्यस्यैकोवशिष्टोयं गदायुद्धेन वीर्यवान् । मां हत्वा

धर्मज्ञ पुरुष जिसको धर्म कहते हैं उस धर्मको, युद्धमें अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये किसी प्रकार भी क्या शूर पुरुष कभी त्यागदेते हैं ? ॥ २१ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ छ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! गान्धारीकी इस बातको सुनकर भीमसेन भयभीतसा हो विनयके साथ गान्धारीसे यहबात कहनेलगा, कि–॥ १ ॥ धर्म हो चाहे अधर्म हो, परन्तु मैंने डरकर अपनी रक्षा करनेकी इच्छासे ऐसा किया था, मेरा यह अपराध तुम्हे क्षमा करना चाहिये ॥ २ ॥ तेरे महाबली पुत्रको धर्मयुद्धसे कोई भी नहीं मारसकता था, इसलिये ही मैंने विषम युद्ध किया था ॥ ३ ॥ उसने भी पहले राजा युधिष्ठिरको अधर्मसे जीतलिया था और हमें भी सदा (अधर्मसे) दुःखी किया था, इसलिये ही मैंने विषम युद्ध किया था ॥४॥ कौरवोंकी सेनामेंसे केवल एक वीर दुर्योधन ही बचा था, यह गदायुद्धसे मुझे कहीं मार न डाले और कहीं मेरा राज्य न छीनलेय ऐसा विचारकर मैंने यह काम किया

थांश्चापि तत् सर्वं यदिदं भाषसे मयि ॥ १२ ॥ हताश्वे नकुले यत्तद् वृषसेनेन भारत । अपिवः शोणितं संख्ये दुःशासनशरीरजम् ॥ १३ ॥ सद्भिर्विगर्हितं घोरमनार्यजनसेवितम् । क्रूरं कर्माकृथास्तस्मात्तदयुक्तं वृकोदर ॥ १४ ॥ भीम उवाच । अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकम् । यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥१५॥रुधिरं न व्यतिक्रामदन्तोष्ठादम्ब मा शुचः । वैकर्तनस्तु तद्वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १६ ॥ हताश्वं नकुलं दृष्ट्वा वृषसेनेन संयुगे। भ्रातॄणां संप्रहृष्टानां त्रासः संजनितो मया१७ केशपक्षपरामर्शे द्रौपद्या द्यूतकारिते । क्रोधाद्यदब्रुवञ्चाहं तच्च मे

ही था ॥ १२ ॥ तो भी हे भरतवंशी ! जब वृषसेनने नकुलके घोड़ोंको मारडाला था उस समय रणमें तूने दुःशासनके शरीरमेंका खून पीलिया ॥ १३ ॥ यह तूने बड़ा घोर काम किया था, ऐसे कामकी सज्जन निन्दा करते हैं, ऐसा काम आर्य पुरुष कभी नहीं करते, हे वृकोदर ! यह काम तो तूने अनुचित ही किया था ॥ १४ ॥ भीमसेनने कहा, कि–रुधिर तो दूसरेका भी नहीं पीना चाहिये, फिर अपने रुधिरकी तो बात ही क्या ? जैसा अपना आत्मा होता है वैसा ही भाईको समझना चाहिये, भाई भाईमें कुछ भेद नहीं होता है ॥१५॥ हे माताजी ! तुम शोक न करो, वह रुधिर मेरे दाँत और ओठोंसे नीचे नहीं उतरा था, मैंने तो केवल अपने दोनों हाथोंको ही रुधिरमें सानलिया था, इस बातको कर्ण जानता था॥१६॥ युद्धमें वृषसेनने नकुलके घोड़ोंको मारडाला, यह देखकर कौरव भाई हर्षमें भरगये, तब मैंने ऐसा करके केवल सबोंको भयभीत करदिया था अर्थात् मैंने वास्तवमें दुःशासनका रुधिर नहीं पिया था ॥ १७ ॥ जुएमें जिस समय दुःशासन द्रौपदीकी चोटी पकड़कर सभामें घसीट लाया था उस समय मैंने क्रोधमें भरकर कितनी ही बातें कही थीं वे अबतक मेरे

गान्धारी युधिष्ठिरमपृच्छत । क्व स राजेति सक्रोधा पुत्रपौत्रवधा-
र्दिता ॥२४॥ तामभ्यगच्छद्राजेन्द्रो वेपमानः कृताञ्जलिः । युधि-
ष्ठिरस्त्विदं तत्र मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥ पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव
देवि युधिष्ठिरः । शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व माम् २६
न हि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा । तादृशान् सुहृदो हत्वा मूढ-
स्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥ २७ ॥ तमेवं वादिनं भीतं संनिकर्षगतं तदा
नोवाच किञ्चिद् गान्धारी निःश्वासपरमा भृशम् ॥ २८ ॥ तस्या-
वनतदेहस्य पादयोर्निपतिष्यतः । युधिष्ठिरस्य नृपतेर्धर्मज्ञा दीर्घद-
र्शिनी ॥ २९ ॥ अंगुल्यग्राणि ददृशे देवी पट्टान्तरेण सा । ततः
स कुनखी भूतो दर्शनीयनखो नृपः ॥ ३० ॥ तं दृष्ट्वा चार्जुनोऽग-

मरनेसे खिन्न हुई गान्धारी क्रोधके साथ बूझने लगी, कि—तो
राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं ? ॥ २४ ॥ यह सुनते ही राजा युधिष्ठिर
काँपते२ दोनों हाथ जोड़ेहुए उसके पास गये और मीठी वाणीमें
इसप्रकार कहने लगे, कि—॥ २५ ॥ हे देवी ! तेरे पुत्रोंको मारने
वाला और कठोर कर्म करनेवाला मैं युधिष्ठिर खड़ा हूँ, पृथिवीके
राजाओंका नाश करनेमें मैं ही कारण था, इसलिये मैं शापके
योग्य हूँ, तुम मुझे शाप दो ॥ २६ ॥ मैंने स्नेही और संबन्धि-
योंको मारडाला है, मैं मूढ और स्नेहियोंका द्रोही हूँ, अब मुझे
जीवित रहनेकी, राज्यकी और धनकी क्या आवश्यकता है ? २७
इसप्रकार कहते हुए युधिष्ठिर शापके भयसे काँपते२ गान्धारीके
पास खड़े थे, उस समय गांधारी बड़े लंबे२ साँस लेरही थी,
परन्तु कुछ बोली नहीं ॥२८॥ परन्तु थोड़ी ही देर बाद जब राजा
युधिष्ठिरने गांधारीके और समीपमेंको जाकर उसके चरणोंमें
दण्डवत् प्रणाम किया, उस समय दीर्घ दृष्टिवाली धर्मकी ज्ञाता
सती गान्धारीने माथेपर बाँधीहुई पट्टीमेंसे युधिष्ठिरके नखोंकी
ओरको देखा और दृष्टि पड़ते ही वे सुन्दर लाल २ नख काले

किन्तु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम। तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ॥ ३८ ॥ उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्शिताम्। तयैव सहिता चापि पुत्रैरनुगता नृप ॥ ३९ ॥ अभ्यगच्छत गान्धारीमार्त्तामार्त्ततरा स्वयम्। वैशम्पायन उवाच। तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीम् ॥ ४० ॥ मैवं पुत्रीति शोकार्त्ता पश्य मामपि दुःखिताम्। मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायचोदितः ॥४१॥ अवश्यभावी संप्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः। इदं तत् समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत् ॥ ४२ ॥ असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः। तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः। मा शुचो न हि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः ॥ ४३ ॥ यथैव त्वं

वे अबतक तुम्हारे पास क्यों नहीं आये ? ॥ ३७ ॥ जब मेरे पुत्र ही नहीं रहे तो अब मुझे राज्यको लेकर क्या करना है ? यह सुनकर विशालनेत्रा कुन्ती उसको धीरज देने लगी ॥ ३८ ॥ रोती हुई और शोकसे दुर्बल हुई द्रौपदीको उठाकर उसको साथ लियेहुए अति खिन्नहुई कुन्ती शोकाकुल गांधारीके पास गयी और उसके पीछे २ उसके पुत्र भी गये, वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! ! गान्धारीने यशस्विनी कुन्ती और उसकी बहूसे कहा, कि- ॥३९ ४०॥ हे पुत्री ! शोक न कर और मेरे दुःखकी ओरको भी देख, मेरी समझमें तो कालका उलट फेर होनेसे स्वाभाविक ही रोमाञ्च खड़े करनेवाला और अवश्य होनहार यह संहार हुआ है, जब कृष्णका समझाना निष्फल गया उस समय विदुरने जो महान् वचन कहा था वह इस समय सामने आकर खडा होगया है और विशेषकर ऐसा होगया कि-टाले नहीं टला ॥ ४१-४३ तू शोक न कर वे तो संग्राममें मर गये हैं, इस कारण उनके लिये शोक करना उचित नहीं, मैं दुःखी

समन्ततः ॥ ५ ॥ गजाश्वरथयोधानामावृतं रुधिराविलैः । शरीरैरशिरस्कैश्च विदेहैश्च शिरोगणैः ॥ ६ ॥ गजाश्वनरनारीणां निःस्वनैरभिसंवृतम् । शृगालबककाकोलकङ्ककाकनिषेवितम् ॥ ७॥ रक्षसां पुरुषादानां मोदनं कुररकुलम् । अशिवाभिः शिवाभिश्च नादितं गृध्रसेवितम् ॥ ८ ॥ ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः । पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ९ ॥ वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुश्च पार्थिवम् । कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति ॥१०॥ समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः । अपश्यन्त हतांस्तत्र भ्रातॄन् पुत्रान् पितॄन् पतीन् ॥ ११ ॥ क्रव्यादैर्भक्ष्यमाणान् वै गोमायुबलवायसैः । भूतैः पिशाचै रक्षोभिर्विविधैश्च निशाचरैः ॥ १२ ॥ रुद्राक्रीडनिभं दृष्ट्वा तदा विशसनं

मुरदोंसे खचाखच भराहुआ था ॥ ५ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और योधाओंके रुधिरमें भीगे,बिना शिरोंके शरीरोंसे और बिना धड़ोंके शिरोंसे भराहुआ था ॥ ६ ॥ वह रणक्षेत्र हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्रियोंके शब्दसे गूँजरहा था और गीदड़, बगले, काकोल, कङ्क और कौए उसमें घूमरहे थे ॥ ७ ॥ वह रणक्षेत्र पुरुषोंको खानेवाले राक्षसोंको आनन्द देरहा था, टटीरियोंसे भराहुआ था, तहाँ अमङ्गलरूप गीदड़ियें बोलरही थीं और गिद्ध मड़रा रहे थे ॥ ८ ॥ (रणभूमिमेंको जाते समय मार्गमें मिलेहुए पाण्डवोंसे मिले) फिर वेदव्यासजीकी आज्ञासे पांडुके युधिष्ठिर आदि सब पुत्र श्रीकृष्णजीको और जिसके पुत्र मरगये थे ऐसे राजा धृतराष्ट्रको आगे करके युद्धभूमिकी ओरको चलदिये, उनके साथ ही कौरवोंकी रानियें भी गयीं ॥ ९ १० ॥ कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन विधवा स्त्रियोंने देखा तो उनके पुत्र भाई,पिता और पति मरे पड़े थे ॥ ११ ॥ मांसाहारी गीदड़, बलपक्षी, कौए, भूत, पिशाच राक्षस और अनेकों जातिके रातमें विचरनेवाले जीव उन मरों

पृथगेवाभ्यधावन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥ १९ ॥ चिरसुभिर्महाबाहो हतपुत्राभिरावृतम् । क्वचिच्च वीरपत्नीभिर्हतवीराभिरावृतम् ॥ २० ॥ शोभितं पुरुषव्याघ्रैर्भीष्मकर्णाभिमन्युभिः । द्रोणद्रुपदशल्यैश्च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २१ ॥ काञ्चनैः कवचैर्निष्कैर्मणिभिश्च महात्मनाम् । अङ्गदैर्हस्तकेयूरैः स्रग्भिश्च समलंकृतम् ॥ २२ ॥ वीरबाहुविसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि । खड्गैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सशरैश्च शरासनैः ॥२३॥ क्रव्यादसंघैर्मुदितैस्तिष्ठद्भिर्विविधैः क्वचित् । क्वचिदाक्रीडमानैश्च शयानैश्चापरैः क्वचित् ॥ २४ ॥ एतदेवम्विधं वीर संपश्यायोधनं विभो । पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाहं जना-

कितनी ही अपने पतियोंके गुणोंको याद कर२के उनको लिपट रही हैं, कितनी ही पुत्रोंको, भाइयोंको, पिताओंको और पतियोंको लिपटनेके लिये अलग२ दौड़रही हैं॥ १९ ॥ हे महाराज ! कोई२ रणक्षेत्र तो, जिनके पुत्र मरगये हैं ऐसी वीरमाताओंसे भरगया है, कोई रणक्षेत्र, जिनके वीर पति मरगये हैं ऐसी वीर पुरुषोंकी स्त्रियोंसे भराहुआ दीखरहा है ॥ २० ॥ देखिये– कोई रणक्षेत्र पुरुषोंमें व्याघ्रसमान कर्ण, भीष्म, अभिमन्यु, द्रोण, द्रुपद तथा शल्य आदि वीर पुरुषोंसे शोभा पारहा है ॥ २१ ॥ देखिये जैसे अग्नियें बलरही हों तैसे ही कोई स्थान महात्मा पुरुषोंके सोनेके कवच, पदक, मणियें, बाजूबन्द तथा पुष्पोंकी मालाओंसे शोभा पारहा है ॥ २२ ॥ देखिये– किसी रणक्षेत्रमें वीर पुरुषोंके हाथमेंसे छूटकर गिरी हुई शक्तियें परिघ, अनेकोंजातिकी तीक्ष्ण तलवारें तथा बाणों सहित धनुष पड़े हुए हैं तथा मांसाहारियोंकी टोलियें भी खडी हैं, कितने ही स्थानों पर मांसाहारी क्रीडा कररहे हैं, कहीं २ कितने ही मांसाहारी जीव सोरहे हैं ॥ २३ ॥२४॥ हे वीर ! हे विभो ! हे जना-

शिवानामशिवा घोराः शृण्वन्ती विविधा गिरः ॥ ३२ ॥ ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः । चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते ॥ ३३ ॥ तेषामाभरणान्येते गृध्रगोमायुवायसाः । आक्षिपन्ति शिवा घोरा विनदन्त्यः पुनः पुनः ॥३४॥ बाणान् विनिशितान्पीतान्निस्त्रिंशान् विमला गदाः । युद्धाभिमानिनः सर्वे जीवन्त इव बिभ्रति ॥ ३५ ॥ सुरूपवर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः । ऋषभप्रतिरूपाश्च शेरते हरितस्रजः ॥ ३६ ॥ अपरे पुनरालिङ्ग्य गदाः परिघबाहवः । शेरतेऽभिमुखाः शूरा दयिता इव योषितः ३७ बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च । न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥ ३८ ॥ क्रव्यादैः कृष्यमाणानामपरेषां

वे इस समय गीदड़ियोंकी अमङ्गल और भयानक वाणियें सुनरहे हैं ॥ ३२ ॥ जो यश पानेवाले वीर पुरुष पहले शरीर पर अगर और चन्दन चुपड़कर पलँगोंपर पौढ़ा करते थे वे इस समय धूलियोंमें पड़े लोटरहे हैं ॥ ३३ ॥ उनके गहनोंको ये गिद्ध गीदड़ और कौए शरीरों परसे खसोटरहे हैं और भयानक गिदड़ियें बार२ हुआ २ कररही हैं॥३४॥युद्धके अभिमानी वीर पुरुष अभी तक जीतेहुएसे मालूम होरहे हैं और अभीतक तेज करके पानी पिलायेहुए बाण, तलवारें और चमकतीहुई गदाओंको पकड़ेहुए हैं ॥ ३५ ॥ कितनेही रूप और रङ्गमें सुन्दर बैलोंकी समान बलवान् और जिनको मांसभक्षी जीवोंने खसोटडाला है ऐसे वीर पुरुष ताजी मालाओंको पहरेहुए पृथिवीपर पौढ़रहे हैं ॥ ३६ ॥ परिघकी समान भुजाओंवाले कितनेही वीर पुरुष प्यारी स्त्रियोंकी समान गदाओंको छातीसे लगायेहुए वह सामने सोरहे हैं ॥ ३७ ॥ और हे कृष्ण ! कितनेही तो शरीरोंपर कवच पहरे और हाथोंमें हथियार लियेहुएही सोरहे हैं, उनको जीतेहुए समझकर मांसभक्षी प्राणीभी उनका अपमान करनेका साहस

वरवर्णानां गौरीणामेकवाससाम् । दुर्योधनवरस्त्रीणां पश्य वृन्दानि केशव ॥ ४६ ॥ आसामपरिपूर्णार्थं निशम्य परिदेवितम् । इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः ॥४७॥ एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च । विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम् ॥ ४८ ॥ बह्वयो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विलपन्ति च । पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदुपाणयः ॥४९॥ शिरोभिः पतितैर्हस्तैः सर्वांगैर्यूथशः कृतैः । इतरेतरसम्पृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥ ५० ॥ विशिरस्कानथो कायान् दृष्ट्वा ह्येतानन्दितान् । मुह्यन्त्यनुगता नार्यो विदेहानि शिरांसि च ॥ ५१ ॥ शिरः कायेन सन्धाय प्रेक्षमाणा विचेतसः । अपश्यन्त्यो परं तत्र

होरहे हैं ? ॥ ४५ ॥ हे केशव ! श्याम और गौरवर्णकी, एक वस्त्र धारण करनेवाली इन दुर्योधनकी मुख्य रानियोंकी टोलियोंको देखो ॥ ४६ ॥ इन रानियोंके, जिसका पूरा२ अभिप्राय समझमें नहीं आता ऐसे,विलापको सुनकर तथा दूसरी स्त्रियोंका रोनेका दुन्द इकट्ठा होजानेसे ये आपसमें एक दूसरीके रोनेको भी नहीं समझसकती हैं ॥ ४७ ॥ देखो दुःखसे इधर उधरको गिरतीहुई ये वीर नारियें लंबे२ साँस लेकर, चीखें मारकर तथा विलाप करके अपने प्राणोंको त्यागे देती हैं।४८।अपने पतियोंके और संबन्धियोंके शरीरोंको देखकर कितनीही स्त्रियें रोरही हैं, कितनीही विलाप कररही हैं और कितनीही कोमल हाथोंवाली अपने हाथोंसे शिरोंको पीटरही हैं ॥ ४९ ॥ कटकर गिरेहुए शिर, हाथ आदि अङ्गोंको इकट्ठा करनेपर आपसमें सटेहुए इन कटे अङ्गोंसे रणभूमि देखो कैसी मालूम होरही है ? ॥ ५० ॥ देखो२ ये स्त्रियें अपने पतियोंके शिरोंसे शून्य धड़ोंको देखकर तथा धड़ोंसे रहित शिरोंको देखकर मूर्छित होरही हैं ॥ ५१ ॥ कितनीही स्त्रियें धड़ोंके साथ शिरोंको जोड़कर अपने पतियोंके

यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन ॥ ५८ ॥ स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य यूथान्यनेकशः । इतो दुःखतरं किन्तु केशव प्रतिभाति मे ॥ ५९ ॥ यदिमाः कुर्वते सर्वा रूपमुच्चावचं स्त्रियः । नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ ६० ॥ या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातॄंश्च माधव । एवमार्त्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम् । गान्धारी पुत्रशोकार्त्ता ददर्श निहतं सुतम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि युद्धभूमिदर्शने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच । दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्षिता । सहसा न्यपतद्भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ १ ॥ सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां विक्रुश्य च विलप्य च । दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य शयानं रुधिरो-

---

हैं, सुन्दर केशोंवाली बछेड़ियोंकी समान राजा धृतराष्ट्रकी अनेकों पुत्रवधुओंके मण्डलोंको देखो, हे केशव ! ये कौरवकुलकी स्त्रियें उत्तम मध्यम अनेकों प्रकारके रूप बनायेहुए हैं, मुझे इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ? निःसन्देह मैंने पहले जन्मोंमें कोई पाप किया होगा ॥ ५६–६० ॥ हे माधव ! तभी तो आज मुझे मरेहुए पुत्र, पौत्र तथा भाइयोंको देखना पड़रहा है, इस प्रकार पुत्रोंके मरणके कारण शोकसे विलाप करतीहुई दुःखी गान्धारी श्रीकृष्णके साथ बातें करती२ ज्योंही आगेको गयी कि उसने मरेहुए अपने पुत्र दुर्योधनको देखा ॥ ६१ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि हे राजा जनमेजय ! दुर्योधनको मरा पड़ाहुआ देखतेही शोकसे दुबलीहुई गांधारी, वनमें काटेहुए केलेके वृक्षकी समान एकसाथ भूमिमें ढहपड़ी ॥ १ ॥ जब उसको चेत हुआ तो वह फिर रोने और विलाप करनेलगी तथा रणभूमिमें लोहूलुहान पड़ेहुए दुर्योधनको देखकर, उसके शरीरको

बान्धवम् ॥ ६ ॥ अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम् । शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम् ॥ १० ॥ योऽयं मूर्द्धाभिषिक्तानामग्रे याति परन्तपः । सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ११ ॥ ध्रुवं दुर्योधनो वीर गतिं न सुलभां गतः । तथा ह्यभिमुखः शेते शयने वीरसेविते ॥ १२ ॥ यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति वरस्त्रियः । तं वीरशयने सुप्तं रमयन्त्यशिवाः शिवाः ॥ १३ ॥ यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति महीक्षितः । महीतलस्थं निहतं गृध्रास्तं पर्युपासते ॥ १४ ॥ यं पुरा व्यजनै रम्यैरुप-

पहले मैंने ऐसा कहा था, इसलिये मुझे दुर्योधनके मरनेका दुःख नहीं है (क्योंकि—उसने धर्मका पालन नहीं किया) परन्तु जिसके पुत्र मरगये हैं ऐसे बिचारे धृतराष्ट्रके लिये शोक होरहा है ॥ ६ ॥ हे माधव ! तुम देखो तो सही—किसीकी जरासी बात भी न सहनेवाला, एक उत्तम योधा, अस्त्रविद्यामें प्रवीण और युद्धमें बडा मतवाला होजानेवाला मेरा पुत्र दुर्योधन वीरशय्या पर सोरहा है ॥ १० ॥ जरा समयके उलट फेरको देखिये—जो यह शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला दुर्योधन राजतिलक पायेहुए राजाओंके आगे २ चला करता था वह आज धूलियोंमें पड़ा लुढ़क रहा है ! ॥ ११ ॥ वीरोंकी सेवा की हुई वीरशय्या पर वीर दुर्योधन शत्रुके सामने पड़कर सोया है, निःसन्देह इसको साधारण गति नहीं मिली होगी ! किन्तु यह परम गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥ पहले उत्तम स्त्रियें जिसकी सेवामें रहकर जिसको प्रसन्न किया करती थीं, उस वीरशय्या पर सोयेहुए दुर्योधनके साथ आज अमङ्गलरूप गीदडियें खेल कररही हैं ! ॥ १३ ॥ पहले दूसरे राजे जिसकी सेवामें उपस्थित रहकर जिसको प्रसन्न किया करते थे वह राजाओंका राजा आज मरकर रणभूममें पड़ा है और गिद्ध उसके चारोंओर बैठे हैं ॥ १४ ॥ पहले स्त्रियें

रघूनुशासिताम् । पूर्णां हस्तिगवाश्वैश्च वार्ष्णेय न तु तच्चिरम् ॥ २२ ॥ तामेवाद्य महाबाहो पश्याम्यन्यानुशासिताम् । हीनां हस्तिगवाश्वेन किन्नु जीवामि माधव ॥ २३ ॥ इदं कष्टतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम । यदिमाः पर्युपासन्ते हतान् शूरान् रणे स्त्रियः ॥ २४ ॥ प्रकीर्णकेशां सुश्रोणिं दुर्योधनशुभाङ्कगाम् । रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम् ॥ २५ ॥ नूनमेषा पुरा बाला जीवमाने महीभुजे । भुजावाश्रित्य रमते सुभुजस्य मनस्विनी ॥ २६ ॥ कथं नु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते । पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे ॥ २७ ॥ पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता । दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जती २८

सोरहा है ॥ २१ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! एक समय यह पृथिवी हाथी, घोड़े और गौओंसे भरपूर थी और राजा दुर्योधन इसके ऊपर राज्य करता था, परन्तु वही पृथिवी आज हाथी, घोड़े और गौओंमें सूनी होगयी है और इसके ऊपर दूसरे राज्य करते हैं, यह देखकर हे माधव ! मुझे जीनेकी क्या आवश्यकता है ?२२–२३ वह देखिये सब स्त्रियें अपने पतियोंको लिपटकर रोरही हैं, उनको देखकर मुझे अपने पुत्रोंके मरणसे भी अधिक दुःख होता है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! खुले केश और सुन्दर नितम्बवाली तथा दुर्योधनकी गोदमें बैठनेवाली, सुवर्णकी वेदीकी समान तेजस्विनी लक्ष्मणकी माताको तो तुम देखो ॥ २५ ॥ पहले जब दुर्योधन जीवित था तब यह उदारमनवाली बाला सुन्दर भुजाओंवाले राजाकी दोनों भुजाओंका आश्रय लेकर क्रीड़ा किया करती थी ॥ २६ ॥ रणमें पुत्र और पौत्रोंको मरा हुआ देखकर इस मेरे हृदयके सैंकड़ों टुकडे क्यों नहीं होजाते ? ॥ २७ ॥ अब वह रुधिरमें सनेहुए अपने पुत्रको सूँघरही है, अरे ! अब वह अपने पति दुर्योधनको हाथसे पोंछरही है ! ॥ २८ ॥ यह निर्दोष

यदिमा मुक्तमूर्धजाः । हतपुत्रा रणे बाला परिधावन्ति मे स्नुषाः२
मासादतलचारिण्यश्चरणैर्भूषिणान्वितैः । आपन्ना यत्स्पृशन्तीमां
रुधिरार्द्रां वसुन्धराम् ॥ ३ ॥ कृच्छ्रादुत्सारयन्ति स्म गृध्रगोमायु-
वायसान् । दुःखेनार्त्ता विघूर्णन्त्यो मत्ता इव चरन्त्युत ॥ ४ ॥
एषाऽन्या त्वनवद्याङ्गी करसंमितमध्यमा । घोरमायोधनं दृष्ट्वा निप-
तत्यतिदुःखिता ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा मे पार्थिवसुतामेतां लक्ष्मणमात-
रम् । राजपुत्रीं महाबाहो मनो न व्युपशाम्यति ॥६ ॥ भ्रातॄंश्चान्याः
पितॄंश्चान्याः पुत्रांश्च निहतान् भुवि । दृष्ट्वा परितपन्त्येताः प्रगृह्य
सुमहाभुजान् ॥ ७ ॥ मध्यमानाञ्च नारीणां वृद्धानाञ्चापराजित ।
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु ॥ ८ ॥ रथनीडानि

बालोंको खोलेहुए रणभूमिमें चारों ओर दौड़ी२ फिर रही हैं, यह देखकर आज मुझे बड़ाही दुःख होरहा है२हाय! जो कौरव कुलकी स्त्रियें पैरोंमें गहने पहिर कर महलोंकी भूमिमें घूमा करती थीं वे आज दुःखी होकर लोहूसेभीगी हुई रणभूमिमें घूमरही हैं ॥ ३ ॥ और दुःखसे व्याकुल होकर मदमत्त हाथीकी समान झोक खातीहुई रणभूमिमें फिररही हैं तथा बड़े परिश्रमसे गिद्ध गीदड़ और कौओंको हटारही हैं ॥ ४ ॥ देखो तो सही यह पतली कमरवाली दूसरी सुन्दराङ्गी भयानक रणभूमिको देखकर अतिदुःखी होनेके कारण गिरपड़ी है ॥ ५ ॥ हे महाबाहु कृष्ण! उस राजपुत्री और राजरानी लक्ष्मणकी माताको देखकर मेरे मनमें बड़ाही खेद होरहा है ॥ ६ ॥ कितनीही सुन्दरी अपने भाइयोंको, कितनीही अपने पिताओंको और कितनीही अपने पुत्रोंको खुली भूमिमें मरेपड़े देखकर उनकी सुन्दर भुजाओंको अपने हाथोंसे पकड़ेहुए रणभूमिमें पछाड़ें खारही हैं ॥ ७ ॥ हे अजेय कृष्ण! मध्यम अवस्थाकी और वृद्ध अवस्थाकी स्त्रियें भी इस दारुण संहारमें मरेहुए अपने संबन्धियोंको रोरही हैं,

प्रकाशानि पुण्डरीकाक्षगोपिताम् । अनवद्यानि वक्त्राणि तापयत्येष रश्मिवान् ॥ १५ ॥ ईर्षूणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम् । मत्तमातङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः ॥ १६ ॥ शतचन्द्राणि चर्माणि ध्वजांश्चादित्यवर्चसः । रौक्मणी चैव वर्माणि निष्कानपि च काञ्चनान् ॥१७॥ शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले । पश्य दीप्तानि गोविन्द पावकान् सुहुतानिव ॥१८॥ एष दुःशासनः शेते शूरेणामित्रघातिना । पीतशोणितसर्वाङ्गो युधि भीमेन पातितः ॥ १९ ॥ गदया भीमसेनेन पश्य माधव मे सुतम् । द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपदीनोदितेन च ॥ २० ॥ उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता । प्रियं चिकीर्षता भ्रातुः

सूर्यदेवभी स्त्रियोंके खिलेहुए कमलोंकी समान प्रकाशमान और प्रशंसनीयमुखमण्डलोंको धूपसे तपारहे हैं ॥ १५ ॥ हे वासुदेव ! हाय ! हाय ! मदमत्त हाथीकी समान गर्वीले और ईर्षा रखने वाले मेरे पुत्रोंकी स्त्रियोंके ऊपर आज साधारण मनुष्यभी दृष्टि डालरहे हैं ॥ १६ ॥ हे गोविन्द ! मेरे पुत्रोंकी सोनेकी फुल्लियों वाली ढालें, सूर्यकी समान चमकतीहुई ध्वजायें सोनेके कवच, कण्ठे तथा शिरपर पहरनेके टोप, जैसे अच्छी प्रकार घी होमनेसे अग्नि प्रकाशित होता है तैसेही पृथिवीपर पड़ेहुए चमकरहे हैं, इनको देखिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ वीर शत्रु भीमने रणमें मारकर जिसके शरीरमेंसे रुधिर पीलिया है ऐसा दुःशासन रणभूमिमें पड़ा है, इसको भी देखलो ॥ १९ ॥ हे माधव ! देखो भीमसेनने द्रौपदीके कहनेसे तथा जुएके समय सहेहुए दुःखको याद करके गदासे मेरे पुत्रकी कैसी दुर्दशा करी है ! ॥ २० ॥ हे जनार्दन ! इस दुःशासनने बड़े भाईका तथा कर्णका प्रिय करनेकी इच्छासे ही द्यूतसभाके बीचमें जुएमें जीतीहुई पञ्चालराजदुलारी द्रौपदी से कहा था, कि–अरी सुन्दरी ! तू हमारे दासोंकी भार्या है, इस

गजः ॥ २७॥ अभ्यर्थमकरोद्रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः । दुःशासनस्य यत्क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि
गान्धारीवाक्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

गान्धार्युवाच । एष माधव पुत्रो मे विकर्णः प्राज्ञसंमतः । भूमौ विनिहतः शेते भीमेन शतधा कृतः ॥ १ ॥ गजमध्ये हतः शेते विकर्णो मधुसूदन । नीलमेघपरिक्षिप्तः शरदीव निशाकरः २ अस्य चापग्रहेणैव पाणिः कृतकिणो महान् । कथञ्चिच्छिद्यते गृध्रैरत्तुकामैस्तलत्रवान् ॥ ३ ॥ अस्य भार्याऽऽमिषप्रेप्सून् गृध्रकाकांस्तपस्विनी । वारयत्यनिशं बाला न च शक्नोति माधव ४ युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णःपुरुषर्षभ । सुखोषितः सुखार्हश्च शेते

भरकर दुःशासनका रुधिर पिया था, यह बड़ाही भयानक काम किया है ॥ २८ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

गान्धारी (रणभूमिकी ओर जराएक आगेको बढ़कर फिर) कहनेलगी, कि-जिसको बुद्धिमान् अच्छा मानते थे ऐसा यह मेरा पुत्र विकर्ण भीमके हाथसे मरकर वह देखो रणमें सोरहा है, भीमसेनने इसके सैंकड़ों टुकड़े करडाले हैं ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! विकर्ण मराहुआ हाथियोंके बीचमें सोरहा है, यह ऐसा मालूम होता है मानो शरद ऋतुमें श्याम घनघटाओंके बीचमें चन्द्रमा आपड़ा है ॥ २ ॥ धनुषको पकड़नेसे इसके हाथमें ठेंट पड़गयी है और ऊपरसे चमड़ेके मोजे पहररहा है, इसलिये खानेकी इच्छावाले गिद्ध इसके हाथको चोंच मारकर बड़ी कठिनतासे काटरहे हैं ॥ ३ ॥ हे माधव ! इसकी छोटी अवस्थाकी तपस्विनी स्त्री, मांस खानाःचाहनेवाले गिद्ध और कौओंको वार २ उड़ाती है, परन्तु उड़ा नहीं पाती ॥ ४ ॥ हे पुरुषोत्तम माधव ! देवताओंकी समान वीर और जवानीमें मराहुआ विकर्ण सब प्रकारके

पासते ॥ १२ ॥ स्त्रीणां रुदितनिर्घोषः श्वापदानाञ्च गर्जितम् । चित्ररूपमिदं कृष्ण विचित्रं प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥ युवा वृन्दारको नित्यं प्रवरस्त्रीनिषेवितः । विविंशतिरसौ शेते ध्वस्तः पांसुषु माधव ॥ १४ ॥ शरसंकृत्तवर्माणं वीरं विशसने हतम् । परिवार्यासते गृध्राः पश्य कृष्ण विविंशतिम् ॥ १५ ॥ प्रविश्य समरे शूरः पाण्डवानामनीकिनीम् । स वीरशयने शेते परः सत्पुरुषोचिते ॥ १६ ॥ स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम् । अतीव शुभ्रं वदनं पश्य कृष्ण विविंशतेः ॥ १७ ॥ एनं हि पर्युपासन्ते बहुधा वरयोषितः । क्रीडन्तमिव गन्धर्वं देवकन्याः सहस्रशः १८

से शोभायमान ये शोकसे व्याकुल हुई वीरोंकी स्त्रियें रोती हुई मांसभक्षी प्राणियोंके साथ ही रणभूमिमें अपने पतियोंके पास बैठी हैं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! इन स्त्रियोंके रोनेका शब्द और हिंसक प्राणियोंकी गर्जनायें ये सब इकट्ठी होकर मुझे विचित्रसी मालूम होरही हैं ॥ १३ ॥ हे माधव ! देवताओंकी समान सुन्दर तरुण अवस्थावाली और उत्तम स्त्रियें जिसकी सदा सेवा करती थीं ऐसा यह विविंशति भी मरकर धूलिमें लेटरहा है ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! देखो, वीर विविंशतिका कवच बाणोंसे कटगया है, यह संग्राममें लडते २ घायल होगया है, परन्तु हाय ! इस समय गीदड इसको चारों ओरसे घेरकर इसको खानेकी टोहमें खड़े हैं ॥ १५ ॥ यह वीर पांडवोंकी सेनामें अपने पराक्रमसे घुसगया था, परन्तु इस समय युद्धमें मरकर महात्मा पुरुषोंके योग्य वीरशय्या पर सोरहा है ॥१६॥ हे कृष्ण ! देखो, विविंशतिका मुख मन्द २ मुसकराता हुआ, सुन्दर नासिका और भ्रकुटिवाला और चन्द्रमाकी समान बडा ही गौरवर्ण है ॥ १७ ॥ जैसे क्रीडा करते हुए गन्धर्वकी हजारों देवकन्याएं सेवा करती हैं ऐसे ही पहले बहुतसी श्रेष्ठ राजकन्याएँ प्रायः इसकी सेवा किया करती थीं १८

नैवोपशाम्यति ॥ ३ ॥ एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः । आर्त्ता बालं पतिं वीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता ॥ ४ ॥ तमेषा हि समागम्य भार्या भर्त्तारमन्तिके । विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति ॥ ५ ॥ तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य मनस्विनी । विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम् ॥ ६ ॥ काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भाविनी । लज्जमाना पुरा चैनं माध्वीकमदमूर्छिता ७ तस्य क्षतजसन्दिग्धं जातरूपपरिष्कृतम् । विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते ॥ ८ ॥ अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते । अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः ॥ ९ ॥ बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ । रूपेण च तथाऽत्यर्थं शेते

कान्ति अभी तक मलिन नहीं हुई है ॥ ३ ॥ वह देखो, विराटकी पुत्री गांडीव धनुषधारी अर्जुनकी पुत्रवधू, पवित्र आचरणवाली सुन्दरी उत्तराकुमारी अपने वीर और बालक पतिको देखकर उसका शोक कररही है ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! यह बाला विराटराजकुमारी अपने पतिके पास जाकर हाथसे उसके शरीर पर लगीहुई धूलिको साफ कररही है ॥ ५ ॥सुन्दराङ्गी उत्तराकुमारी सुभद्राकुमार अभिमन्युके सुन्दर कण्ठवाले और खिलेहुए कमलके आकारके मुखमण्डलकी सुगन्धि लेतीहुई उसको आलिङ्गन कर रही हैं, हे कृष्ण ! पहले यह बाला मद्यके मदसे मूर्छित होजाती थी तो अपने पतिके पास जातीहुई लज्जित होती थी, परन्तु वह आज रुधिरसे भीगेहुए सोनेके बने कवचको पतिके शरीर परसे उतारकर उसके रुधिरमें भीगेहुए सब शरीरको देखरही है ६-८ हे कृष्ण ! यह बाला अभिमन्युके सामने जाकर तुमसे कहती है, कि-हे कमलनयन कृष्ण ! तुम्हारी ही समान नेत्रोंवाले इस कुमारको शत्रुओंने मार गिराया है, ॥ ९ ॥ हे निष्पाप कृष्ण ! बलमें, वीरतामें, तेजमें और रूपमें यह तो तुम्हारी समान ही था,

नुघस्य पाणिना ॥१६॥ उत्सङ्गे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति। स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ॥ १७ ॥ कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः। धिगस्तु क्रूरकर्तॄस्तान् कृपकर्ण-जयद्रथान् ॥ १८ ॥ द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरहं विधवा कृता। रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत्तदा मनः ॥ १९ ॥ बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम्। कथं नु पाण्डवानाञ्च पञ्चाला-नाञ्च पश्यताम् ॥ २० ॥ त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान् सन्न-नाथवत्। दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वां पिता तव ॥ २१ ॥ वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः। न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणाञ्च पराभवः ॥ २२ ॥ प्रीतिं धास्यति पार्थानां त्वामृते

चले ? (गान्धारी श्रीकृष्णसे कहती है, कि-) हे कृष्ण ! देखो, अब उत्तरा कुमारी अभिमन्युके रुधिरमें सनेहुए बालोंको हाथसे सम्हाल रही है ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके शिरको अपनी गोदीमें लेती है और मानो वह जीवित है, इसप्रकार उससे प्रश्न करती है, कि-तुम कृष्णके भानजे हो और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के पुत्र हो, तो भी इन महारथियोंने तुम्हे रणमें कैसे मारडाला ? उन दारुण कर्म करनेवाले कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, द्रोण और अश्वत्थामाको धिक्कार है, कि-जिन्होंने मुझे विधवा बनाया है, मुझे दुःख देनेके लिये ही, तुम बाल अवस्थाके और अकेले थे तो भी तुमको घेरकर उन महारथियोंने मारडाला, उस समय उन सब महारथियोंके मनके ऊपर कैसा प्रभाव पडा होगा ? हे नाथ ! तुम्हारे ऊपर बड़े२ मनुष्य गाजरहे थे तो भी पाण्डवोंके और पंचाल राजाओंके देखतेहुए तुम्हें एक अनाथकी समान कैसे मारडाला ? युद्धमें बहुतसे योधाओंने मिलकर तुम्हें मारडाला यह देखकर वीर और मनुष्योंमें सिंहसमान तुम्हारे पिता अर्जुन अभीतक कैसे जीवित हैं ? हे कमलनयन ! पांडवोंको बड़ेभारी

निधनं गतः । इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम् ॥ २९ ॥
उत्तरां मोघसङ्कल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः। उत्तरामपकृष्यैनामार्त्ता-
मार्त्ततराः स्वयम् ॥ ३० ॥ विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विल-
पन्ति च । द्रोणास्त्रशरसंकृत्तं शयानं रुधिरोक्षितम् ॥ ३१ ॥
विराटं वितुदन्त्येते गृध्रगोमायुवायसाः । वितुद्यमानं विहगैर्वि-
राटमसितेक्षणाः ॥ ३२ ॥ न शक्नुवन्ति विहगान् निवार-
यितुमातुराः । आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम् ॥ ३३ ॥
श्रमेण च विवर्णानां वक्त्राणां विप्लुतं वपुः । उत्तरञ्चाभिमन्युञ्च
काम्बोजञ्च सुदक्षिणम् ॥ ३४ ॥ शिशूनेतान् हतान् पश्य लक्ष्म-
णञ्च सुदर्शनम् । आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव ३५
इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि विंशतितमोऽध्यायः

विलाप कररही है ॥ १७–२९ ॥ और मत्स्यराजकी रानियें तथा कुलकी दूसरी स्त्रियें, जिसका सङ्कल्प मिथ्या होगया है ऐसी उत्तरा कुमारीको वहाँसे दूसरी ओर लेजारही हैं, जो स्त्रियें दुःखमें भरीहुई उत्तराको खेंचरही हैं वे भी राजा विराटको रणमें मराहुआ देखकर बड़ी व्याकुल होरही हैं और विलाप कररही हैं, हाय ! हाय ! द्रोणाचार्यके शस्त्र और बाणोंसे कटेहुए और लोहूलुहान शरीरसे रणभूमिमें सोतेहुए राजा विराटके शरीरके कवचके भरतेहुए गिद्ध, गीदड़ और काक बड़ी निर्दयताके साथ काट२कर खारहे हैं, परन्तु दुःखसे आतुर हुई विराट राजा की श्यामनेत्रोंवाली रानियें दुःखके कारण, इन आनन्द करते हुए मांसाहारी प्राणियोंको रोक नहीं सकती हैं, ये सब स्त्रियें धूपमें तप गयी हैं, परिश्रम और आयासके कारण इनके मुख उतरगये हैं और इनके कोमल शरीर झुलससे गये हैं, यह रणभूमि के अगले भागमें उत्तर,अभिमन्यु,काम्बोज, सुदक्षिण और सुन्दर दर्शनीय लक्ष्मण आदि कितने ही कुमार मृत्युशय्यापर सोरहे हैं, हे माधव ! इनको भी देखलो॥३०–३५॥बीसवाँ अध्याय समाप्त

अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव । युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् हिमवानिव निश्चलः ॥ ८ ॥ स भूत्वा शरणं वीरो धार्त्तराष्ट्रस्य माधव । भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः ॥९॥ पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम् । लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि ॥ १० ॥ आचार्यशापोनुगतो ध्रुवं त्वां यदग्रसच्चक्रमिदं धरित्री । ततः शरेणापहृतं शिरस्ते धनञ्जयेनाहवशोभिना युधि ॥ ११ ॥ हा हा धिगेषा पतिता विसंज्ञा समीक्ष्य जाम्बूनद-बद्धकक्षम् । कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं सुषेणमाता रुदती भृशार्त्ता ॥ अल्पावशेषोऽपि कृतो महात्मा शरीरभक्षैः परिभक्षयद्भिः । द्रष्टुं न

जैसे शत्रु युद्धमें इन्द्रको नहीं हरासकते थे ऐसे ही कर्णको भी शत्रु युद्धमें नहीं हरासकते थे, कर्ण प्रलयके अग्निकी समान दपकता था और हिमालयकी समान निश्चल था ॥ ८ ॥ हे माधव!वह वीर कर्ण दुर्योधनका रक्षक था,परन्तु हाय ! आज पवनसे टूटेहुए वृक्षकी समान मरकर पृथिवी पर पड़ा है ॥ ९ ॥ उस कर्णकी स्त्री और देखो वृषसेनकी माता भूमि पर पड़ी हुई ऐसा विलाप कर रही है,कि-जिसको देखकर दया उपजती है ॥ १० ॥ हे कर्ण ! भूमिदेवी तेरे रथके पहियेको निगलगयी, इससे सिद्ध होता है, कि-तेरे आचार्यका शाप तुझे अवश्य ही मिला है और इस कारणसे ही युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनने रणमें बाण मारकर तेरे मस्तकको काटडाला है ॥११॥ हाय ! हाय!धिक्कार है, धिक्कार है,(वीरता और चतुराईको) सुषेणकी माता, कमरमें सोनेकी तागड़ी पहरनेवाले, महाबली, महाबाहु कर्ण को रणमें पड़ाहुआ देखकर मूर्छित होगयी है और पृथिवी पर पड़ीहुई बड़ी बावलीसी बनकर, कुहराम मचारही है ॥ १२ ॥ मांसाहारी प्राणियोंने इस महात्माके शरीरको खाकर थोड़ासा ही बाकी छोड़ा है, कृष्णपक्षकी चौदसके क्षीण हुए चन्द्रमाकी

पेयं महेष्वासं हतं भल्लेन वाल्हिकम् । प्रसुप्तमिव शार्दूलं पश्य कृष्ण मनस्विनम् ॥५॥अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते । सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः ॥ ६ ॥ पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षता । पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः ॥ ७ ॥ एकादशचमूर्भित्त्वा रक्ष्यमाणं महात्मना । सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८ ॥ सिन्धुसौवीरभर्त्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम् । भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दन जयद्रथम् ६ संरक्ष्यमाणं भार्याभिरनुरक्ताभिरच्युत । भीषयन्त्यो विकर्षन्ति गहनं निम्नमन्तिकात् ॥ १० ॥ तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं

रोतीर उसकी (किसप्रकार) सेवा कररही हैं, देखिये ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! देखो-प्रतीपका पुत्र राजा वाह्लीक साहसी और बड़ा धनुषधारी था, वह भालेकी चोटसे मरकर रणभूमिमें सिंहकी समान सोरहा है ॥ ५ ॥ पूर्णिमाके दिन उदय हुए चन्द्रमाकी जैसी शोभा होती है, तैसी ही मरजाने पर भी इस वाल्हीक राजाके मुखकी कान्ति शोभा देरही है ॥ ६ ॥ इन्द्रपुत्र अर्जुनने अभिमन्युके शोकसे सन्ताप पाकर अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये युद्धमें वृद्धक्षत्रके पुत्र इस जयद्रथको मारडाला था ॥ ७ ॥ देखो महात्मा द्रोणने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका नाश करके जिसकी रक्षाकी थी उस ही जयद्रथ राजाको अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा सच्ची करनेके लिये मारडाला है ॥ ८ ॥ और हे जनार्दन ! सिन्धु तथा सौवीर देशके स्वामी घमण्डी और साहसी जयद्रथको इस समय गीदड़ और गिद्ध खारहे हैं ॥ ६ ॥ हे अच्युत ! प्रेम करनेवाली स्त्रियें इस राजाकी पूर्ण रीतिसे रक्षा कररही हैं तो भी शब्द करती हुई गीदड़ियें उसको पासके भागमेंसे नीचेके गहन प्रदेशमेंको घसीट लेजानेका उद्योग करही हैं ॥ १० ॥ कांबोजकी और यवनकी स्त्रियें, इस सिंधु सौवीर देशके राजा

तं मत्तमिव मातङ्गं वीरं परमदुर्जयम् । परिवार्य रुदन्त्येताः स्त्रियश्चन्द्रोपमाननाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

गान्धार्युवाच । एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः । धर्मज्ञेन हतस्तात धर्मराजेन संयुगे ॥ १ ॥ यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ । स एष निहतः शेते मद्रराजो महाबलः ॥ २ ॥ येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि । जयार्थं पाण्डुपुत्राणां यदा तेजोवधः कृतः ॥ ३ ॥ अहो धिक् पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम् । मुखं पद्मपलाशाक्षं काकैरादष्टमव्रणम् ॥ ४ ॥ अस्य चामी-

---

था और जिसने बहुतसी सेनाका नाश करडाला था वह जयद्रथ अन्तमें आप भी मारागया ॥ १७ ॥ और चन्द्रमाके समान मुख वाली उसकी ये स्त्रियें मतवाले हाथीकी समान महादुर्जय वीर जयद्रथको घेरकर उसके पास बैठी२ रोरही हैं ॥ १८ ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ छ ॥ छ ॥

गान्धारी (जरा और आगे बढ़कर) कहने लगी, कि-हे कृष्ण ! यह नकुलका मामा शल्य मरकर रणमें सोरहा है, हे तात! इसको धर्मको जानने वाले धर्मराजने रणमें मारा है ॥ १ ॥ हे महापुरुष ! यह सदा ही तुम्हारे साथ सर्वत्र स्पर्धा किया करता था, ऐसा महाबली मद्रदेशका राजा आज रणमें मरकर सोरहा है ॥ २ ॥ हे तात ! इसने युद्धमें कर्णका सारथी बनना स्वीकार किया था, फिर पाण्डवोंको विजय दिलानेके लिये कर्णका तेजोवध (पराक्रमका नाश) किया था, हाय ! हाय ! उस ही राजा शल्यके पूर्ण चन्द्रमाकी समान सुन्दर कमलकी पंखड़ियोंकी समान नेत्रोंवाले तथा व्रणहीन मुखको कौए चोंच मारकर विदीर्ण कररहे हैं ॥ ३-४ ॥ सुवर्णकी समान कान्तिवाले मद्रराजके मुख

एतेन किल पार्थस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् । रोमहर्षणमत्युग्रं शक्रस्य त्वहिना यथा ॥ १२ ॥ योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनञ्जयम् । संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः ॥ १३ ॥ यस्य नास्ति समो लोके शौर्ये वीर्ये च कश्चन । स एष निहतः शेते भीष्मो भीष्मकृदाहवे ॥ १४ ॥ पश्य शान्तनवं कृष्ण शयानं सूर्यवर्चसम् । युगान्त इव कालेन पतितं सूर्यमम्बरात्॥ १५ ॥एष तप्त्वा रणे शत्रून् शस्त्रतापेन वीर्यवान् । नरसूर्योऽस्तमभ्येति सूर्योऽस्तमिव केशव १६ शरतल्पगतं भीष्ममूर्ध्वरेतसमच्युतम् । शयानं वीरशयने पश्य शूरनिषेविते ॥ १७ ॥ कर्णिनालीकनाराचैरास्तीर्य शयनोत्तमम् ।

तैसे ही अर्जुनका इस राजाके साथ महायुद्ध हुआ था, जो कि-बडा दारुण और रोमाञ्च खड़े करने वाला था ॥ १२ ॥ इस महाबाहु राजाने कुन्तीनन्दन अर्जुनके सामने युद्ध करके उसको भयमें डालदिया था, परन्तु यह उसके ही हाथसे मारागया॥१३॥ इस लोकमें जिनकी समान वीर और पराक्रमी कोई भी नहीं है ऐसे यह भीष्मपितामह रणमें महाभयानक कर्म करके वीरशय्या पर पौढ़े हुए हैं ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! जैसे प्रलयके समय सूर्य कालवश आकाशमेंसे टूटपडता है तैसे कालवश रणभूमिमें पड़े हुए, सूर्यकी समान कान्तिवाले शन्तनुके पुत्र इन भीष्मजी को देखिये ॥१५॥ हे केशव ! प्रतापी भीष्मने रणमें शस्त्रके प्रतापसे शत्रुओंको सन्तप्त करडाला है, यह नरसूर्य आज अस्ताचलके सूर्यकी समान अस्त होने को है ॥ १६ ॥ अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले, अपनी प्रतिज्ञासे न डिगनेवाले भीष्मजी, वीर पुरुषोंके योग्य बाणोंकी बनायी हुई वीरशय्या पर दृढताके साथ सोरहे हैं, इनको भी देखलीजिये॥ १७ ॥ कर्णि, नालीक और नाराच जातिके बाणोंकी उत्तम शय्या बनाकर भगवान् भीष्मजी, जैसे स्वामिकार्त्तिकेय दर्भके कुण्ड पर सोये थे तैसे ही बाणशय्या

कुरवः कं नु मन्त्रयन्ति माधव । गते देवव्रते स्वर्गं देवकल्पे नरर्षभे ॥ २५ ॥ अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा । तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुमुत्तमम् ॥ २६ ॥ अस्त्रं चतुर्विधं वेद यथैव त्रिदशेश्वरः । भार्गवो वा महावीरस्तथा द्रोणोऽपि माधव ॥ २७ ॥ यस्य प्रसादाद्बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम् । चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन् ॥ २८ ॥ यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान् । सोऽयं शस्त्रभृतां श्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः परिक्षतः ॥२९॥ यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाऽभवत् । स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ३० ॥ धनुर्मुष्टिरशीर्णश्च हस्तावापश्च माधव । द्रोणस्य निहतस्याजौ दृश्यते जीवतो

पागये ॥ २४ ॥ परन्तु हे माधव ! देवताकी समान महात्मा देवरात जब स्वर्गको पधार जायँगे तो कौरव धर्मविषयके सन्देहको फिर किससे बूझेंगे ? ॥२५॥ वह देखो, अर्जुन और सात्यकीके आचार्य तथा कौरवोंके महागुरु द्रोणाचार्य रणभूमिमें पड़े हैं ॥२६॥ हे माधव ! चार प्रकारकी अस्त्रविद्याको जैसे स्वर्गपति इन्द्र जानता है, तैसे ही महावीर्यवान् परशुराम और द्रोणाचार्य भी जानते थे ॥२७॥ और इन द्रोणाचार्यकी ही कृपासे पाण्डुनन्दन अर्जुन ने रणमें दुष्कर पराक्रम करके विजय पायी है, परन्तु ऐसे द्रोणाचार्य भी मरकर रणमें सोरहे हैं, ओः ! अन्तकालमें (इनके प्रतापी) अस्त्र भी इनकी रक्षा न करसके ॥ २८ ॥ कौरवोंने जिनको आगे करके पाण्डवोंको युद्धके लिये ललकारा था वह शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोण शस्त्रोंसे ही घायल होकर रणमें पड़े हैं ॥ २९ ॥ पहले जब द्रोणाचार्य सेनाको भस्म करे डालते थे उस समय उनकी गति अग्निकी समान थी, परन्तु ऐसे द्रोणाचार्य भी शान्त हुई लपटोंवाले अग्निकी समान इस समय शान्तपनेसे रणभूमिमें पड़े हैं ॥ ३० ॥ हे माधव ! द्रोणाचार्य

त्रीणि सामानि सामगाः ॥ ३८ ॥ कुर्वन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः । धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव ॥ ३९ ॥ शरैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यते भूरितेजसम् । इति द्रोणं समाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च ॥ ४० ॥ सामभिस्त्रिभिरन्तस्थैरनुशंसन्ति चापरे । अग्नावग्निं समाधाय द्रोणं हुत्वा हुताशने ॥ ४१ ॥ गच्छन्त्यभिमुखा गङ्गां द्रोणशिष्या द्विजातयः । अपसव्यां चितां कृत्वा पुरस्कृत्य कृपीञ्च ते ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवचने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

यशस्विनी कृपी घबड़ाकर अपने भर्त्ताकी मृतकक्रियाके लिये उद्योग कररही है ॥ ३७ ॥ वह देखिये सामवेदका गान करने वाले उनके शिष्योंने चितामें अग्निको पधरा दिया है, वह देखो वह विधिविधानसे चारों ओर जलारहे हैं, उसके ऊपर द्रोणाचार्यके शरीरको स्थापित करनेका उद्योग कररहे हैं सामवेदका गान करनेवाले तीनों सामोंको गारहे हैं ॥ ३८ ॥ यह जटाधारी ब्रह्मचारियोंने, धनुष, शक्ति, रथोंके ढाँचे तथा दूसरे अनेकों प्रकारके बाणोंकी चिता तयार की है, और महातेजस्वी द्रोणाचार्य का अग्निसंस्कार करनेके लिये उनको चितापर चढ़ादिया है तथा वे सामका गान करते२ रोरहे हैं ॥ ३९-४० ॥ जैसे अग्निमें अग्निका होम कियाजाता है तैसे ही द्रोणाचार्यके, द्विजजातिवाले शिष्य अग्निमें द्रोणाचार्यकी आहुति देकर अन्तकालके समयके तीन सामोंका गान कररहे हैं ॥ ४१ ॥ और वे द्रोणाचार्यके शिष्य उनकी स्त्रीको आगे करके चिताकी बाईं ओरसे प्रदक्षिणा करते हुए गङ्गा नदीकी ओरको जारहे हैं ॥ ४२ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ ॥ छ

हतेश्वराः ॥ ७ ॥ श्वापदैर्भक्ष्यमाणं त्वमहो दिष्ट्या न पश्यसि । छिन्नबाहुं नरव्याघ्रमर्जुनेन निपातितम् ॥ ८ ॥ शलं विनिहतं संख्ये भूरिश्रवसमेव च । स्नुषाश्च विविधाः सर्वा दिष्ट्या नाद्येह पश्यसि ॥६॥ दिष्ट्या तत्काञ्चनं छत्रं यूपकेतोर्महात्मनः । विनिकीर्णं रथोपस्थे सौमदत्तेर्न पश्यसि ॥ १० ॥ अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम् । परिवार्यानुशोचन्ति भर्त्तारमसितेक्षणाः ॥ ११ ॥ एता विलप्य करुणं भर्तृशोकेन कर्षिताः । पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव ॥ १२ ॥ बीभत्सुरतिबीभत्सं कर्मेदमकरोत्कथम् । प्रमत्तस्य यदच्छैत्सीद्बाहुं शूरस्य यज्वनः ॥१३॥ ततः पापतरं कर्म कृतवानपि सात्यकिः । यस्मा-

गये हैं ऐसी तुम्हारी पुत्रवधुएँ, एक वस्त्र पहरे और काले रङ्गके केशोंको खोलेहुए इधर उधरको दौडती फिररही हैं ॥ ७ ॥ अच्छा है, कि—अर्जुनने जिसकी भुजा काटकर रणमें गिरादिया था ऐसे मनुष्योंमें व्याघ्र समान तुम्हारे पुत्र भूरिश्रवाको तथा शलको रणमें मांसाहारी प्राणी खारहे हैं, यह तुम देखते नहीं तथा उनकी बहुओं (जो कुहराम मचारहीं हैं) उनको भी तुम देखते नहीं हो ॥ ८ ॥ ६ ॥ तुम भाग्यशाली हो, कि—जिसकी पताकामें यूपका चिन्ह है ऐसे महात्मा भूरिश्रवाका सोनेका छत्र रथके पास पड़ाहुआ है, उसको भी तुम देखते नहीं हो ॥ १० ॥ (फिर गान्धारी कहनेलगी, कि-) वह श्यामनेत्रोंवाली भूरिश्रवाकी भार्याएँ, सात्यकीके मारेहुए अपने पतिको घेरकर शोक कररहीं हैं ॥ ११ ॥ ऐसा विलाप कररहीं हैं, कि—जिसको देखकर दया आती है, स्वामीके शोकसे दुर्बल होगयी हैं और हे केशव ! भूमिपर ऐसी पछाड़ें खारही हैं कि—देखकर दया आती है ॥ १२ ॥ अति निर्लज्ज कर्म करनेवाले अर्जुनने ऐसा महाभयानक कर्म कैसे किया होगा ? कि—अनेकों यज्ञ करनेवाले वीर

युध्यतः समरेऽन्येन प्रमत्तस्य निपातितः ॥ २० ॥ किं नु वक्ष्यसि संसत्सु कथासु च जनार्दन। अर्जुनस्य महत्कर्म स्वयं वा स किरीटभृत् ॥ २१ ॥ इत्येवं गर्हयित्वैषा तूष्णीमास्ते वराङ्गना। तामेतामनुशोचन्ति सपत्न्यः स्वामिव स्नुषाम् ॥ २२ ॥ गान्धारराजः शकुनिर्बलवान् सत्यविक्रमः । निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः ॥ २३ ॥ यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते। स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते॥ २४ ॥ यः स्वरूपाणि कुरुते शतशोऽथ सहस्रशः । तस्य मायाविनो माया दग्धाः पांडवतेजसा ॥ २५ ॥ मायया निकृतप्रज्ञो जितवान् यो युधिष्ठिरम् । सभायां विपुलं राज्यं स पुनर्जीवितं जितः ॥ २६ ॥ शकुन्ताः

था और असावधान थे, उस समय उत्तम कर्म करनेवाले अर्जुनने कृष्णके सामने इसको काटडाला ॥ २० ॥ हे जनार्दन! मनुष्योंकी सभाओंमें बातें करते समय अर्जुन स्वयं अपने कौनसे महान् कर्मका बखान करके सुनावेगा ? ॥ २१ ॥ इसप्रकार अर्जुनकी निन्दा करके भूरिश्रवाकी स्त्री चुप होगयी है, और उसकी दूसरी सौतें, जैसे अपनी पुत्रवधुओंके पीछे शोक किया करती हैं तैसे ही भूरिश्रवाकी रानीके पीछे शोक कररही हैं ॥ २२ ॥ सहदेव भानजेने अपने मामा गान्धार देशके राजा बलवान् और सत्यपराक्रमी शकुनिको मारडाला ॥ २३ ॥ पहले सोनेके दण्डोंवाले दो चँवरोंसे जिसकी पवन डुलायी जाती थी वह शकुनि इस समय रणभूमिमें सोरहा है और पक्षी अपने पंखोंसे उसकी हवा कररहे हैं ॥ २४ ॥ यह मायासे सैंकड़ों और हजारों स्वरूपोंको धारण करलिया करताथा, परन्तु इस मायावीकी मायाको पांडवोंके तेजने भस्म करडाला॥२५॥ मायासे कपट करनेमें परम कुशल जिस शकुनिने बीचसभामें युधिष्ठिरको जुएमें कपटसे हरादिया था तथा उनका बडाभारी राज्य छीन लिया

तिदुःखिता ॥ २ ॥ इमौ तौ परिघप्रख्यौ बाहू शुभतलाङ्गुली । ययोर्विचरमापन्ना न रतिर्मां पुराऽजहात् ॥ ३ ॥ कां गतिन्नु गमिष्यामि त्वया हीना जनेश्वर । हतबन्धुरनाथा च वेपन्ती मधुरस्वरा ॥ ४ ॥ आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम् । क्लान्तानामपि नारीणां न श्रीर्जहति वै तनूः ॥ ५ ॥ शयानमभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन । पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिनद्धमहाभुजम् ॥६॥ मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन । आवार्य सर्वतः पत्न्यः प्ररुदन्त्यः सुविह्वलाः ॥ ७ ॥ आसामायतनेत्राणां सुस्व-

शोभायमान दीखतेहुए दोनों भुजदण्डोंको लोहूमें सनेहुए देख कर उसकी स्त्री वडी ही दुःखी होरही है और दयाजनक रीतिसे विलाप करती हुई मधुर स्वरमें कहरही है, कि–हाय ! ये (मेरे पति) कम्बोजराजके सुन्दर हथेली और सुन्दर उँगलियोंवाले तथा परिघकी समान विशाल दोनों हाथ हैं, पहले मैं इनही दोनों हाथोंके बीचमें आलिङ्गनकी जाती थी, उस समय रति मुझे नहीं त्यागती थी (मुझे पतिके सङ्गकी चाहना ज्योंकी त्यों बनी रहती थी) परन्तु हे राजन् ! तुमसे विछुड़जाने पर अब मेरी क्या दशा होगी ? मेरे बान्धव मरगये हैं, मैं अनाथ होगयी हूँ और (डरके मारे) काँपरही हूँ ॥ २–४ ॥ अनेकों प्रकारकी पुष्पमालायें जैसे धूपमें कुमलाजाती हैं तैसे ही ये स्त्रियें भी धूपमें कुमलागयी हैं, तो भी सुन्दरताने अभी तक इनके शरीरोंको नहीं त्यागा है ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! कलिङ्ग देशका राजा पृथिवी पर पड़ा है जिसके भुजदण्डोंमें चमकते हुए बाजूबन्द बँधरहे हैं, उसको देखो ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! दूसरी ओर मगध देशका राजा जयत्सेन पड़ा है, उसकी विकल हुई स्त्रियें उसको चारों ओरसे घेरकर बैठीहुई रोरही हैं ॥ ७ ॥ हे कृष्ण ! विशाल नेत्रोंवाली और मधुर स्वरवाली इन स्त्रियोंका कानोंको मीठा

तथैव निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः । द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १५ ॥ तप्तकाञ्चनवर्माणस्तालध्वजरथव्रजाः । भासयन्ति महीं भासा ज्वलिता इव पावकाः ॥ १६ ॥ द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम् । महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम् ॥ १७ ॥ पाञ्चालराज्ञो विमलं पुण्डरीकाक्ष-पाण्डुरम् । आतपत्रं समाभाति शरदीव निशाकरः ॥ १८ ॥ एतास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषा भार्याश्च दुःखिताः । दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं राजानमपसव्यतः ॥ १९ ॥ धृष्टकेतुं महात्मानं चेदिपुङ्गवमङ्गनाः । द्रोणेन निहतं शूरं हरन्ति हृतचेतसः ॥ २० ॥ द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन । महेष्वासो हतः शेते नद्या

जलगये हैं ॥ १४ ॥ ऐसे ही मनोहर बाजूबन्दों वाले पाँचों वीर केकय भाइयोंको भी द्रोणाचार्यने मारडाला है और वे रणमें पड़े हैं ॥ १५ ॥ इनके कवच सुवर्णकी समान चमकरहे हैं, ये सब ताड़के चिन्हकी पताकाओं वाले रथोंमें बैठते थे, इस समय ये मरगये, तो भी अपनी कान्तिसे जलतेहुए अग्निकी समान पृथिवीको प्रकाशित कररहे हैं ॥ १६ ॥ जैसे वनमें बड़े भारी सिंहका माराहुआ गजराज पड़ा हो तैसेही हे माधव ! देखिये द्रोणाचार्यका मारा हुआ राजा द्रुपद रणभूमिमें पड़ा है ॥१७॥ हे कमलनयन ! जैसे शरदऋतुमें चन्द्रमा शोभा पाता है तैसे ही पांचालराजका यह निर्मल स्वेत छत्र पड़ा हुआ शोभा पारहा है ॥ १८ ॥ ये राजा द्रुपदकी स्त्रियें और पुत्रोंकी बहुएँ मन ही मनमें दुःखित होरही हैं और बूढ़े राजा द्रुपदका अग्निसंस्कार करके और उसकी बाईं ओरसे परिक्रमाकर विदा होरही हैं ॥ १९ ॥ वह देखो अचेत पड़ी हुई चेदिराजकी स्त्रियें, द्रोणाचार्यके मारेहुए चेदिदेशके वीर महात्मा राजा धृष्टकेतुको उठाकर लियेजाती हैं ॥ २० ॥ हे मधुसूदन ! युद्धमें बड़ेभारी धनुषको

मरुता गलिताविव ॥ २८ ॥ काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ । ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ ॥ २९ ॥ अवध्याः पाण्डवाः कृष्ण सर्व एव त्वया सह । ये मुक्ता द्रोणभीष्माभ्यां कर्णाद्वैकर्तनात्कृपात् ॥ ३० ॥ दुर्योधनाद् द्रोणसुतात् सैंधवाच्च जयद्रथात् । सोमदत्ताद्विकर्णाच्च शूराच्च कृतवर्मणः ३१ ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः । त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३२ ॥ नातिभारोऽस्ति दैवस्य ध्रुवं माधव कश्चन । यदिमे निहताः शूराः क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः॥३३॥ तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः । यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः ॥ ३४ ॥ शान्तनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन

देखिये, ये अवन्तिदेशके राजा विन्द और अनुविन्द पड़े हैं, वसन्तमें फूल खिले हुए दो सालके वृक्ष जैसे पवनसे गिरगये हों ऐसे मालूम होरहे हैं ॥ २८ ॥ ये दोनों सोनेके बाजूबन्द और कवच पहरहे हैं, हाथोंमें धनुष बाण और तलवारको पकड़ेहुए हैं, इनके कण्ठोंमें चमकती हुई मालायें पडी हैं और इनकी आखें बैलोंकी समान विशाल हैं ॥ २९ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारे सहित पाँचों पांडव ही अवध्य हैं, इनको और तुम्हें कोई नहीं मार सकता, तभी तो द्रोण, भीष्म, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य, दुर्योधन द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और वीर कृतवर्माकी मारसे बचगये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ परन्तु जो नरश्रेष्ठ शस्त्रके वेगसे देवताओंको भी मारडालते वे योधा भी रणमें मरगये, कालके इस उलटफेरको तो देखिये ३२ हे माधव ! वास्तवमें दैवको कोई भी काम करनेमें अधिक परिश्रम नहीं पड़ता है, तभी तो क्षत्रियोंने मेरे बड़े २ वीर क्षत्रियोंका संहार करडाला ॥ ३३ ॥ हे कृष्ण ! जबसे तुम सन्धि करानेमें निष्फल होकर उपप्लव्यकी ओरको लौटगये थे तबसे ही मेरे

यस्मात्त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि ॥ ४१ ॥ पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किञ्चिदुपार्जितम् । तेन त्वां दुरवापेन शप्स्ये चक्रगदाधरम् ॥ ४२ ॥ यस्मात् परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः । उपेक्षितास्ते गोविन्द तस्माज्ज्ञातीन् वधिष्यसि ॥ ४३ ॥ त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन । हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः ॥ ४४ ॥ अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलक्षितः । कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि ॥४५॥ तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः । स्त्रियः परितपिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं वासुदेवो महामनाः ।

वाणीकी चतुरता थी, तुम दोनों पक्षोंमें मेल करा सकते थे तो भी तुमने जानकर कौरवोंके नाशमें उपेक्षा (लापरवाही) दिखायी, इसलिये अब तुम उसका फल भोगो ॥ ४० ॥४१ ॥ मैंने पतिकी सेवा करके जो कुछ तपका सञ्चय किया है, उस दुर्लभ तपसे चक्रगदाधारी तुमको मैं शाप देती हूँ, कि—॥ ४२ ॥ हे गोविन्द ! कौरव और पाण्डव आपसमें एक दूसरेका नाश करनेलगे, उस समय तुमने उनका नाश होने दिया, इसलिये तुम भी अपने संबन्धियोंके नाशका कारण बनोगे ॥ ४३ ॥ हे मधुसूदन ! आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम्हारे जाति भाई, मंत्री और पुत्रोंका नाश होजायगा तथा तुम वनमें विचरते होओगे उस समय साधारणसे उपायसे अनाथकी समान मारेजाओगे और लोकोंमें किसीको मालूम भी नहीं होगा ॥ ४४ ॥४५ ॥ और जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियें अपने पति, भाई, पुत्र और पिता आदि संबंधियोंके मरणके कारणसे सन्ताप कर रही हैं तैसे ही तुम्हारी स्त्रियें भी पति भाई, पिता पुत्र और संबन्धियोंके मरणके कारणसे सन्ताप करेंगी ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! गान्धारीके भयङ्कर शापको सुनकर उदारचित्त कृष्ण मन्द २

दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम् । दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे ॥ २ ॥ निष्ठुरं वैरपुरुषं वृद्धानां शासनातिगम् । कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि ॥ ३ ॥ मृतं वा यदि नष्टं योऽतीतमनुशोचति । दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ४ ॥ तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं गौर्वोढारं धाविवारं तुरङ्गी । शूद्रा दासं पशुपालञ्च वैश्या वधार्थीयं त्वत्विधा राजपुत्री ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पुनरुक्तं वचोऽप्रियम् । तूष्णीं बभूव गान्धारी शोकव्याकुललोचना ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्या-

भती थी ॥ २ ॥ फिर भी क्रूर, वैरको अच्छा माननेवाले और वृद्धोंकी आज्ञा न माननेवाले पुत्रका पक्ष करके तू अपने कियेहुए अपराधको मेरे ऊपर क्यों मढ़ना चाहती है ॥ ३ ॥ जो पुरुष पिछले समयमें मरेहुए अथवा खोएहुए मनुष्यके लिये शोक करता है उस मनुष्यको उस दुःखके कारणसे और भी दुःख भोगना पड़ता है, इसप्रकार वह दो प्रकारके दुःख पाता है॥४॥ ब्राह्मणकी स्त्री, तपस्यारूप कर्म करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण करती है,गौ बोझा ढोनारूप काम करनेके लिये भार उठानेवाले बैलको गर्भमें धारण करती है, घोड़ी दौडनारूप कर्म करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये दौड़नेवाले घोड़ेको गर्भमें धारण करती है,शूद्रकी स्त्री दासका काम करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण करती है और वैश्यकी स्त्री पशुपालनरूप कर्म करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण करती है और हे राजपुत्री ! क्षत्रियकी स्त्री वध करनारूप कर्म करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण करती है५ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! वासुदेवके पुनरुक्तिरूप अप्रिय वचनको सुनकर जिसके नेत्र शोक से व्याकुल होरहे थे वह गान्धारी चुप होगयी ॥ ६ ॥ फिर धर्मको जानने

याचमानाः पराङ्मुखाः । शस्त्रेण निधनं प्राप्ता गतास्ते गुह्यकान् प्रति ॥ १४ ॥ पात्यमानाः परैर्ये तु हीयमानाः निरायुधाः । ह्री-निषेवा महात्मानः परानभिमुखाः रणे ॥ १५ ॥ छिद्यमानाः शितैः शस्त्रैः क्षत्रधर्मपरायणाः । गतास्ते ब्रह्मसदनं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १६ ॥ ये त्वत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति । यथाकथंचित्पुरुषास्ते गतास्तूत्तरान् कुरून् १७ धृतराष्ट्र उवाच । केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत् । तन्मे वद महाबाहो श्रोतव्यं यदि वै मया ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर उवाच । निदेशाद्भवतः पूर्वं वने विचरता मया । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन संप्राप्तोऽय-मनुग्रहः ॥ १९ ॥ देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम् ।

गन्धर्वोंमें जाकर मिलगये हैं ॥ १३ ॥ और जो योधा संग्राम-भूमिमें खड़े थे तथा ईश्वरसे बचनेकी प्रार्थना कररहे थे और फिर रणमेंसे पीछेको भागतेमें शस्त्रसे मारेगये वे गुह्यकोंके लोकमें गये हैं ॥ १४ ॥ परन्तु जो महात्मा शस्त्रहीन होतेहुए भी तथा शत्रुओंके हाथसे पीड़ा पाते और नष्ट होतेहुए भी अनुचित काम करतेमें (क्षत्रियधर्मके विरुद्ध रणमेंसे भागनेमें) प्रवृत्त नहीं हुए, किन्तु रणमें शत्रुओंके सामने जाकर उनके उठाये हुए शस्त्रोंसे कटे और मरगये, वे क्षत्रियके धर्म पर जमे रहनेवाले तेजस्वी वीरपुरुष निःसन्देह ब्रह्मलोकमें गये हैं १५-१६ और हे राजन् ! जो वीर पुरुष चाहे जिस रीतिसे रणभूमिमें मारेगये हैं वे उत्तर कुरु लोकोंमें पहुँचे हैं ॥ १७ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे पुत्र ! तुमने सिद्ध पुरुषकी समान कौनसे ज्ञानबल से यह सब बात जानपायी है, यह बात, हे महाबाहु युधिष्ठिर ! यदि मेरे सुनने योग्य होय तो सुना ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरने कहा; कि–आपकी आज्ञानुसार पहले जब मैं वनवासमें था, तब वनमें विहार करतेर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे यह अनुग्रह प्राप्त हुआथा १९

कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः । यथा चानाथवत् किञ्चिच्छरीरं न विनश्यति ॥ २६ ॥ शासनाद्धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च सञ्जयः। सुधर्मा धौम्यसहिता इन्द्रसेनादयस्तथा ॥ २७ ॥ चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत । घृतं तैलञ्च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च ॥ २८ ॥ समाहृत्य महार्हाणि दारुणां चैव सञ्चयान् । रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च ॥ २९ ॥ चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान्नराधिपान् । दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥३० दुर्योधनञ्च राजानं भ्रातृंश्चास्य शताधिकान्। शल्यं शलञ्च राजानं भूरिश्रवसमेव च ॥ ३१ ॥ जयद्रथञ्च राजानमभिमन्युञ्च भारत । दौःशासनिं लक्ष्मणं च धृष्टकेतुञ्च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥ बृहन्तं सोमदत्तञ्च सृञ्जयांश्च शताधिकान् ।

वीर पुरुषोंके अन्त्येष्टिकर्म पूर्ण रीतिसे करादो, कि-जिससे किसीका भी शरीर अनाथकी समान नष्टभ्रष्ट न होय॥२४-२६॥ धर्मराजकी आज्ञा होते ही विदुर, सञ्जय, सुधर्मा, धौम्य तथा इन्द्रसेन आदि सेवकोंने ॥ २७ ॥ बहुमूल्य चन्दन अगरके काठ, समयोचित (तुलसी आदिके) काठ, घी, तेल, सुगन्धि पदार्थ, रेशमी वस्त्र लकड़ियोंके बोझ तथा टूटेहुए रथ और भाँति २ के शस्त्र इकट्ठे किये, फिर घबराहटमें न आकर उनकी यत्नके साथ चितायें लगवायीं, उनमें मुख्य२ राजाओंको सुलादिया और फिर शास्त्रमें कहीहुई विधिके अनुसार क्रमसे उनकी दाहक्रिया करवायी ॥२८-३०॥ हे राजन् ! राजा दुर्योधनको, उसके सौसे अधिक भाइयोंको, शल्यको, राजा शलको, भूरिश्रवाको ॥३१॥ राजा जयद्रथको अभिमन्युको, दुःशासनके पुत्रको, लक्ष्मण तथा राजा धृष्टकेतुको बृहन्त, सोमदत्त तथ सैंकड़ों सृञ्जय राजाओंको, राजा क्षेमधन्वा विराट, द्रुपद और पांचालपुत्र शिखण्डीको, पृषत्वंशी धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, पराक्रमी उत्तमौजा और कौसल

असम्वृताः ॥ ४१ ॥ ये चाप्यनाथास्तत्रासन्नानादेशसमागताः । तांश्च सर्वान् समानाय्य राशीन् कृत्वा सहस्रशः ॥ ४२ ॥ चित्वा दारुभिरव्यग्रैः प्रभूतैः स्नेहपातितैः । दाहयामास तान् सर्वान् विदुरो राजशासनात् ॥ ४३ ॥ कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कुरूणा-
मौर्ध्वदेहिके षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते समासाद्य गङ्गान्तु शिवां पुण्यजलोचिताम् । ह्रदिनीश्च प्रसन्नाञ्च महारूपां महावलाम् ॥ १ ॥ भूषणान्युत्तरीयाणानि भूषणान्यवमुच्य च । ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च ॥ २ ॥ पुत्राणामार्यकाणाञ्च पतीनाञ्च

मालूम होता था, मानो निर्धूम-देदीप्यमान आकाशमें छोटे छोटे बादलोंसे ढकेहुए तारे चमकरहे हैं४१इसके उपरान्त भिन्न२देशोंसे भिन्न२ जातिके जो पुरुष युद्ध करनेको आये थे और जिनके कोई सगे नहीं थे उन अनाथ वीरोंके हजारों शवोंके ढेर लगाकर उनको तेलमें भिगोई हुई वहुतसी लकड़ियोंसे ढककर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे विदुरने उनको भी जलवादिया ॥ ४२-४३ ॥ कुरुराज युधिष्ठिर इसप्रकार सव राजाओंकी दाहक्रिया करवाकर राजा धृतराष्ट्रको आगे करके गङ्गानदीकी ओरको चलेगये ॥ ४४ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजा जनमेजय ! सवजने पवित्र जलवाली, पुण्यवान् मनुष्योंसे सेवित तटोंवाली और बड़े वेगसे वहती हुई गङ्गानदीके तटपर आगये, तहाँ युधिष्ठिर आदि सव पुरुषोंने दुपट्टे आदि उत्तरीय वस्त्र, पगड़ियें, कमरकी फेटें तथा गहने शरीर परसे अलग करके पिता, भाई, पुत्र, पौत्र और अपने संवन्धियोंको जलकी अञ्जलि दी और फिर तर्पण करने

यस्य नास्ति समो वीर्ये पृथिव्यामपि पार्थिवः ॥ १० ॥ यो वृणीत यशः शूरः प्राणैरपि सदा भुवि । कर्णस्य सत्यसन्धस्य संग्रामेष्वपलायिनः ॥ ११ ॥ कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः । स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत ॥ १२ ॥ कुण्डली कवची शूरो दिवाकरसमप्रभः । श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम् ॥ १३ ॥ कर्णमेवानुशोचन्तो भूयः क्लान्ततराभवन् । ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः १४ उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः । यः शरोर्मिध्वजावर्तो महाभुजमहाग्रहः १५ तलशब्दानुनदितो महारथमहाह्रदः । यस्येषुपातमासाद्य नान्य-

---

ओंके साथ लडा था ॥ ६ ॥ जो दुर्योधनके सेनाध्यक्षके पदको शोभायमान करता था, सब पृथिवी पर जिसकी समान बलवान् कोई राजा नहीं था ॥ १० ॥ जो प्राणोंके चलेजाने पर भी पृथिवी पर सदा यशको चाहता था, जो संग्राममें सामनेसे चढाई करके लडनेवाला था और जो दिव्य कुण्डल तथा दिव्य कवचको धारण किये हुए था, ऐसा उत्तम कर्म करनेवाला, वीर और सूर्यकी समान कान्तिमान् कर्ण, तुम्हारा बडा भाई लगता था, वह सूर्यसे मेरे पेटमें जन्मा था, उस अपने भाईको तुम जलकी अञ्जलि दो, माताके दुःख उत्पन्न करनेवाले वचनको सुनकर, सब पाण्डव कर्णके लिये शोक करनेलगे, इस समय वे सदासे अधिक खिन्न होगये, हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान राजन् ! बडे भाई युधिष्ठिर सर्पकी समान लम्बे साँस छोडकर माता कुन्तीसे बूझनेलगे, कि—हे माताजी ! जो कर्ण महासागरकी समान था, जिसके बाण तरङ्गोंकी समान थे, जिसकी ध्वजा भँवररूप थी, जिसके हाथोंकी हथेलियोंका शब्द महासागरके क्षोभकालकी गर्जनाकी समान था, जिसकी भुजायें बड़े २ नाकोंकी समान थीं जिसका बडा रथ कुण्डेकी समान था, जिसके बाणोंके प्रहारके

दह्याम्यग्नाविवाहितः । नेह स्म किञ्चिदप्राप्यं भवेदपि दिविस्थितम् ॥ २४ ॥ न चेदं वैशसं घोरं कौरवान्तकरं भवेत् । एवं विलप्य बहुलं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥ व्यरुदच्छनकै राजंश्चकारास्योदकं प्रभुः । ततो विनेदुः सहसा स्त्रियस्ताः खलु सर्वशः ॥ २६ ॥ अभितो याः स्थितास्तत्र तस्मिन्नुदककर्मणि । तत आनययामास कर्णस्य सपरिच्छदाः ॥ २७ ॥ स्त्रियः कुरुपतिर्धीमान् भ्रातुः प्रेम्णा युधिष्ठिरः । स ताभिः सह धर्मात्मा प्रेतकृत्यमनन्तरम् ॥ २८ ॥ चकार विधिवद्धीमान् धर्मराजो युधिष्ठिरः । पापेनासौ मया श्रेष्ठो भ्राता ज्ञातिर्निपातितः ॥ २९ ॥ अतो मनसि यद् गुह्यं स्त्रीणां तन्न भविष्यति । इत्युक्त्वा स तु

मुझे कर्णके मरणके कारण होरहा है ॥ २२ ॥ २३ ॥ कर्णके शोकसे इस समय मैं ऐसा जलाजाता हूँ, मानो अग्निमें पडाहुआ हूँ, यदि हम जानते होते, कि–कर्ण हमारा भाई है तो इस लोक की या परलोककी कोई भी वस्तु हमे दुर्लभ नहीं होती और हाय ! कौरवोंका भयङ्कर संहार भी नहीं होता धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार बहुत ही विलाप करके ॥ २४ ॥ २५ ॥ धीरे २ रोतेहुए अपने बड़े भाई कर्णको जलदान दिया, जलदानका कर्म करते समय तहाँ जितनी स्त्रियें खडी थीं वे सब एकसाथ जोरसे रोपडीं बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने भाईके प्रेमके कारण कर्णकी स्त्रियोंको उनकी दासियोंके सहित तहाँ बुलवा मँगाया और धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने उन स्त्रियोंको साथमें लेकर शास्त्रमें लिखीहुई विधिसे कर्णका प्रेतकर्म किया और फिर कहनेलगे, कि-मुझ पापीने श्रेष्ठ संबन्धी और भाई कर्णको अज्ञातपनेमें मारडाला है ॥ २६–२९ ॥ इसलिये उनकी रानियों के मनमें मेरी ओरसे यदि छिपाहुआ द्वेषभाव हो तो वह उन

त्वात् सा तस्यैव न रोचते ॥ १३ ॥ निश्चित्य तु यथाप्रज्ञं यां मतिं साधु पश्यति । तया प्रकुरुते भावं सा तस्योद्योगकारिका ॥१४॥ सर्वो हि पुरुषो भोज साध्वेतदिति निश्चितः । कर्त्तुमारभते प्रीतो मरणादिषु कर्मसु । १५ । सर्वे हि बुद्धिमास्थाय प्रज्ञां चापि स्वकां नराः।चेष्टन्ते विविधां चेष्टां हितमित्येव जानते ॥ १६ ॥ उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम । युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम् ॥ १७ ॥ प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा कर्म तासु विधाय च । वर्णे वर्णे समाधत्ते ह्येकैकं गुणभाग्गुणम्॥१८॥ ब्राह्मणे वेदमग्र्यन्तु क्षत्रिये तेज उत्तमम् । दाक्ष्यं वैश्ये च शूद्रे च सर्ववर्णानुकूलताम्।१९।अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधुर्नि-

---

वह पहली बुद्धि नहीं रुचती है ॥१३॥ परन्तु जो मनुष्य बुद्धिसे निश्चय करके बुद्धिको अच्छी तरहसे जानता है, वह बुद्धिके अनुसार काम कर सकता है और वह बुद्धि उसके उद्योगमें सहायक होती है ॥ १४ ॥ हे भोज ! 'यह काम अच्छा है' ऐसा निश्चय करके सब लोग प्रसन्न होते हैं और फिर मरण आदि काम करनेका आरम्भ करते हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि—सब मनुष्य अपनी २ युक्ति और बुद्धिका भरोसा रखकर अनेकों प्रकारके काम करते हैं और इसमें हमारा हित ही है ऐसा समझते हैं १६ आज दुःखके कारण मेरी ऐसी बुद्धि हुई है और वह मेरे शोकका नाश करदेगी, इसलिये मैं उसके विषयमें तुम दोनोंसे बूझ रहा हूँ ॥ १७ ॥ गुणवान् प्रजापति प्रजाको रचकर हरएक वर्णमें कर्मानुसार एक२ गुण रखदेता है१८ ब्राह्मणमें श्रेष्ठ वेद, क्षत्रियमें श्रेष्ठ तेज, वैश्यमें चतुराई और शूद्रमें सब वर्णोंके अनुकूल रहनेके गुणको रखता

काशिनः । विमुक्तयुग्यकवचा हर्षेण च समन्विताः २५
जयं मत्वात्मनश्चैव श्रान्ता व्यायामकर्शिताः । तेषां निशि
प्रसुप्तानां सुस्थानां शिबिरे स्वके ॥ २६ ॥ अवस्कन्दं करि-
ष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करम् । तानवस्कन्द्य शिबिरे प्रेत-
भूतान् विचेतसः ॥ २७ ॥ सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवा-
निव दानवान् । अद्य तान् सहितान् सर्वान् धृष्टद्युम्न-
पुरोगमान् ॥ २८ ॥ सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवा-
नलः । निहत्य चैव पञ्चालान् शान्तिं लब्धास्मि सत्तम२९
पञ्चालेषु चरिष्यामि सूदयन्नद्य संयुगे । पिनाकपाणिः
संक्रुद्धः स्वयं रुद्रः पशुष्विव ॥ ३० ॥ अद्याहं सर्व पञ्चा-
लान्निकृत्य च निहत्य च । अर्दयिष्यामि संहृष्टो रणे पाण्डु-

हुए विश्वासके साथ सोरहे होंगे ॥ २५ ॥ परिश्रमसे थके
हुए और दौड़भागसे दुर्बल हुए पंचाल अपनी विजय
हुई समझकर छावनीमें शान्तिके साथ सोरहे होंगे, इस
लिये रातमें ही उनकी छावनीके ऊपर बड़ाभारी धावा
करूँगा और जैसे इन्द्रने पराक्रम करके दानवोंको मार
डाला था तैसे ही मैं पराक्रम करके प्रेतकी समान अचेत
सोये पड़ेहुए पंचालोंको मारडालूँगा और जलता हुआ
अग्नि जैसे घासको जलाकर शान्त होता है, हे श्रेष्ठ कृत-
वर्मा ! मैं भी आज पराक्रमसे इकट्ठे सोते हुए धृष्टद्युम्न
आदि पंचालोंको मारकर शान्ति पाऊँगा ॥ २६—२९ ॥
जैसे पिनाक धनुषको धारण करनेवाले रुद्र पशुओंका
नाश करडालते हैं तैसे ही आज मैं भी रणमें पंचालोंका
कचरघाँस करडालूँगा ॥ ३० ॥ आज मैं सब पंचाल
राजाओंको मारकर बड़ा ही प्रसन्न होऊँगा और फिर
रणमें पाण्डवोंको बहुत ही दिक्क करूँगा ॥ ३१ ॥ आज मैं

च्युत । न त्वां वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥१॥ अनुयास्यावहे त्वान्तु प्रभाते सहितावुभौ । अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः ॥ २ ॥ अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः । परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥ ३ ॥ आवाभ्यां सहितः शत्रून् श्वो निहन्ता समागमे । विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ पञ्चालान् सपदानुगान्४ शक्तस्त्वमसि विक्रम्य विश्रमस्व निशामिमाम् । चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम्५विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद । समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यसि न संशयः ।६। न हि त्वां रथिनां श्रेष्ठं प्रगृहीतवरायुधम्।

है, आज स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी तुझे नहीं रोकसकता१ कल प्रातःकाल हम दोनों तेरे पीछे चलेंगे, इसलिये आज तो तू अपने शरीरपरसे कवचको और ध्वजाको उतारकर सोजा ॥ २ ॥ जब तू शत्रुके ऊपर चढ़ाई करने को तयार होगा, तब मैं और कृतवर्मा कवच पहन कर तथा रथमें बैठकर तेरे साथ २ चलेंगे ॥३॥ हे महारथी ! कल प्रातःकाल तू हमारे साथ ही रहकर रणमें अपने शत्रु पंचालोंका और उनके सेनादलका नाश करना ४ तू पराक्रम करसकता है, इसलिये हमारे कहनेके अनुसार काम करना,परन्तु आजकी रात यहाँ विश्राम करले हे तात ! तू बहुत जागा है, इसलिये आजकी रात सोले ॥ ५ ॥ हे सन्मान करनेवाले ! तू परिश्रम तथा जागनेके खेदको दूर करके चित्तको स्वस्थ कर,ऐसा करने से तू ताजा होकर रणमें शत्रुओंके साथ लड़ता हुआ अवश्य ही उनका नाश करेगा ॥ ६ ॥ महारथी तू जब उत्तम शस्त्रोंको हाथमें लेकर लड़ाईमें खड़ा होता है, तब

स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे। ततः कर्त्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत् ॥ १४ ॥ कृत्वा च कदनं तेषां प्रभाते विमलेऽहनि। विहरस्व यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान् ॥ १५ ॥ त्वं हि शक्तो रणे जेतुं पञ्चालानां वरूथिनीम्। दैत्यसेनामिव क्रुद्धः सर्वदानवसूदनः ॥ १६ ॥ मया त्वां सहितं संख्ये गुप्तञ्च कृतवर्मणा। न सहेत विभुः साक्षाद्वज्रपाणिरपि स्वयम् १७ न चाहं समरे तात कृतवर्मा न चैव हि। अनिर्जित्य रणे पाण्डून् व्यपयास्याव कर्हिचित् ॥ १८ ॥ हत्वा च समरे क्रुद्धान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह। निवर्त्तिष्यामहे सर्वे

पर कवच धारण कर रथमें बैठकर एकसाथ तेरे पीछे रणमें जाचढेंगे ॥१२॥१३॥ और तू उनकी छावनी में घुसकर और उनको नाम सुना२ कर युद्ध करनेवाले शत्रुओंका महासंहार करडालना ॥ १४ ॥ निर्मल प्रभात होते ही शत्रुओंका संहार करके और फिर महाअसुरों का नाश करके जैसे इन्द्र विहार करता है तैसे ही तू भी इच्छानुसार विहार करना ॥ १५ ॥ सब दानवोंका संहार करनेवाला इन्द्र जैसे क्रोधसे सब दैत्योंकी सेना का संहार करनेमें समर्थ होता है तैसे ही तू भी लडाई में सब पंचालोंकी सेनाको जीत लेनेमें समर्थ है ॥ १६ ॥ तू युद्धमें मेरे साथ होगा और कृतवर्मा तेरी रक्षा करता होगा, तब स्वयं वज्रपाणि इन्द्र भी तुझे रणमें नहीं जीत सकेगा ॥१७॥ हे तात ! मैं तथा कृतवर्मा युद्धमें पांडवों को जीते बिना कदापि पीछेको नहीं लौटेंगे ॥ १८ ॥ या तो कोपमें भरेहुए पंचाल राजाओंको पांडवोंके सहित रणमें मार कर पीछेको लौटेंगे नहीं तो हम ही रणमें

प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति। कथं हि मादृ-
शो लोके मुहूर्त्तमपि जीवति ॥२५॥ द्रोणो हतेति तद्वाक्यः
पञ्चालानां शृणोम्यहम् । धृष्टद्युम्नमहत्वाजौ नाहं
जीवितुमुत्सहे ॥ २६ ॥ स मे पितुर्वधाद्वध्यो पञ्चाला ये
च संगताः । विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया
श्रुतः ॥ २७ ॥ स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत्।
कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत् ॥ २८ ॥ नृप-
तेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग्वचः पुनः । यश्चायं मित्र-
पक्षो मे मयि जीवति निर्जितः ॥ २९ ॥ शोकं मे वर्द्ध-

स्मरण आनेसे रातदिन हृदयको शान्ति नहीं मिलती२४ यह सब घटना आपकी तो आँखों देखी है,उसकी याद आनेसे ऐसा मालूम होता है—मानो कोई मेरे मर्मस्थानों को काटडालता है, मुझ सरीखा पुरुष इसप्रकार पिताके वधकी बातको सुनकर एक मुहूर्त्त भी कैसे जीवित रह सकता है ? ॥२५॥ द्रोणाचार्य मारेगये, यह बात पंचाल राजाओंके मुखसे मैंने जबसे सुनी है तबसे धृष्टद्युम्नको मारे बिना जीवित रहना नहीं चाहता २६ अपने पिता के मारनेवालेको तथा उसके साथ पंचाल राजाओंको मैं अवश्य मारूँगा और जिसकी दोनों जंघायें तोड़ डाली गयी हैं उस राजा दुर्योधनका मैंने जो विलाप सुना है वह कौनसे क्रूर पुरुषके भी हृदयको नहीं जलाडालेगा ? तथा जिसकी दोनों जंघायें टूटगयी हैं उस राजा दुर्यो-धनकी बातोंको सुनकर कौनसे निर्दयी पुरुषकी आँखोंमेंसे आँसू नहीं टपकने लगेंगे ? फिर मेरे जीतेजी जो मेरी मित्रमण्डलीकी पराजय हुई है यह बात भी जैसे जलका वेग समुद्रको बढ़ाता है, तैसे ही मेरे शोक

कृप उवाच। शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः। नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः ॥१॥ तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते। न च किञ्चन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम् ॥२॥ चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य ह। न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव ॥ ३ ॥ मुहूर्त्तमपि तं प्राज्ञः पण्डितं पर्युपास्य हि। क्षिप्रं धर्मान् विजानाति जिह्वा सूपरसानिव ॥४॥ शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः। जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यंच न विरोधयेत् ॥५॥ अनेयस्त्ववमानी यो

कृपाचार्यने कहा, कि–हे अश्वत्थामा ! जिसकी इंद्रियें वशमें न हों और जिसकी बुद्धि ठीक न हो वह पुरुष मेरी समझमें सुननेकी इच्छा वाला होकर भी धर्म और अर्थको पूर्ण रीतिसे नहीं समझ सकता ॥१॥ ऐसे ही बुद्धिमान् पुरुष यदि विनय की शिक्षा नहीं पाता है तो वह धर्म और अर्थके निर्णय को जरा भी नहीं जान सकता है ॥ २ ॥ तथा जो वीर होने पर भी बहुत दिनोंका मूर्ख होता है वह, पण्डितों की सेवा करने पर भी जैसे करछी दालके स्वादको नहीं जानती ऐसे ही धर्मको नहीं जान सकता है ॥ ३ ॥ जैसे जीभ दालके स्वादको तुरंत जान जाती है ऐसे ही बुद्धिमान् पुरुष यदि मुहूर्त्त भर को भी पण्डितोंकी सेवा करता है तो तुरन्त ही धर्मको जानलेता है ४ जो पुरुष सुननेका अभिलाषी जितेन्द्रिय तथा बुद्धिमान् होता है वह वेदमें कहेहुए सब धर्मोंको जानसकता है और वह ग्रहण करने योग्य विषयके साथ विरोध नहीं करता है ॥५॥ परन्तु जिस पुरुषको सन्मार्ग

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः । तथैवापास्त-
शस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्॥११॥ये च ब्रूयुस्तवास्मीति
ये च स्युः शरणागताः । विमुक्तमूर्द्धजा ये च ये चापि
हतवाहनाः॥ १२ ॥ अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्त-
कवचा विभो । विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचे-
तसः ॥ १३ ॥ यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः ।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे॥१४॥ सर्वास्त्र-
विदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुत । न च ते जातु लोकेऽ-
स्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम् ॥१५॥ त्वं पुनः सूर्यसङ्काशः
श्वोभूत उदिते रवौ । प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि
शात्रवान् ॥ १६ ॥ असम्भावितरूपं हि त्वयि कर्म विग-

जिनके पास शस्त्र न हों, जो रथ और घोड़ोंसे हीन हो गये हों, जो 'मैं आपका हूँ' ऐसा कहते हों, जो शरणमें आये हुए हों, जिनके शिरके बाल बिखरे हुए हों और जिनके वाहन मरगये हों ऐसे मनुष्योंको मारना, यह काम जगत्में धर्मानुसार अच्छा नहीं मानाजाता ११–१२ हे समर्थ अश्वत्थामा ! आजकी रातमें पञ्चाल राजे शरीरों परसे कवचोंको उतारकर अचेत पड़े हुए प्रेतोंकी समान निश्चिन्त सोरहे होंगे ॥ १३ ॥ ऐसी दशामें पड़ेहुए मनुष्योंसे जो कपटी पुरुष द्रोह करता है वह स्पष्टरूपसे बिना नौकाके अगाध नरकमें डूब जाता है ॥ १४ ॥ तू जगत्में सब अस्त्र वेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रसिद्ध है तथा कभी तेरा छोटेसे छोटा पाप भी देखनेमें नहीं आया है॥ १५॥ इस लिये कलको सूर्य उदय होजाय, उस समय, सूर्यके समान तेजस्वी तू सब प्राणियोंके सामने खड़ा होकर युद्ध करता हुआ शत्रुओंका पराजय करना ॥ १६ ॥ जैसे

समेत्य गदया रणे। पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः ॥ २३ ॥ एकाकी बहुभिस्तत्र परिवार्य महारथैः। अधर्मेण नरव्याघ्रो भीमसेनेन पातितः ॥ २४॥ विलापो भग्नसक्थस्य यो मे राज्ञः परिश्रुतः। वार्त्तिकानां कथयतां स मे मर्माणि कृन्तति ॥ २५ ॥ एवञ्चाधार्मिकाः पापाः पञ्चाला भिन्नसेतवः। तानेवं भिन्नमर्य्यादान् किं भवान्न विगर्हति ॥२६॥ पितृहन्तॄनहं हत्वा पञ्चालान्निशि सौप्तिके। कामं कीटः पतंगो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥ २७ ॥ त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम्। तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ २८ ॥ न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न स भविष्यति। यो मे व्याव-

---

सेनने दुर्योधनसे मुचेटा ले अधर्मसे गदा मारकर उसको मार गिराया ॥ २३ ॥ दुर्योधन अकेला था, उसको बहुत से महारथियोंने घेरलिया था और भीमने उस नरव्याघ्र को अधर्मसे मारडाला ॥ २४ ॥ राजा दुर्योधनकी दोनों जङ्घायें टूटगयीं थीं, उसका दूतोंके मुखसे मैंने जो विलाप सुना है, वह विलाप मेरे मर्मस्थानोंको काटेडालता है २५ इस प्रकार अधर्मी पञ्चाल राजाओंने धर्मकी मर्यादाको तोड़ डाला है, उन धर्मकी मर्यादा तोड़ने वाले पञ्चाल-राजाओंकी निन्दा तुम क्यों नहीं करते ?॥ २६ ॥ मैं भी अपने पिताके मारने वालोंको मार कर रातमें सोते हुए पंचालोंको मार डालूँगा, ऐसा करनेसे भले ही मुझे कीड़े व पतङ्गका जन्म मिले ॥ २७ ॥ मैं जो इस कामको करना चाहता हूँ, आज मुझे इसके लिये बड़ी ही जल्दी पड़रही है, ऐसी घबड़ाहटमें पड़े हुए मुझको निद्रा ही कैसे आसकती है और सुख भी कहां से मिल सकता

वै । पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा ॥ ३५ ॥
कथञ्च निहतः पापः पांचाल्यः पशुवन्मया । शस्त्रेण
विजितांल्लोकान्नाप्नुयादिति मे मतिः ॥ ३६ ॥ क्षिप्रं
सन्नद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ । मामास्थाय प्रती-
क्षेतां रथवर्यौ परन्तपौ ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय
प्रायादभिमुखः परान् । तमन्वगात् कृपो राजन् कृतवर्मा
च सात्वतः ॥३८॥ ते प्रयाता व्यरोचन्त परानभिमुखा-
स्त्रयः । हूयमाना यथा यज्ञे समिद्धा हव्यवाहनाः ॥३९॥

द्युम्नने उनको मार डाला ॥३४॥ इस लिये धर्मको छोड़ने वाले और पापकर्म करने वाले पञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको आज मैं पापकर्मसे ही मारूँगा ॥ ३५ ॥ मेरा दृढ़ निश्चय है, कि—जैसे पशुको बिना शस्त्रके ही मारा करते हैं तैसे ही मैं पञ्चालोंके राजाको भी बिना शस्त्रके ही मारूँगा, मेरी समझमें इससे उसको शस्त्रोंसे जीते हुए लोक नहीं मिलेंगे ॥ ३६ ॥ महारथी और परन्तप तुम दोनों शरीरों पर कवच पहर लो, तलवार और धनुष लेकर रथमें बैठ जाओ, मेरी रक्षा करनेके लिये बाट देखते रहो ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथमें बैठ शत्रुओं की छावनीकी ओरको चल दिया, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके पीछे२ गये ॥ ३८ ॥ जिससमय उन तीनोंने शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई की थी उस समय यज्ञमें जिनमें होम किया जाता है वे तीन अग्नि जैसे प्रकाशित होते हैं तैसे ही वे तीनों प्रकाशमान दीख रहे थे ॥ ३९ ॥ अश्वत्थामा आदिने रातके समय, जिस में सब मनुष्य सोरहे थे ऐसी पांडवों की छावनी पर

पवीतिनम् ॥ ४ ॥ बाहुभिः स्वायतैः पीनैर्नाना-
प्रहरणोद्यतैः । बद्धांगदमहासर्पं ज्वालामालाकुला-
ननम् ॥ ५ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं व्यादितास्यं भयानकम् ।
नयनानां सहस्रैश्च विचित्रैरभिभूषितम् ॥ ६ ॥
नैव तस्य वपुः शक्यं प्रवक्तुं वेष एव च । सर्वथा तु तदा-
लक्ष्य स्फुटेयुरपि पर्वताः ॥७॥ तस्यास्यान्नासिकाभ्यां च
श्रवणाभ्याञ्च सर्वशः । तेभ्यश्चाक्षिसहस्रेभ्यः प्रादुरास-
न्महार्चिषः ॥ ८ ॥ तथा तेजोमरीचिभ्यः शंखचक्रगदा-
धराः । प्रादुरासन् हृषीकेशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥९॥
तदत्यद्भुतमालोक्य भूतं लोकभयङ्करम् । द्रौणिरव्यथितो

मृगछाला ओढ़ रहा था, पवित्र यज्ञोपवीतके स्थानमें सर्प थे ॥ ४ ॥ उसके हाथ पुष्ट मांससे भरेहुए और विशाल थे, वह अनेकों शस्त्र ऊपरको उठाये हुए था, बाजूबंद के स्थानमें मोटे साँप बाँधेहुए था, उसका मुख अग्निकी ज्वालाकी समान प्रकाशवान् था और दाँतोंसे ऐसा भयानक मालूम होता था, कि–उसकी ओरको देखा भी नहीं जाता था, फटा हुआ मुख, ज्वालाकी मालाओंसे तथा दाँतोंसे बड़ा ही भयानक था और हजारों विचित्र प्रकारके नेत्रोंसे शोभायमान दीखता था ॥ ५ ॥ उसके शरीर और वेशका वर्णन तो हो ही नहीं सकता था, यदि उसको देखलें तो पर्वत भी अवश्य ही फटजाँय ७ उसके मुख, नाक, कान और हजारों नेत्रोंमेंसे तेजकी बडी २ लपटें निकल रही थीं ॥ ८ ॥ तथा उसके तेजके समूहमेंसे शंख, चक्र और गदाओंको धारण करनेवाले सैंकडों और सहस्रों हृषीकेश उत्पन्न होरहे थे ॥९॥ इस प्रकार लोगोंको भयभीत करनेवाले अलौकिक प्राणीको

द्रौणिरिन्द्रकेतुनिभां गदाम् ॥ १६ ॥ ज्वलन्तीं प्राहिणो-
त्तस्मै भूतं तामपि चाग्रसत् । ततः सर्वायुधाभावे वीक्ष्य-
माणस्ततस्ततः ॥ १७ ॥ अपश्यत् कृतमाकाशमनाकाशं
जनार्दनैः । तदद्भुततमं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रो निरायुधः ॥ १८॥
अब्रवीदतिसन्तप्तः कृपवाक्यमनुस्मरन् । ब्रुवतामप्रियं
पथ्यं सुहृदां न शृणोति यः ॥ १९ ॥ स शोचत्यापदं
प्राप्य यथाहमतिवर्त्य तौ । शास्त्रदृष्टानविद्वान् यः सम-
तीत्य जिघांसति ॥२०॥ स पथः प्रच्युतो धर्मात् कुपथे
प्रतिहन्यते । गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा २१

अश्वत्थामाने ज्योंही उस पुरुष के तलवार मारी कि-जैसे नौला बिलमें घुसजाता है तैसे ही वह तलवार उसके शरीरमें अन्तर्धान होगयी, यह देख अश्वत्थामा को क्रोध आगया, उसने इन्द्रध्वजाकी समान दहकती हुई गदा उस देवताके मारी,वह उस गदाको भी तुरन्त ही निग-लगया, इसप्रकार जब अश्वत्थामाके सब अस्त्र निबड़गये तब वह इधर उधरको देखने लगा ॥ १६-१७ ॥ उसने आकाशको असंख्यों जनार्दनोंसे भराहुआ देखा,आकाशके महाअद्भुत दृश्यको देखकर शस्त्रशून्य अश्वत्थामा क्रो-धके मारे जलउठा और कृपाचार्यकी बातको याद करके कहनेलगा, कि-जो मनुष्य हितैषी पुरुषोंके हितकारी कटु वचनको नहीं सुनता है वह हितैषियोंका उल्लङ्घन करने-वाला मेरी समान आपत्तिमें पड़कर शोक ही किया करता है, जो मूढ़ मनुष्य शास्त्रमें अवध्य कहेहुए पुरुषोंको मारना चाहता है वह धर्ममार्गसे भ्रष्ट होजाता है और नीच मार्गमें को जानेके कारण सामनेसे मार खाता है, गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, मूर्ख,

यादिह निवर्त्तते। तदिदं दुष्प्रणीतेन भयं मां समुपस्थितम्॥२८॥ न हि द्रोणसुतः संख्ये निवर्त्तेत कथञ्चन। इदञ्च सुमहद्भूतं दैवदण्डमिवोद्यतम् ॥ २६ ॥ न चैतदभिजानामि चिन्तयन्नपि सर्वथा। ध्रुवं येयमधर्मेण प्रवृत्ता कलुषा मतिः ॥ ३० ॥ तस्या फलमिदं घोरं प्रतिघाताय दृश्यते। तदिदं दैवविहितं मम संख्ये निवर्त्तनम् ॥३१॥ नान्यत्र दैवादुद्यन्तमिह शक्यं कथञ्चन। सोऽहमद्य महादेवं प्रपद्ये शरणं प्रभुम् ॥ ३२ ॥ दैवदंडमिमं घोरं स हि मे नाशयिष्यति। कपर्दिनं देवदेवमुमापतिमनामयम् ॥ ३३ ॥ कपालमालिनं रुद्रं भगनेत्रहरं हरम्। स

विद्वान् पुरुष मूर्खताका काम कहते हैं, मेरे ऊपर भी इस दुष्ट कामको करतेमें ऐसा ही भय आपड़ा है ॥ २३–२८॥ परन्तु द्रोणाचार्यका पुत्र कभी भी रणमेंसे पीछेको नहीं हटेगा, यह कोई बड़ा भारी प्राणी ऊपरको उठायेहुए दैवके दण्डकी समान बीचमें आकर खड़ा होगया है ॥ २६ ॥ विचार करने पर भी इस प्राणीको मैं पूरा२ नहीं पहचानसका, वास्तवमें मेरी मलिन हुई बुद्धि अधर्म करनेको तयार होगयी है, उसका नाश करनेके लिये ही निःसन्देह यह महाभयानक फल प्राप्त हुआ है, मुझे इस युद्धमेंसे दैवयोगसे ही पीछेको हटना पड़ेगा, दैवकी अनुकूलताके बिना कोई भी मनुष्य किसी कामका आरम्भ करदेता है तो उसका वह काम किसीप्रकार भी सिद्ध नहीं होता है, इसलिये अब मैं व्यापक महादेवजीकी शरण लेता हूँ ॥ ३०–३२ ॥ वे ही मेरे भयानक दैवदण्डका नाश करेंगे, महादेवजी तप और पराक्रमके कारण सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं, इसलिये जटाजूटवाले देवोंके

खट्वांगधारिणं रुद्रं जटिलं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४ ॥ मनसा सुविशुद्धेन दुष्करेणाल्पचेतसा । सोहमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुरघातिनम् ॥ ५ ॥ स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं कृत्तिवाससम् । विलोहितं नीलकण्ठमसह्यं दुर्निवारणम् ॥६॥ शक्रब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च । व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम् ॥ ७ ॥ बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषद्प्रियम् । धनाध्यक्षं क्षितिमुखं गौरीहृदयवल्लभम् ८ कुमारपितरं पिङ्गं गोवृषोत्तमवाहनम् । तनुवाससमत्युग्रमुमाभूषणतत्परम् ॥ ९ ॥ परं परेभ्यः परमं परं यस्मान्न-

नेत्रोंवाले), बहुरूपधारी और उमापति हो ॥ ३ ॥ श्मशानवासी, दृप्त (गर्ववाले) हो, तुम महागणोंके पति, विभु, खट्वाङ्ग धारण करनेवाले, रुद्र और जटिल हो तुम ब्रह्मचारी हो ॥ ४ ॥ ऐसे त्रिपुरघाती आपका मैं शुद्ध अन्तःकरणसे अल्प चैतन्यवाले अपने शरीरका भोग अर्पण करके पूजन करूँगा ॥ ५ ॥ देवताओंने आपकी स्तुति की है, आप स्तुत्य हैं और देवता आपकी स्तुति कर रहे हैं, तुम अमोघ (भक्तोंके संकल्पोंको सिद्ध करने वाले) हो, हाथी की खाल ओढ़ते हो, रक्तवर्ण, नीले कण्ठ वाले, असह्य, शत्रुओंसे कठिनतासे भी पीछेको न हटाये जा सकने वाले, इन्द्र और ब्रह्माके रचने वाले, परब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मचारी, व्रतधारी, तपोरत, अनन्त, तपस्वियोंकी गतिरूप, नानारूप धारण करने वाले, भूतोंके स्वामी, तीन नेत्र वाले, पार्षदोंके प्रिय, धनके स्वामी कुबेररूप, पृथ्वीके मुखरूप, गौरीके हृदयवल्लभ, स्कन्दजीके पिता, पीले शरीरवाले, उत्तम वृषभ पर बैठने वाले, दिगम्बर, अतिउग्र सूक्ष्म शरीर

श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च हयगोमायुगोमुखाः ॥ १६ ॥ ऋक्षमार्जारवदना व्याघ्रद्वीपिमुखास्तथा । काकवक्त्राः प्लवमुखाः शुकवक्त्रास्तथैव च ॥ १७ ॥ महाजगरवक्त्राश्च हंसवक्त्राः शितप्रभाः । दार्वाघाटमुखाश्चापि चाषवक्त्राश्च भारत ॥१८॥ कूर्मनक्रमुखाश्चैव शिशुमारमुखास्तथा । महामकरवक्त्राश्च तिमिवक्त्रास्तथैव च ॥ १९ ॥ हरिवक्त्राः क्रौञ्चमुखाः कपोतेभमुखास्तथा । पारावतमुखाश्चैव मद्गुवक्त्रास्तथैव च ॥ २० ॥ पाणिकर्णाः सहस्राक्षास्तथैव च महोदराः । निर्मांसा काकवक्त्राश्च श्येनवक्त्राश्च भारत ॥ २१ ॥ तथैवाशिरसो राजन् ऋक्षवक्त्राश्च भारत । प्रदीप्तनेत्रजिह्वाश्च ज्वालावर्णास्तथैव च ॥ २२ ॥ ज्वालाकेशाश्च राजेन्द्र ज्वलद्रोमचतुर्भुजाः ।

की समान ऊँचे बहुतसे गण उत्पन्न हुए, तथा कुत्ते, सूअर, और ऊँट की समान रूप वाले, घोडे और गीदड़ केसे मुख वाले, रीछ और बिलावकेसे मुखवाले, कौए केसे मुखवाले, मेंडककेसे मुख वाले, तोतेकेसे मुखवाले, बडे २ अजगरोंकेसे मुखवाले, हंसोंकेसे मुखवाले, श्वेत कान्ति वाले, खुटबढ़ईकेसे मुखवाले, चाषकेसे मुखवाले, कछुए और नाकेकेसे मुखवाले, शिशुमारकेसे मुखवाले, बडे २ मगरकेसे मुखवाले तिमि नामक मछलीकेसे मुखवाले, बन्दर, क्रौंच, कबूतर और हाथीकेसे मुखवाले, पारावतकी समान मुखवाले और मद्गु नामक मछलीकेसे मुखवाले गण प्रकट हुए और हाथोंमें कान वाले, सहस्रों नेत्रों वाले, लम्बे २ पेटवाले, मांसरहित, कौए और बाज तथा रीछकेसे मुख वाले और शिररहित, लपलपाती हुई जीभ और प्रदीप्त नेत्रोंवाले, अग्निकी

पाशोद्यतकरास्तथा लगुडपाणयः । स्थूणाहस्ताः खड्गहस्ताः सर्पोच्छ्रितकिरीटिनः ॥ ३० ॥ महासर्पांगदधराश्चित्राभरणधारिणः । रजोध्वजाः पङ्कदिग्धाः सर्वे शुक्लाम्बरस्रजः ॥ ३१ ॥ नीलाङ्गाः पिंगलांगाश्च मुण्डवक्त्रास्तथैव च । भेरीशंखमृदंगांश्च पणवानकगोमुखान् ३२ अवादयन्पारिषदाः प्रहृष्टाः कनकप्रभाः । गायमानास्तथैवान्ये नृत्यमानास्तथापरे ॥ ३३ ॥ लंघयन्तः प्लवन्तश्च वल्गन्तश्च महारथाः । धावन्तो जवना मुण्डाः पवनोद्धूतमूर्धजाः ॥ ३४ ॥ मत्ता इव महानागा विनदन्तो मुहुर्मुहुः । सुभीमा घोररूपाश्च शूलपट्टिशपाणयः ॥ ३५ ॥ नानाविरागवसनाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः । रत्नचित्रांगद-

लिये हुए और खूँटा तथा खड्ग पकडे हुए और सर्पों का मुकुट पहरनेवाले, बड़े २ सर्पोंके बाजूबन्द और विचित्र आभूषणोंको धारण करने वाले, धूलसे अटे, कीचड़ में लथड़पथड, श्वेतमालाएँ पहिरनेवाले, नीले, पीले वर्ण वाले, मस्तकमें मुखवाले, सुवर्णकी समान कान्तिवाले गण प्रसन्न हो भेरी, शंख, मृदंग, झर्झर और दुन्दुभि तथा नरसिंहोंको बजाने लगे, बहुतसे नाचने लगे, बहुत से गाने लगे ॥ २८–३३॥ कितने ही चीखने लगे, कितने ही गर्जना करने वाले मदमत्त हाथियोंकी समान बारम्बार गर्जते २ प्रचण्डवेगसे दौड़ने लगे उस समय वायु लगनेसे उनके माथेके केश उड़ रहे थे, कितनोंके शिर मुंडेथे, उनमें बहुतसे भयंकर दिखाव वाले और हाथमें शूल और पट्टिश लिये हुए थे ॥३३–३५॥ वे पार्षद अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके पुष्प और अङ्गराग शरीर पर धारण कररहे थे, तथा रत्नजटित बाजूबन्द पहिरे

श्वरेश्वराः ॥ ४१ ॥ नित्यानन्दप्रमुदिता वागीशा वीत-
मत्सराः । प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यास्यन्ति वै स्मयम् ४२
येषां विस्मयते नित्यं भगवान् कर्मभिर्हरः । मनोवाक्
कर्मभिर्युक्तैर्नित्यमाराधितैश्च यैः ॥ ४३ ॥ मनोवाक्कर्म-
भिर्भक्तान्पाति पुत्रानिवौरसान् । पिबन्तोऽसृग्वसाश्चान्ये
क्रुद्धा ब्रह्मद्विषां सदा ॥४४॥ चतुर्विधात्मकं सोमं ये पिबन्ति
च सर्वदा । श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च ॥४५॥
ये समाराध्य शूलाङ्कमवसायुज्यमागताः । यैरात्मभूतै-
र्भगवान् पार्वत्या च महेश्वरः ॥ ४६ ॥ महाभूतगणैर्भुङ्क्ते
भूतभव्यभवत्प्रभुः । नानावादित्रहसितक्ष्वेडितोत्क्रुष्ट-

वे सर्वदा आनन्दमें भरे रहते थे, वाणीके ईश्वर थे, मत्सर-शून्य थे और अठगुणे ऐश्वर्यको पाकर भी गर्व नहीं करते थे ॥ ४२ ॥ भगवान् शङ्कर उनके कर्मसे सदा विस्मित होते रहते थे और वे मन, वाणी तथा शरीरसे सदा शिवकी आराधना किया करते थे ॥ ४३ ॥ और शङ्कर भी मन वचन तथा शरीरसे सर्वदा पुत्रको समान उनकी रक्षा किया करते हैं, वे जब क्रोधमें भरजाते हैं तो सदा ब्रह्मद्वेषियोंके रुधिर और वसाको पिया करते हैं ॥ ४४ ॥ वे सदा चार प्रकारके—अन्नरूप, अमृतरूप-लताके रसरूप और चन्द्रमण्डलरूप-सोमको पीते रहते हैं वे शास्त्राभ्यास, ब्रह्मचर्य, तप और दमसे त्रिशूल-धारी शङ्करकी आराधना कर उनकी सायुज्यताको पागए (समान होगए) हैं, भूत, भविष्य और वर्तमानकाल के स्वामी भगवान् शिव तथा देवी पार्वती अपनी आत्मारूप उन महाभूतोंके साथ भोग्य वस्तुओंको भोगते हैं, वे भूत नाना प्रकारके बाजे बजा, हँसकर भुजाओं

तस्मिन्भारत कर्मणि ॥ ५३ ॥ ततः सौम्येन मन्त्रेण द्रोणपुत्रः प्रतापवान्। उपहारं महामन्युरथात्मानमुपाहरत्॥५४ तं रुद्रं रौद्रकर्माणं रौद्रैः कर्मभिरच्युतम्। अभिष्टुत्य महात्मानमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥५५॥ द्रौणिरुवाच। इममात्मानमद्याहं जातमांगिरसे कुले। अग्नौ जुहोमि भगवन् प्रतिगृह्णीष्व मां बलिम् ॥ ५६ ॥ भवद्भक्त्या महादेव परमेण समाधिना। अस्यामापदि विश्वात्मन्नुपकुर्मि तवाग्रतः ॥ ५७ ॥ त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चासि वै। गुणानां हि प्रधानानामेकत्वं त्वयि तिष्ठति ॥ ५८ ॥ सर्वभूताश्रय विभो हविर्भूतमवस्थितम्। प्रतिगृहाण मां देव यद्यशक्याः परे मया ॥ ५९ ॥

देनेको उद्यत होगया ॥ ५३ ॥ महाक्रोधी प्रतापी अश्वत्थामा सोमदेवतावाले मंत्रोंको पढ़ अपनी आत्माको अग्निमें होमनेको उद्यत होगया और रुद्र कर्म करनेवाले भगवान् रुद्र की रुद्र (भयंकर) कर्मोंसे अश्वत्थामा दोनों हाथ जोड़ इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥ ५४—५५ ॥ अश्वत्थामाने कहा कि-आंगिरसकुलमें उत्पन्न हुए अपने देहको मैं अग्निमें होमता हूँ, हे भगवन्! तुम बलिरूपसे इसे ग्रहण करो ॥ ५६ ॥ हे विश्वात्मन् महादेव! इस आपत्तिमें, परम भक्तिपूर्वक परमसमाधिसे मैं आपके सामने अपने देहका बलिदान चढ़ाता हूँ, तुम इसको ग्रहण करो॥५७॥तुम सब प्राणियोंमें रहते हो और सब प्राणी तुममें रहते हैं तथा सब मुख्य २ गुण भी तुममें ही रहते हैं ॥ ५८ ॥ हे सब प्राणियोंके आश्रयरूप व्यापकदेव! मैं यदि शत्रुओंको न जीत सकूँ तो तुम हविष्यरूपसे अर्पण किये हुए

स्मानं भगवानात्मनस्तनुम् । आविवेश ददौ चास्मै विमलं खड्गमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ अथाविष्टो भगवता भूयो जज्वाल तेजसा । वत्रवांश्चाभवद्युद्धे दैवसृष्टेन तेजसा ६७ तमदृश्यानि भूतानि रक्षांसि च समाद्रवन् । अभितः शत्रुशिविरं यान्तं साक्षादिवेश्वरम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते सौसिकपर्वणि द्रौणिकृत-
शिवार्चने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रयाते शिविरं द्रोणपुत्रे महारथे । कच्चित् कृपश्च भोजश्च भयार्तौ न न्यवर्त्तताम् १ कश्चिन्न वारितौ क्षुद्रै रक्षिभिर्नोपलक्षितौ । असह्यमिति मन्वानौ न निवृत्तौ महारथौ ॥२॥ कच्चिदुन्मथ्य शिविरं

नहीं बचेंगे ॥ ६५ ॥ भगवान् शंकर अश्वत्थामासे इस प्रकार कह उसको एक उज्ज्वल और श्रेष्ठ तलवार दे उसके शरीरमें घुस गये ॥ ६६ ॥ भगवान् शङ्करके प्रवेशसे अश्वत्थामा महातेजस्वी दीखनेलगा और देवताओंके दिये हुये तेजसे वह युद्धमें महाबली होगया ६७ साक्षात् शङ्करकी समान अश्वत्थामा जब शत्रुकी छावनी में घुसनेलगा तब भूत और राक्षस भी अदृश्य हो उसके पीछे २ छावनीमें प्रवेश करनेलगे ॥ ६८ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! महारथी अश्वत्थामा जिस समय शत्रुओंकी छावनीमें घुसा, उस समय महारथी कृपाचार्य और भोज डरकर भाग तो नहीं गये थे? ॥ १ ॥ क्षुद्र रक्षकोंने उनको देखकर लौटा तो नहीं दिया था ? वे महारथी इस कार्यको असह्य मानकर लौट तो नहीं आये ? ॥ २ ॥ कहीं शिविरको नष्ट भ्रष्ट कर सोमक

तथा मयद्धर्म्यं कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः। इत्यु-
क्त्वा प्राविशद् द्रौणिः पार्थानां शिबिरं महत् ॥ ९ ॥
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः। स प्रविश्य
महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नस्य निलयं
शनकैरभ्युपागमत्। ते तु कृत्वा महत् कर्म श्रान्ताश्च
बलवद्रणे ॥ ११ ॥ प्रसुप्ताश्चैव विध्वस्ताः समेत्य परि-
धाविताः। अथ प्रविश्य तद्वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत ॥१२॥
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत् सुसमन्तिकात्। क्षौमाव-
दाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ १३ ॥ माल्यप्रवरसं-
युक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते। तं शयानं महात्मानं विश्र-
ब्धमकुतोभयम् ॥१४॥ प्राबोधयत् पादेन शयनस्थं मही-

बाहर निकल कर न जासके, दोनोंसे ऐसा कहकर अश्व-
त्थामा निर्भयपनेसे पांडवोंकी बड़ी भारी छावनीमें
द्वारसे न जाकर बीचमेंको ही घुसगया, वह धृष्टद्युम्नके
तंबूको जानता था, इसलिये धीरे२ उसके तंबूमें पहुँच
गया, वहाँ जाकर देखा तो सब योधा रणमें बड़ाभारी
पराक्रम करनेके कारण थकगये थे, इसलिये इकट्ठे हो
निर्भयरूपसे सोरहे थे ॥ ८-१२ ॥ पास ही एक रेशमी
गद्दा बिछे हुए पलँग पर धृष्टद्युम्न सोरहा था, उसके
पलँग पर बहुमूल्य पलँगपोश बिछरहा था और उत्तम
फूल, धूप तथा सुगंधित चूर्णसे महकरहा था, अश्वत्था-
माने उसको देखा, महात्मा धृष्टद्युम्न विश्वासके साथ
निर्भय होकर उस पलँग पर लेटाहुआ निद्रा सोरहा था,
अश्वत्थामाने उसको पैरसे ठुकराकर जगाया, दुर्मद
और महात्मा धृष्टद्युम्न भी अश्वत्थामाके पैरका स्पर्श
होते ही जागउठा, उसने आँख खोली तो सामने महा-

राम परन्तपः । सुतः पाञ्चालराजस्य आक्रान्तो बलिना भृशम् ॥ २१ ॥ तस्याव्यक्तान्तु तां वाचं संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत् । आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपांसन२२ तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते । एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम् ॥ २३ ॥ मर्मस्वभ्यवधीत् क्रुद्धः पादाष्ठीलैः सुदारुणैः । तस्य वीरस्य शब्देन मार्यमाणस्य वेश्मनि ॥ २४ ॥ अबुध्यन्त महाराज स्त्रियो ये चास्य रक्षिणः । ते दृष्ट्वा धर्षयन्तन्तमतिमानुषविक्रमम् ॥२५॥ भूतमेवाध्यवस्यन्तो न स्म प्रव्याहरन् भयात् तन्तु तेनाभ्युपायेन गमयित्वा यमक्षयम् ॥ २६ ॥ अथ-

॥२०॥ इतना कहने पाया था, कि–बलवान् अश्वत्थामाने बलसे उसको ऐसा दबादिया, कि–धृष्टद्युम्नका बोलना बन्द होगया ॥ २१ ॥ अश्वत्थामा उसकी स्पष्ट समझमें न आवे ऐसी अव्यक्त बातको सुनकर बोला, कि–अरे कुलको दूषित करनेवाले ! आचार्यकी हत्या करनेवालों के लिये कोई भी लोक नहीं है ॥ २२ ॥ इसलिये अरे दुर्मती ! तुझे शस्त्रसे मारना उचित ही नहीं है, ऐसा कहकर जैसे सिंह मदमत्त हाथीके मर्मस्थानोंमें प्रहार करता है, ऐसे ही अश्वत्थामा भी क्रोधमें भरकर बड़ी ही दारुण पैरोंकी घुटेलियोंसे धृष्टद्युम्नके मर्मस्थानोंमें प्रहार करने लगा, इस समय वीर धृष्टद्युम्न चीखें मारने लगा, उनको सुनते ही उसकी स्त्रियें तथा रक्षक जाग उठे और देखते हैं तो कोई अलौकिक पराक्रमवाला पुरुष धृष्टद्युम्नको माररहा है, उसको भूत समझकर उनकी जीभ ही बँधगयी, वे कुछ भी बोल नहीं सके, अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको पशुकी समान पीटर कर मारडाला

ततस्ते योधमुख्याश्च सहसा पर्यवारयन् ॥ ३३ ॥ स तानापततः सर्वान् रुद्रास्त्रेण व्यपोथयत् । धृष्टद्युम्नञ्च हत्वासौ तांश्चैवास्य पदानुगान् ॥ ३४ ॥ अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके।तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा ॥ ३५ ॥ तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिन्दमम्। युधामन्युश्च संप्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम् ॥ ३६ ॥ गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत् । तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमताडयत् ॥ ३७ ॥ विस्फुरन्तञ्च पशुवत्तथैवैनममारयत् । तथा स वीरो हत्वा तं

को चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३३ ॥ अश्वत्थामाने अपने ऊपर चढ़कर आयेहुए उन सबोंको रुद्रास्त्र छोड़कर मारडाला, इस प्रकार धृष्टद्युम्नको तथा उसके अनुचरों को मारडालनेके अनन्तर अश्वत्थामा पासके तंबूमें घुस गया,तहाँ उसने उत्तमौजाको पलँग पर सोयाहुआ देखा, उसके कण्ठ और छातीको पैरोंसे दबाकर उसको भी बलात्कार करके पशुमारसे मारना आरम्भ करदिया, उस समय शत्रुओंको दबानेवाला उत्तमौजा चीखें मारने लगा, परन्तु अश्वत्थामाने उसको भी मारडाला उत्तमौजाको किसी राक्षसने मारडाला है, यह समझ कर युधामन्यु, गदा उठा बड़े जोरसे दौड़ता२ अश्वत्थामाके सामने आया और उसकी छातीमें गदा मारी, अश्वत्थामाने उसके सामने होकर उसको भी पकड़कर गिरादिया और पृथिवी पर खूब रगड़ा, युधामन्युने उसके हाथमेंसे छूटनेके लिये बहुतसी पछाड़ें और उछालें मारीं, परन्तु अश्वत्थामाने उसको भी पशुमारसे मारडाला, हे राजेन्द्र ! वीर अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्न

चैवासेस्त्रिधा रक्तोक्षितोऽभवत् ॥ ४३ ॥ तस्य लोहितसिक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः । अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ ४४ ॥ ये त्वजाग्रन्त कौरव्य तेऽपि शब्देन मोहिताः । निरीक्ष्यमाणा अन्योन्यं द्रौणिं दृष्ट्वा प्रविव्यथुः ॥ ४५ ॥ तद्रूपं तस्य ते दृष्ट्वा क्षत्रियाः शत्रुकर्षिणः । राक्षसं मन्यमानास्तं नयनानि न्यमीलयन् ४६ स घोररूपो व्यचरत् कालवच्छिबिरे ततः । अपश्यद् द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ ४७ ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः । धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा

मूठमेंसे रुधिरकी धार शरीर पर गिरनेसे तथा जिसके ऊपर तलवार मारीजाती थी तहाँसे रुधिरकी फुहार पड़नेके कारण, इन तीन प्रकारोंसे अश्वत्थामा रुधिरमें न्हारहा था केवल उसके अपने शरीरमेंसे ही रुधिर निकलनेके कारण वह लोहूलुहान नहीं होरहा था ॥४३॥ अश्वत्थामा रुधिरमें रँगेहुए शरीरके साथ चमकती हुई तलवारसे युद्ध कररहा था, उस समय उसका आकार महाभयानक और अलौकिक मालूम होता था ॥४४॥ हे कुरुवंशी राजन् ! जो योधा जाग उठे थे वे भी उसके शब्दको सुनकर भौचक्केसे होगये और एक दूसरेके मुखकी ओरको देख२ कर घवड़ा रहे थे ॥४५॥ शत्रुओंका संहार करनेवाले क्षत्रियोंने, अश्वत्थामाके इस भयानक रूपको देख उसको राक्षस मानकर अपनी आँखें मीचलीं ॥ ४६ ॥ भयानकरूपधारी अश्वत्थामा कालकी समान छावनीमें घूमरहा था, उसने ध्यान देकर देखा तो अभी द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा सोमक वंशके राजे बचेहुए मालूम हुए ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाकी गर्जनासे

प्रलापवान्। पुनश्चासिं समुद्यम्य द्रोणपुत्रमुपाद्रवत् ५५
सुतसोमस्य सासिं तं बाहुं छित्वा नरर्षभ। पुनरप्या-
हनत् पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत् ५६ नाकुलिस्तु शता-
नीको रथचक्रेण वीर्यवान्। दोर्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन वक्ष-
स्यैनमताडयत् ॥ ५७ ॥ अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं
द्विजस्तु सः। स विह्वलो ययौ भूमिं ततोस्यापहर-
च्छिरः ॥५८॥ श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत्।
अभिद्रुत्य ययौ द्रौणिं सव्ये सफलके भृशम् ॥ ५९ ॥ स
तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना। स हतो न्यप-
तद् भूमौ विमूढो विकृताननः ॥६०॥ तेन शब्देन वीरस्तु

अश्वत्थामाके बाण मारकर फिर हाथमें तलवार ले उसके ऊपर धावा किया ॥ ५५ ॥ हे नरसत्तम ! अश्वत्थामाने सुतसोमके उस तलवारसहित हाथको काटडाला फिर उसकी पसली पर तलवारका ऐसा हाथ मारा, कि-वह छाती फटकर पृथिवी पर गिरगया ॥५६॥ तब तुरन्त ही महापराक्रमी नकुलके पुत्र शतानीकने दोनों हाथोंसे रथका पहिया उठाकर बड़े वेगसे अश्वत्थामाकी छाती पर मारा, परन्तु शतानीकने ज्यों ही रथका पहिया मारा, कि-द्रोणपुत्रने उसके ऊपर प्रहार किया तब तो वह भी बेहाल होकर पृथिवी पर गिरपड़ा, और तुरन्त ही अश्वत्थामाने तलवारसे उसका शिर काटडाला ॥ ५७-५८ ॥ तब श्रुतकर्मा परिघ लेकर उसके ऊपरको दौड़ा और उसने अश्वत्थामाके बायें गाल पर प्रहार किया, परन्तु बहुत जोराजोरी होकर अन्तमें अश्वत्थामाने श्रुतकर्माके मुखपर बढ़िया तलवारका प्रहार किया, तब तो वह देखता ही रहगया और मुख चिरजानेसे

अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च । न्यकृन्तद्-सिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः ॥ ६८ ॥ कालीं रक्तास्य-नयनां रक्तमाल्यानुलेपनाम् । रक्ताम्बरधरामेकां पाश-हस्तां कुटुम्बिनीम् ॥ ६९ ॥ ददृशुः कालरात्रिन्ते गायमा-नामवस्थिताम् । नराश्वकुञ्जरान् पाशैर्बध्वा घोरैः प्रतस्थु-षीम् ॥७०॥ वहन्तीं विविधान् प्रेतान् पाशबद्धान् विमू-र्द्धजान् । तथैव च सदा राजन्न्यस्तशस्त्रान् महारथान्७१ स्वप्ने सुप्तान्नयन्तीं तां रात्रिष्वन्यासु मारिष । ददृशुर्यो-धमुख्यास्ते घ्नन्तं द्रौणिश्च सर्वदा ॥ ७२ ॥ यतः प्रभृति संग्रामः कुरुपाण्डवसेनयोः । ततः प्रभृति तां कन्याम-

देख कर घोर संहार करनेलगा ॥ ६७ ॥ तलवार चलाने में चतुर अश्वत्थामाने कितने ही दूसरे पुरुषोंके ऊपर धावा करके उनको भी तलवारसे काटडाला ॥ ६८ ॥ इतनेमें ही पांडवोंके योधाओंने छावनीमें लाल मुख वाली, लाल २ नेत्रोंवाली, लाल फूलोंकी माला पहरे, लाल चन्दनसे चर्चित, लाल वस्त्रोंको धारण करनेवाली और हाथमें फाँसी लिये एक कृष्णवर्णकी कालरात्रिको गातेहुए देखा, वह कालरात्रि सैनिक हाथी और घोड़े आदि सबोंको भयानक फांसियोंसे बाँधे खड़ी थी, तथा भाँति२ की फाँसियोंसे केश मुँडे प्रेतोंको बाँधकर अपने हाथमें पकड़े हुए थी,हे राजन् ! जबसे कौरव पांडवोंके युद्धका आरम्भ हुआ था तबसे ही तुम्हारे मुख्य२ योधा उस कन्याको और अश्वत्थामाको ऊपर वर्णन कियेहुए रूपमें निद्राके समय देखा करते थे, प्रत्येक रात्रिमें निद्रा के समय हथियारोंको दूर फेंक कर निद्राके वशमें हुए महारथी उस कालरात्रिको एक स्थानसे दूसरे स्थानको

तेषां तदा द्रौणिरन्तकः समपद्यत ॥ ७९ ॥ अपेतशस्त्रसन्नाहान् सन्नद्धान् पाण्डुसृञ्जयान् । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय द्रौणिः प्रहरतांवरः ॥८०॥ ततस्तच्छब्दवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः । निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च तत्र तत्र निलिल्यिरे ॥ ८१ ॥ ऊरुस्तम्भगृहीताश्च कश्मलाभिहतौजसः । विनदन्तो भृशं त्रस्ताः समासीदन् परस्परम् ८२ ततो रथं पुनर्द्रौणिरास्थितो भीमनिःस्वनम् । धनुष्पाणिः शरैरन्यान् प्रैषयद्वै यमक्षयम् ॥ ८३ ॥ पुनरुत्पततश्चापि दूरादपि नरोत्तमान् । शूरान् संपततश्चान्यान् कालरात्र्यै न्यवेदयत् ॥ ८४ ॥ तथैव स्यन्दनाग्रेण प्रमथन् स

मनुष्योंके लिये अश्वत्थामा कालकी समान होरहा था ॥ ७९ ॥ शस्त्र और कवचोंसे हीन हुए तथा कवचधारी पांडवोंके और सृञ्जयोंके सैनिकोंको प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने यमलोकमें भेजदिया ८० इस समयकी उसकी गर्जनाके शब्दसे कितने ही मनुष्य सहम कर बेहाल होगये और कितने ही निद्रासे अन्धे और अचेत होगये, वे योधा जहाँ सोरहे थे तहाँ ही छिप गये ॥ ८१ ॥ कितनोंहीकी जंघाएँ दुःखसे जड और बलरहित होगयी थीं, वे भयभीत होकर चीखें मारते हुए एक दूसरे की गोदमेंको दुबक रहे थे॥८२॥ अश्वत्थामा फिर भयानक शब्द करनेवाले रथमें बैठा और हाथमें धनुष लेकर बाणोंकी मारसे शत्रुओंको यमलोकमें भेजने लगा ॥ ८३ ॥ परन्तु इतनेमें ही दूरसे दूसरे महापुरुष उसके ऊपर फिर चढ़ आये, उन वीरोंको भी अश्वत्थामाने कालरात्रिको सौंपदिया ॥ ८४ ॥ कितनोंहीको रथके अगले भागसे कुचल डाला और शत्रुओं पर

॥ ६१ ॥ समं पर्यपतंश्चान्ये कुर्वन्तो महदाकुलम् । तत्र केचिन्नरा भीता व्यलीयन्त महीतले ॥ ६२ ॥ तथैव तान्निपतितानपिंषन् गजवाजिनः । तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने रक्षांसि पुरुषर्षभ ॥ ६३ ॥ हृष्टानि व्यनदन्नुच्चैर्मुदा भरतसत्तम। स शब्दः पूरितो राजन् भूतसंघैर्मुदा युतैः ६४ अपूरयद्दिशः सर्वा दिवञ्चातिमहास्वनः । तेषामार्त्तस्वरं श्रुत्वा वित्रस्ता गजवाजिनः ॥ ६५ ॥ मुक्ताः पर्यपतन् राजन् मृद्नन्तः शिविरे जनम् । तैस्तत्र परिधावद्भिश्च-रणोदीरितं रजः ॥ ६६ ॥ अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः । तस्मिंस्तमसि सञ्जाते प्रमूढाः शिविरे जनाः ६७ ॥ नाजानन् पितरः पुत्रान् भ्रातॄन् भ्रातर एव च । गजा गजानतिक्रम्य निर्मनुष्यान् हया हयान् ।६८।

ही डरके मारे लम्बे २ लेटकर छुप गये थे ॥६१ ॥ ६२ ॥ परन्तु पृथ्वी पर पड़े हुए वे योधा हाथी और घोड़ोंके पैरोंसे खुँदल गए थे, हे भरतवंशके महापुरुष राजन् ! इस प्रकार दारुण संग्राम होरहा था, उस समय राक्षस हर्षमें भर चीत्कार करनेलगे हे राजन् ! उनके शब्दको भूतगण हर्षमें आ और भी बढ़ानेलगे, उस बड़े भारी शब्दसे सब दिशायें और स्वर्ग भी भरगया, उस शब्दसे हाथी और घोड़े डर गए ॥ ६३–६५ ॥ और वे अपने २ खूँटोंसे छूटकर छावनीके मनुष्योंको कुचलतेहुए इधर उधर दौड़नेलगे, इससे धूल उड़ने लगी, उसके कारण छावनीमें रात्रिसे दुगुना अँधेरा होगया, अँधेरेमें सब ओरके मनुष्य घबड़ाने लगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस समय पिता पुत्रको न पहिचानते थे, भाई भाईको पहिचानमें नहीं आता था, हाथी हाथीको ही मारनेलगे, सवार रहित घोड़े घोड़ोंको मारनेलगे तब वे परस्परके प्रहारसे घायल

कृत्वा रणमध्ये सौ द्रोणपुत्रो न्यवारयत् । तत्रापरे वध्यमाना मुहुर्मुहुरचेतसः ॥ १०५ ॥ शिबिरं निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः । तांश्च निष्पततस्त्रस्तान्शिबिराज्जीवितैषिणः ॥ १०६ ॥ कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः । विस्रस्तयन्त्रकवचान्मुक्तकेशान् कृताञ्जलीन् ॥ १०७ ॥ वेपमानान् क्षितौ भीतान्नैव कांश्चिद्मुञ्चताम् । नामुच्यत तयोः कश्चिन्निष्क्रान्तः शिबिराद्बहिः ॥१०८॥ कृपश्चैव महाराज हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः । भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम्॥१०९॥त्रिषु देशेषु ददतुः शिबिरस्य हुताशनम् । ततः प्रकाशे शिबिरे खड्गेन पितृनन्दनः ॥ ११० ॥ अश्वत्थामा महाराज

उनके नाम सुनकर काटडालता था, कितने ही क्षत्रियोंको वे मारनेलगा, इसलिये वे अचेतसे होकर भयके मारे पीड़ा पातेहुए छावनीमेंसे भागने लगे ॥ १०५–१०६ ॥ परन्तु छावनीके द्वार पर कृतवर्मा और कृपाचार्य खड़े थे, वे भयभीत हुए जो योधा जीवित बचनेकी इच्छासे बाहरको निकलते थे उनको द्वार पर ही मारडालते थे ॥ १०७ ॥ यंत्र और कवचोंसे शून्य खुले केशोंवाले काँपतेहुए क्षत्रिय भयभीत होकर दोनों हाथ जोड़ते थे, परन्तु कृतवर्मा और कृपाचार्य किसीको भी छावनीके बाहर जीवित नहीं जाने देते थे, किन्तु छावनीके द्वारपर खड़े रहकर जो योधा बाहर जानेके लिये आते थे उनको मार ही डालते थे कृपाचार्य और दुष्टबुद्धि कृतवर्माने अश्वत्थामाके मनको विशेष प्रसन्न करनेवाला काम करनेके लिये उस छावनीके तीन भागोंमें आग लगादी ॥८–१०॥सब छावनीमें उजाला होगया, हे राजन् ! उसके

देशे नरानन्यांश्चिच्छेदान्यांश्च कर्णतः ॥ ११७ ॥ अंसदेशे निहत्यान्यान् काये प्रावेशयच्छिरः । एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून्नरान् ॥११८॥ तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना । किञ्चित्प्राणैश्च पुरुषैर्हतैश्चान्यैः सहस्रशः ॥ ११९ ॥ बहुना च गजाश्वेन भूरभूद्भीमदर्शना । यक्षरक्षःसमाकीर्णे रथाश्वद्विपदारुणे ॥ १२० ॥ क्रुद्धेन द्रोणपुत्रेण संछिन्नाः प्रापतन् भुवि । मातृनन्ये पितॄनन्ये पुत्रानन्ये विचुक्रुशुः ॥ १२१ ॥ केचिदूचुर्न तत् क्रुद्धैर्धार्त्तराष्ट्रैः कृतं रणे । यत्कृतं नः प्रसुप्तानां रक्षोभिः क्रूर-

पीठ काटडालीं, किन्हींके माथे काटडाले, किन्हींकी करवटें काटडालीं और किन्हींका रणमेंसे मुख फेर दिया, किन्हींको कमरके स्थानपरसे काटडाला, कितनोंहीके कान काटडाले, कितनोंहीके खमे चीरडाले और कितनोंहीके शिर उनके शरीरोंमें ही घुसेड़दिये, इसप्रकार अश्वत्थामा अनेकों पुरुषोंका संहार करताहुआ छावनीमें घूमनेलगा ॥११५-११८॥ दारुण दीखनेवाली भयावनी रात्रि अन्धकार से शोभा पानेलगी, कुछ २ जीवित तथा सर्वथा प्राणहीन हुए हजारों मनुष्यों और हाथी घोड़ोंके समूहोंसे पृथ्वी बड़ी ही भयानक दीख रही थी, यक्ष और राक्षसोंकी टोलियोंसे भरी, रथ घोड़े और हाथियोंसे भयानक दीखनेवाली छावनीमें क्रोधमें भरे अश्वत्थामाके काटेहुए मनुष्य पृथिवी पर ऊपर तले पड़े हुए थे, कोई पिताओंको और कोई पुत्रोंको चिल्लाकर पुकार रहे थे, उस समय कितने ही ऐसी बातें कररहे थे, कि-हमारे सोतेमें दारुण काम करनेवाले राक्षसोंने जैसा काम किया है, ऐसा काम तो कोपमें भरेहुए कौरवोंने भी रणमें नहीं किया

स चेष्टमानानुद्विग्नान्निरुत्साहान् सहस्रशः । न्यपातय-
न्नरान् क्रुद्धः पशून् पशुपतिर्यथा ॥१२९॥ अन्योन्यं संप-
रिष्वज्य शयानान् द्रवतोऽपरान् । संलीनान् युध्यमा-
नांश्च सर्वान् द्रौणिरपोथयत् ॥ १३० ॥ दह्यमानान् हुता-
शेन वध्यमानांश्च तेन ते । परस्परं तदा योधाननयद्यम-
सादनम् ॥ १३१ ॥ तस्या रजन्यास्त्वर्द्धेन पाण्डवानां
महद्बलम् । गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् १३२
निशाचराणां सत्त्वानां रात्रिः सा हर्षवर्द्धनी । आसीन्नर-
गजाश्वानां रौद्री क्षयकरी भृशम् ॥ १३३ ॥ तत्रादृश्यन्त
रक्षांसि पिशाचाश्च पृथग्विधाः । खादन्तो नरमांसानि
पिबन्तः शोणितानि च ॥ १३४ ॥ करालाः पिङ्गलाश्चैव

में दबगयी२८ जैसे पशुपति प्राणियोंका संहार करता है तैसे ही कोपमें भराहुआ अश्वत्थामा भी सामने चढ़कर आये और घबड़ायेहुए उत्साहहीन हजारों मनुष्योंका संहार कररहा था, आपसमें चिपट कर सोयेहुए, दौड़ते हुए, छुपेहुए तथा युद्ध करतेहुए सब मनुष्योंको अश्वत्थामाने काटडाला ॥२९-३०॥ अग्निसे जलेहुए योधाओंको भी मारकर यमपुरीमें भेजदिया ॥ ३१ ॥ हे राजेंद्र ! इसप्रकार आधीरातके भीतर अश्वत्थामाने पांडवोंकी बड़ीभारी सेनाको यमलोकमें भेजदिया ॥ ३२ ॥ वह रात रात्रिमें फिरनेवाले भूत प्रेत आदि प्राणियोंके हर्षको बढ़ानेवाली हुई, वह रात्रि मनुष्य, हाथी और घोड़ोंका बड़ाभारी संहार करनेवाली महाभयावनी होगयी थी ॥३३॥ तहाँ मनुष्योंके मांसोंको खातेहुए और रुधिरोंको पीतेहुए भाँति२ के राक्षस और पिशाच देखनेमें आये ॥ ३४ ॥वे बड़े डरावने, पीले रङ्गके, पहाड़से दाँतोंवाले,

मुदितानां वितृप्तानां तस्मिन्महति वैशसे । समेतानि बह्वन्यासन् भूतानि च जनाधिप ॥ १४२ ॥ प्रत्यूषकाले शिबिरात् प्रतिगन्तुमियेष सः । नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः ॥ १४३ ॥ पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो । दुर्गमां पदवीं गत्वा विरराज जनक्षये ॥१४४॥ युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः । यथाप्रतिज्ञं तत्कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो ॥१४५॥ दुर्गमां पदवीं गच्छन् पितुरासीद्गतज्वरः । यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि ॥१४६॥ तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभ । निष्क्रम्य शिबिरात्तस्मात्ताभ्यां

अनेकों भयानक कर्म करनेवाले राक्षस और भूत उस संहारके समय इकट्ठे होगये थे और रुधिर आदिको पीकर तृप्त हो आनन्दमें भरगये थे ॥४१-४२॥ तदनन्तर कुछ २ उषःकाल (प्रातःकाल) होने लगा, अश्वत्थामाने छावनीमेंसे बाहर निकलनेकी इच्छाकी, अश्वत्थामा मनुष्योंके रुधिरसे न्हारहा था और उसकी तलवारकी मूठ उसके हाथसे ऐसी चिपटगयी थी, कि-मानों हाथके साथ मिल ही गयी है, जैसे प्रलयकालमें अग्नि सब प्राणियोंको भस्म करके शोभा पाता है तैसे ही अश्वत्थामा भी मनुष्योंका संहार करनारूप महाकठिन मार्गको उल्लङ्घन करके शोभा पाने लगा, हे महाराज! अश्वत्थामा प्रतिज्ञाके अनुसार काम करके, न होसकनेवाला काम करके, पिताके ऋणसे मुक्त होकर सन्तापरहित हुआ, हे महाराज ! रात्रिके समय छावनीमें सब लोग सोगये थे उस समय जैसे अश्वत्थामा गुपचुप पहुँचगया था, तैसे ही छावनीमेंके सबोंका संहार करके चारों ओर

धानसौ । द्रोणपुत्रो महेष्वासस्तन्मे संशितुमर्हसि १५३
सञ्जय उवाच । तेषां नूनं भयान्नासौ कृतवान् कुरुनंदन।
असान्निध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः ॥ १५४ ॥
सात्यकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितम् । को हि तेषां
समक्षं तान् हन्यादपि मरुत्पतिः ॥ १५५ ॥ एतदीदृशकं
वृत्तं राजन् सुप्तजने विभो । ततो जनक्षयं कृत्वा पाण्ड-
वानां महात्ययम् ॥ १५६ ॥ दिष्ट्या दिष्ट्येति चान्योन्यं
समेत्योचुर्महारथाः । पर्यष्वजत तौ द्रौणिस्ताभ्यां संप्रति-
नन्दितः ॥ १५७ ॥ इदं हर्षात्तु सुमहदाददे वाक्यमुत्त-
मम् । पञ्चाला निहताः सर्वे द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥१५८॥

पुत्रके मारेजाने पर महात्मा अश्वत्थामाने ऐसा तुच्छ काम क्यों किया, यह मुझे बता ॥ ५३ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे कुरुपुत्र ! पांडव श्रीकृष्ण और सात्यकीके भयसे ही अश्वत्थामाने ऐसा काम नहीं किया था, परन्तु उनकी अनुपस्थिति (गैरहाजिरी) में उसने ऐसा भयानक काम करडाला, उनके होतेहुए तो इन्द्र भी उनको मारनेका साहस नहीं करसकता था ॥ ५४-५५ ॥ हे राजन् ! छावनीके सब मनुष्य सोरहे थे, उस समय अश्वत्थामाने पांडवोंके योधाओंका बड़ाभारी संहार कर डाला और वे तीनों महारथी एक दूसरेसे मिलकर कहनेलगे, कि-ठीक हुआ, ठीक हुआ, फिर अश्वत्थामा उन दोनोंसे आलिङ्गन करके मिला, दोनोंने अश्वत्थामा को धन्यवाद दिया ॥ ५६-५७ ॥ तदनन्तर अश्वत्थामा हर्षमें भरकर कहनेलगा, कि-द्रौपदीके सब पुत्र, सब पंचालराजे, सब सोमक राजे तथा शेष बचे हुए सब मत्स्यदेशके राजाओंको मैंने मारडाला, अब हम कृत-

कृच्छ्रात्तान् श्वापदांश्च चिखादिषून् । विचेष्टमानं मह्यां च सुभृशं गाढवेदनम् ॥ ५ ॥ तं शयानं तथा दृष्ट्वा भूमौ स्वरुधिरोक्षितम् । हतशिष्टास्त्रयो वीराः शोकार्त्ताः पर्यवारयन् ॥६॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥ तैस्त्रिभिः शोणितादिग्धैर्निःश्वसद्भिर्महारथैः ॥७॥ शुशुभे संवृतो राजा वेदी त्रिभिरिवाग्निभिः । ते तं शयानं संप्रेक्ष्य राजानमतथोचितम् ॥ ८ ॥ अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः । ततस्तु रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य हि । रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन् ॥ ९ ॥ कृप उवाच॥न दैवस्यातिभारोऽस्ति यदयं रुधिरोक्षितः॥एका-

---

आदि पशु तथा कुत्ते उसको चारोंओरसे घेररहे थे, दुर्योधन भूमिपर पड़ा २ अपनेको खाजानेको तयार हुए उन पशुओंको बड़े कष्टसे रोकरहा था, पृथिवी पर लोट रहा था और गाढ़ वेदनासे पीड़ा पारहा था ॥ ३–५ ॥ रुधिरमें न्हाये हुए दुर्योधनको पृथिवी पर पड़ा देखकर उसकी सेनामेंसे मरते २ बचेहुए अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य ये तीनों वीर पुरुष शोकसे व्याकुल हुए उसके चारों ओर खड़े थे ॥ ६ ॥ रुधिरसे न्हायेहुए तथा लंबे २ साँस छोड़तेहुए इन तीनों महारथियोंसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन, तीन अग्नियोंसे घिरी हुई वेदीकी समान शोभा पारहा था, ये तीनों महारथी राजा दुर्योधनको अनुचित रीतिसे पृथिवी पर पड़ा हुआ देखकर असह्य दुःखसे रोने लगे, इन्होंने अपने हाथसे दुर्योधनके मुखमेंको आते हुए रुधिरको पोंछ दिया, फिर रणभूमिमें पड़ेहुए राजाके लिये दयाभरे भावसे विलाप करने लगे ॥ ७–९ ॥ कृपाचार्यने कहा–ग्यारह अक्षौहिणी

मन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः । स वीर शयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः ॥१६॥उपासत द्विजाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम् । उपासते च तं ह्यद्य क्रव्यादा मांसहेतवः ॥१७॥ सञ्जय उवाच । तं शयानं कुरुश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम । अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ १८ ॥ आहुस्त्वां राजशार्दूल मुख्यं सर्वधनुष्मताम् । धनाध्यक्षोपमं युद्धे शिष्यं संकर्षणस्य च ॥ १९ ॥ कथं विवरमद्राक्षीद्भीमसेनस्तवानघ । बलिनं कृतिनं नित्यं स च पापात्मवान्नृप ॥ २० ॥ कालो नूनं महाराज लोकेस्मिन् बलवत्तरः । पश्यामो निहतं त्वाञ्च भीमसेनेन संयुगे ॥ २१ ॥

शत्रुओंके हाथसे घायल होकर पृथिवी पर सोरहा है ॥ १५ ॥ सैंकड़ों राजे डरके मारे जिसको प्रणाम किया करते थे वह राजा आज वीरशय्या पर सोरहा है, और मांसभक्षी प्राणी उसको चारों ओरसे घेररहे हैं ॥ १६ ॥ पहले ब्राह्मण धनके लिये जिसकी उपासना किया करते थे, उसकी आज मांसाहारी प्राणी मांसके लिये उपासना (सेवा) कररहे हैं ॥ १७ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! फिर राजा दुर्योधनको रणभूमि में पड़ाहुआ देखकर अश्वत्थामा करुणाजनक शब्दोंसे विलाप करनेलगा कि-॥ १८ ॥ हे राजसिंह ! मनुष्य तुम्हें सब धनुषधरियोंमें श्रेष्ठ कहते थे, युद्धमें कुबेरकी समान बली कहते थे और बलरामजीका शिष्य कहते थे तुम बलवान् और गदायुद्धमें चतुर थे, सो भी हे निर्दोष राजन् ! पापी भीमसेन तुम्हारे छिद्रको किस प्रकार जानगया ॥१९॥२०॥हे महाराज ! इस जगत्में काल ही वास्तवमें बड़ा प्रबल है, इसलिये ही हम आपको युद्धमें

गदायुद्ध इति प्रभो ॥ २७ ॥ यां गतिं क्षत्रियस्याहुः प्रशस्तां परमर्षयः । हतस्याभिमुखस्याजौ प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम् ॥ २८ ॥ दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ । हतपुत्रौ तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥२९॥ भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् । धिगस्तु कृष्णं वार्ष्णेयमर्जुनञ्चापि दुर्मतिम् ॥३०॥ धर्मज्ञमानिनौ यौ त्वां वध्यमानमुपेक्षताम् । पाण्डवाश्चापि ते सर्वे किं वक्ष्यन्ति नराधिप ॥३१॥ कथं दुर्योधनोऽस्माभिर्हत इत्यनपत्रपाः । धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः ३२

योंने क्षत्रियके लिये जो श्रेष्ठ गति कही है वही श्रेष्ठगति रणमें सामने पड़कर युद्ध करने वाले आपको मिलचुकी है ॥ २८ ॥ हे दुर्योधन! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता हूँ, किन्तु जिनके पुत्र मारेगये हैं ऐसे तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र और तुम्हारी माता गांधारीके लिये शोक करता हूँ ॥ २९ ॥ क्यों कि-वे दोनों भिखारी वनकर शोककरते हुए पृथिवी पर भटकते फिरेंगे, धिक्कार है वृष्णिवंशी श्रीकृष्णको और दुष्टात्मा अर्जुनको ॥३० ॥ धर्मात्मापने का अभिमान रखनेवाले इन दोनोंने, जब भीमसेन तुम्हें माररहा था तब उपेक्षा (लापरवाही) दिखायी थी; हे राजन् ! जब पांडवोंसे कोई बूझेगा, कि-तुमने कौरवोंको कैसे मारा तो वे सब निर्लज्ज होकर भी क्या यह कहसकेंगे, कि-हमने दुर्योधनको ऐसे मारा था ? ॥ ३१ ॥ हे गान्धारीके पुत्र ! हे महापुरुष ! तू भाग्यशाली है, कि-जो रणमें सामने पड़कर मारागया है तथा शत्रुओंके साथ धर्मयुद्ध करके मारागया है, इस लिये तू धन्यवादके योग्य है ॥ ३२ ॥ परन्तु हाय !

वयमेव त्रयो राजन् गच्छन्तं परमां गतिम् ॥ ३९ ॥ यद्वै त्वां नानुगच्छामस्तेन तप्यामहे वयम् । तत्स्वर्गवि हीनार्थाः स्मरन्तः सुकृतस्य ते ॥ ४० ॥ किन्नाम तद्भवेत् कर्म येन त्वां न व्रजाम वै । दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्याम महीमिमाम् ॥४१॥ हीनानां नस्त्वया राजन् कुतः शान्तिः कुतः सुखम् । गत्वैव तु महाराज समेत्य च महारथान् ॥ ४२ ॥ यथाज्येष्ठं यथाश्रेष्ठं पूजयेर्वचनान् मम । आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम् ॥४३॥ हतं मयाद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिपं । परिष्वजेथा राजानं बाह्लीकं सुमहारथम् ॥ ४४ ॥ सैन्धवं सोमदत्तञ्च भूरिश्रवसमेव चातथा पूर्वगतानन्यान् स्वर्गे पार्थिव-

---

पीछे २ नहीं आरहे हैं, इसका यही कारण है, कि-हमारे भाग्यमें शोक करना लिखा है, हम स्वर्गसे तथा अर्थसे दूर जापड़े हैं और तुम्हारे पुण्यका स्मरण करते २ मर जायँगे ॥ ३९ ॥ ४० हे कुरुसत्तम ! न जाने हमसे ऐसा कौनसा कर्म बनगया है, कि-जिसके कारणसे हम आपके पीछे २ नहीं जारहे हैं, अब तो हम निःसन्देह इस पृथिवी पर दुःखित होतेहुए भटकते फिरेंगे ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा वियोग होनेसे अब हमें शान्ति या सुख कहाँसे मिलेगा ? हे महाराज ! अब तुम स्वर्गमें जाकर महारथियोंसे मिलना और जैसा मैं कहता हूँ, ज्येष्ठता तथा श्रेष्ठताके अनुसार सबकी यथायोग्य पूजा करना, पहले सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यजीकी पूजा करके कहना कि-अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको मारडाला, फिर मेरे कहनेके अनुसार महारथी राजा वाह्लीकसे, सिंधुराजसे, सोमदत्तसे, भूरिश्रवासे तथा पहले ही

पांडवाः । सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥५१॥ मया च पापकर्मासौ धृष्टद्युम्नो महीपते । प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥ ५२ ॥ दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियाम् । प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ न मेऽकरोत्तद् गांगेयो न कर्णो न च ते पिता । यत्त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम् ५४ स च सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्द्धं शिखण्डिना । तेन मन्ये मघवता सममात्मानमद्य वै ॥ ५५ ॥ स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः । इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः ॥ ५६ ॥ प्राणानुपासृजद्वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन् । अपाक्रामद् दिवं पुण्यां शरीरं क्षितिमा-

में जो कुछ मनुष्य और हाथी घोड़े सोरहे थे उन सबोंको ही मैंने मारडाला ॥५१॥ हे राजन् ! मैंने रात्रिके समय पांडवोंकी छावनीमें घुसकर पापकर्म करनेवाले धृष्टद्युम्न को पशुकीसी मार देकर परलोकको भेजदिया ॥ ५२ ॥ राजा दुर्योधन मनको मीठी लगनेवाली इस बातको सुनते ही फिर होशमें आगया और कहनेलगा कि–५३ तूने कृपाचार्य और कृतवर्माके साथ मिलकर आज मेरा जो काम किया है, ऐसा काम भीष्मने, कर्णने अथवा तेरे पिताने भी नहीं किया था ॥ ५४ ॥ तूने शिखण्डीके सहित उस पांडवोंके क्षुद्र सेनापति धृष्टद्युम्नको मार डाला, इससे आज मैं अपनेको निःसन्देह इन्द्रकी समान मानता हूँ ॥ ५५ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब हमारा तुम्हारा मिलना स्वर्गमें ही होगा, ऐसा कहकर वह महामना कुरुराज चुप होगया ॥ ५६ ॥ और मित्रोंको दुःख देतेहुए उस वीरने अपने प्राण त्यागदिये, उसका पवित्र

पुत्रस्य निधनं तदा । निःश्वस्य दीर्घमुष्णञ्च ततश्चिन्ता-परोऽभवत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि दुर्योधनप्राण-त्यागे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ ऐषिकपर्व।

वैशम्पायन उवाच । तस्यां राज्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः । शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम् ॥ १ ॥ सूत उवाच । द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह । प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके ॥ २ ॥ कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च । अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि ॥ ३ ॥ एतैर्नरगजाश्वानां प्रासशक्तिपरश्वधैः । सहस्राणि निकृन्त-

---

मरणकी बातको सुनकर राजा धृतराष्ट्रने लंबा और गरम साँस छोड़ा तथा वह बड़ी चिन्तामें पड़गया ॥ ६३ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजा जनमेजय ! उस रातके बीतजाने पर प्रातःकाल ही धृष्टद्युम्नके सारथीने धर्मराजके पास जाकर, रात्रिके समय छावनीमें सोते हुओंका जो संहार कियागया था, उसका सब समाचार सुनाया ॥ १ ॥ सारथीने कहा, कि—हे राजा युधिष्ठिर ! कल रात आपकी छावनीमें द्रौपदीके पुत्र तथा राजा द्रुपदके पुत्र विश्वासके साथ निश्चिन्त सोरहे थे, उस समय वे मारडाले गये ॥ २ ॥ क्रूर कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य और पापी अश्वत्थामाने रात तुम्हारी छावनीका सर्वनाश करडाला ॥ ३ ॥ उन्होंने प्रास, शक्ति और फरसोंसे हजारों मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको

दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः। जीयमाना जय-
न्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः ॥ १० ॥ हत्वा भ्रातॄन् वय-
स्यांश्च पितॄन् पुत्रान् सुहृद्गणान्। बन्धूनमात्यान् पौत्रांश्च
जित्वा सर्वान् जिता वयम् ॥ ११ ॥ अनर्थो ह्यर्थसङ्काश-
स्तथानर्थोऽर्थदर्शनः। जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात् परा-
जयः ॥ १२ ॥ यज्जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः ॥ १३ ॥ येषा-
मर्थाय पापं स्याद्विजयस्य सुहृद्वधैः निर्जितैरप्रमत्तैर्हि
विजिता जितकाशिनः ॥ १४ ॥ कर्णिनालीकदंष्ट्रस्य खड्ग-

जीत लेने पर भी हम पीछेसे शत्रुओंके शिकार होगये, संसारके पदार्थोंकी क्या गति होनेवाली है, इसको दिव्य दृष्टिवाले भी नहीं जानसकते, कितने ही शत्रुओंसे हारजाने पर भी फिर उनको जीत लेते हैं, देखो हमने शत्रुओंको हरादिया था, फिर भी उन्होंने हमें जीत लिया ॥ १० ॥ पिता, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्र, स्नेही बान्धव और मंत्रियोंका संहार करके विजय पाजाने पर भी अन्तमें हम हार ही गये ॥ ११ ॥ दैववश अनर्थ अर्थसा और अर्थ अनर्थसा मालूम होने लगता है ऐसे ही मेरी यह विजय भी पराजयसी ही होगयी और शत्रुओंकी पराजय विजय हुई है, परन्तु तो भी वह पराजय ही है ॥ १२ ॥ जिस दुष्टात्मा पुरुषको विजय मिलजाने पर दुःखी पुरुषकी समान पीछेसे सन्ताप करना पड़ता है वह शत्रुओंसे हाराहुआ मनुष्य अपनी विजय कैसे मानसकता है ? ॥१३॥ हाय! हमने जिनके लिये बन्धु बांधवोंका विनाश करके पाप बटोरा, जीते हुए शत्रुओंने फिर सावधान होकर हमारे उन विजयसे

प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात् त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति।
१६ध्वजोत्तमाग्रोच्छ्रितधूम्रकेतुं शरार्चिषं कोपमहासमीरम्। महाधनुर्ज्यातलनेमिघोषं तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम् ॥ २० ॥ महाचमूकक्षवाभिपन्नं महाहवे भीष्ममयाग्निदाहम्। ये सेहुरात्तायुधतीक्ष्णवेगं ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ २१ ॥ न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा। पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून् सर्वान्महेन्द्रं सुखमेधमानम् ॥ २२ ॥ इन्द्रोपमान् पार्थिवपुत्रपौत्रान् पश्याविशेषेण हतान् प्रमादात्। तीर्त्वा

बड़ी हानि करनेवाला है, प्रमादी पुरुषको कार्यसिद्धियें चारों ओरसे छोड़जाती हैं और अनर्थ आकर दबालेते हैं ॥१६॥ उत्तम ध्वजाका अग्रभाग जिसका धूमकेतु था, जिसमें बाण ज्वालाकी समान दीखते थे,जिसमें क्रोधरूप आँधी चलरही थी, बड़ेभारी धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली और रथके पहियोंके शब्दोंसे जो गरज रहाथा, जिसमें कवच और अनेकों प्रकारके शस्त्रोंका होम होरहा था, बड़ीभारी सेनारूप तृणकाठके लिये जो दावानलकी समान था,ऐसे आयुधरूप तीक्ष्ण वेगको धारण करनेवाले भीष्मरूप अग्निके दाहको भी जिन क्षत्रियोंने युद्धमें सहलिया था, वे सब राजपुत्र हमारे ही प्रमादसे मारे गये ॥ २०-२१ ॥ प्रमादी मनुष्य विद्या, तप, लक्ष्मी और बड़ेभारी यशको नहीं पासकता, देखो इन्द्र सावधान रहता है तो शत्रुओंका नाश करके सुखको भोगता है ।२२।धनी वैश्य (व्यापारी) समुद्रके पार होकर पीछेसे जैसे प्रमादवश छोटीसी नदीमें डूबजायँ तैसे ही हमारे प्रमादसे इन्द्रकी समान राजाओंके पुत्र पौत्र देखो सहजमें ही

स्तत् परिगृह्य वाक्यं धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः । ययौ रथेनालयमाशु देव्याः पञ्चालराजस्य च यत्र दाराः २८ प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः । रोरूयमाणः प्रययौ सुतानामायोधनं भूतगणानुकीर्णम् ॥ २९ ॥ स तत् प्रविश्याशिवमुग्ररूपं ददर्श पुत्रान् सुहृदः सखींश्च । भूमौ शयानान् रुधिरार्द्रगात्रान् विभिन्नदेहान् प्रहृतोत्तमांगान् ॥ ३० ॥ स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्त्तरूपो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः । उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः ३१

इतिश्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरशिबिरप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

साथ यहाँ बुलाला ॥२७॥ नकुल धर्मके समान धर्मराजकी आज्ञाको धर्मानुसार स्वीकार करके रथ पर सवार हुआ और तुरन्त द्रौपदीके महलमें, जहाँ पञ्चालराजकी रानियें भी थीं तहाँ गया॥२८॥ नकुलको द्रौपदीके पास भेजनेके अनन्तर शोकसे दुःखी हुए राजा युधिष्ठिर अपने स्नेहियोंके साथ रोतेर भूतगणोंसे भरीहुई अपने पुत्रोंकी रणभूमिमें, जहाँ मरेहुए पुत्र पड़े थे तहाँ जापहुँचे ॥ २९ ॥ और भयानक दीखती हुई अमङ्गलरूप छावनीमें पहुँचकर देखा तो पुत्रोंको, स्नेहियोंको और मित्रोंको पृथिवी पर पड़ा पाया, उनके शरीर और शिर कटेहुए थे तथा लोहूमें लथड़पथड़ होरहे थे ॥३०॥ उनको देखकर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ और कुरुवंशमें अग्रगण्य राजा युधिष्ठिर बहुत ही खिन्न हुए और डीख फोड़कर रोने लगे तथा अपनी मण्डलीके सहित मूर्छित होकर पृथिवी पर ढहपड़े ॥३१॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

सहसा शोककर्षितम् । फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान् ॥ ७ ॥ ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरम्भी सत्यविक्रमः । बाहुभ्यां परिजग्राह समुत्पत्य वृकोदरः ॥ ८ ॥ सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी । रुदती पाण्डवं कृष्णा सा हि भारतमब्रवीत् ॥९॥ दिष्ट्या राजन्नवाप्येमामखिलां भोक्ष्यसे महीम् । आत्मजान् क्षत्रधर्मेण सम्प्रदाय यमाय वै ॥ १० ॥ दिष्ट्या त्वं पार्थ कुशली मत्तमातंगगामिनम् । अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां सौभद्रं न स्मरिष्यसि ॥ ११ ॥ आत्मजान् क्षत्रधर्मेण श्रुत्वा शूरान्निपातितान् । उपप्लव्ये मया सार्द्धं दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि ॥ १२ ॥ प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा

पंखडीकी समान नेत्रवाली द्रौपदीका मुख एकायकी फीका पड़गया और वह शोकातुर होकर पृथिवी पर गिरपड़ी ॥६-७॥ द्रौपदीको पृथिवी पर गिरी हुई देखकर, आवेशमें आयेहुए सत्यपराक्रमी भीमने दोनों भुजाओं से द्रौपदीको पृथिवीपरसे उठाकर खड़ा किया ॥ ८ ॥ और उसको धीरज बँधाया, तदनन्तर द्रौपदी रोते २ राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगी, कि- ९ हे राजन् ! तुमने क्षत्रियके धर्मानुसार अपने पुत्र यमराजको देकर सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य पालिया, यह बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया, अब तुम इस राज्यको सुखसे भोगना ! १० हे राजाजी ! तुम कुशलपूर्वक हो, यही आनन्दकी बात है ! अब सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य पानेके अनन्तर मदमत्त हाथीकी समान चालवाले अभिमन्युको को तो तुम याद करोगे नहीं ! ॥ ११ ॥ तुम अपने वीर पुत्रोंको क्षत्रियधर्मका पालन करतेमें मरणको प्राप्त हुए

कस्थाणि वनं दुर्गं दूरं द्रौणिरितो गतः । तस्य त्वं पातनं संख्ये कथं ज्ञास्यसि शोभने ॥ १९ ॥ द्रौपद्युवाच । द्रोणपुत्रस्य सहजो मणिः शिरसि मे श्रुतः । निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतम् ॥ २० ॥ राजन् शिरसि ते कृत्वा जीवेयमिति मे मतिः । इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा राजानं चारुदर्शना ॥ २१ ॥ भीमसेनमथाभ्येत्य परमं वाक्यमब्रवीत् । त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ २२ ॥ जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव । न हि ते विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन २३ श्रुतं तत् सर्वलोकेषु परमव्यसने यथा । द्वीपोऽभूस्त्वं हि पार्थानां

शोभा नहीं देता ॥ १८ ॥ अश्वत्थामा तो अब यहाँसे बहुत दूर निकल गया होगा, इसलिये हे सुन्दरी ! हम युद्धमें उसको मार भी डालेंगे तो यह तुम्हें कैसे मालूम होगा ?॥१९॥द्रौपदीने कहा, कि-हे राजाजी ! मैंने सुना है, कि-अश्वत्थामाके मस्तक पर उसके जन्मके साथ ही उत्पन्न हुआ मणि है, तुम उस पापीको युद्धमें मारकर उसकी मणि ले आओ, उसको देखकर मैं उसका मरना जानजाऊँगी ॥ २० ॥ हे राजाजी ! मेरी यह इच्छा है, कि—वह मणि आपके मस्तक पर विराजमान हो तब ही मैं जीऊँगी, सुन्दर दीखनेवाली द्रौपदी राजा युधिष्ठिर से ऐसा कहकर फिर भीमके पास आयी और उससे उत्तम वचन कहा, कि—हे भीम ! तुम क्षत्रियके धर्मको याद करके मेरी रक्षा करो ॥२१-२२॥ जैसे इन्द्रने शम्बर दैत्य को मारा था तैसे ही तुम उस पापी अश्वत्थामाको मारो, इस संसारमें तुम्हारी समान पराक्रमी कोई पुरुष नहीं है ॥ २३ ॥ यह बात सब ही लोकोंमें प्रसिद्धरूप

ते हयाः पुरुषव्याघ्र चोदिता वातरंहसः ॥ ३० ॥ वेगेन त्वरिता जग्मुर्हरयः शीघ्रगामिनः । शिबिरात् स्वाद् गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौणिवधार्थभीमगमने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच । तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे यदूनामृषभस्ततः । अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१॥ एष पाण्डव ते भ्राता पुत्रशोकपरायणः । जिघांसुर्द्रौणिमाक्रन्दे एक एवाभिधावति ॥२॥ भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ । तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्युपपद्यसे ॥ ३ ॥ यत्तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरञ्जयः । अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि ॥४॥ तन्महात्मा

लगे, पराक्रमी भीमसेन अपनी छावनीमेंसे निकल कर अश्वत्थामाके रथके चिन्होंको देखता हुआ उस मार्गसे ही शीघ्रताके साथ उसका पीछा करने लगा ॥३०॥३१॥

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! जब किसीसे न दबनेवाले भीमसेनने अश्वत्थामाके ऊपर चढ़ाई करदी, उस समय यदुओंमें श्रेष्ठ कमलनयन श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा, कि—॥ १ ॥ यह पुत्रोंके शोकमें डूबा हुआ तुम्हारा भाई भीम, अश्वत्थामाको मारनेकी इच्छासे अकेला ही संग्राममें चढ़ाई कररहा है ॥ २ ॥ हे भरतसत्तम ! यह भीम तुम्हे सब भाइयोंसे अधिक प्यारा है, परंतु वह इस समय सङ्कटमें आपड़ा है, फिर तुम उसके पीछे सहायता करनेको क्यों नहीं जाते ? ॥ ३ ॥ शत्रुके नगरोंको जीतनेवाले द्रोणा-

कल्याणैः शोकात् पर्यचरन्महीम् ॥ १० ॥ ततस्तदा कुरुश्रेष्ठ वनस्थे त्वयि भारत । अवसद् द्वारकामेत्य वृष्णिभिः परमार्चितः ॥ ११ ॥ स कदाचित् समुद्रान्ते वसन् द्वारवतीमनु । एक एकं समागम्य मामुवाच हसन्निव ॥ १२ ॥ यत्तदुग्रं तपः कृत्वा कृष्ण सत्यपराक्रमः । अगस्त्याद्भारताचार्यः प्रत्यपद्यत मे पिता ॥ १३ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम देवगन्धर्वपूजितम् । तदद्य मयि दाशार्ह यथा पितरि मे तथा ॥ १४ ॥ अस्मत्तस्तदुपादाय दिव्यमस्त्रं यदूत्तम । स चाप्यस्त्रं प्रयच्छ त्वं चक्रं रिपुहणं रणे ॥ १५ ॥ स राजन् प्रीयमाणेन मयाप्युक्तः कृताञ्जलिः । याचमानः प्रयत्नेन मत्तोऽस्त्रं भरतर्षभ ॥ १६ ॥ देवदानवग-

पृथिवी पर विचरने लगा ॥ १० ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! जब तुम वनमें थे तब वह घूमता२ द्वारकामें आया और वृष्णियोंसे उत्तम सत्कार पाकर वहाँ ही रहनेलगा ॥११॥ वह समुद्रके किनारे बसी हुई द्वारकापुरीमें रहता हुआ एक दिन अकेला ही अकेलेमें मेरे पास आकर कहनेलगा, कि-॥ १२ ॥ मेरे सत्यपराक्रमी पिता भारताचार्यने उग्र तपस्या करके अगस्त्य जीसे देवता और गन्धर्वोंमें पूजा पाया ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र प्राप्त किया था, हे दाशार्हवंशी कृष्ण ! वह अस्त्र जैसे मेरे पिताके पास है वैसे ही इस समय मेरे पास भी है ॥ १३-१४ ॥ इसलिये हे यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! तुम मुझसे उस दिव्य अस्त्रको लेलो और रणमें शत्रुओंका नाश करनेवाला अपना चक्र मुझे देदो ॥१५॥ मैंने प्रसन्न होतेहुए दोनों हाथ जोड़कर, मुझसे उद्योगके साथ चक्रकी याचना करनेवाले अश्वत्थामासे कहा, कि-॥१६॥

न्नेवमिदं ततः तदा । सर्वबलेनापि यदैनं न शशाक ह २३
उद्धन्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः । कृत्वा यत्नं
परिश्रान्तः संन्यवर्त्तत भारत ॥ २४ ॥ निवृत्तमनसं
तस्मादभिप्रायाद्विचेतसम् । अहमामन्त्र्य सम्विग्नम-
श्वत्थामानमब्रुवम् ॥ २५ ॥ यः स देवमनुष्येषु प्रमाणं
परमं गतः । गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वः कपिप्रवरकेतनः २६
यः साक्षाद्देवदेवेशं शितिकण्ठमुमापतिम् । द्वन्द्वयुद्धे
पराजिष्णुस्तोषयामास शङ्करम् ॥ २७ ॥ यस्मात् प्रिय-
तरो नास्ति ममान्यः पुरुषो भुवि । नादेयं यस्य मे किञ्चि-
दपि दाराः सुतास्तथा ॥ २८ ॥ तेनापि सुहृदा ब्रह्मन्

चक्रको वहाँ उठानेका यत्न करने लगा, परन्तु वह उसको उसके स्थानपरसे उठा न सका तथा उसको वहाँसे घसीट भी नहीं सका तब तो अश्वत्थामा अपने चित्तमें बड़ा ही दुःखी हुआ और उद्योग करते२ थकजानेके कारण हे भरतवंशी राजन् ! वह वहाँसे हट आया ॥ २३-२४ ॥ जब अश्वत्थामा चक्रको पानेकी आशा छोड़कर अपने मनमें उदास होगया तब मैंने उसको बुलाकर कहा, कि- ॥ २५ ॥ जो पुरुष मनुष्योंमें परमप्रमाणरूप माना जाता है, गांडीव जिसका धनुष है, जिसके घोड़े सफेद हैं, जिसकी ध्वजामें हनुमान् विराजमान हैं. ॥ २६ ॥ जिसने साक्षात् देवाधिदेव नीलकण्ठ, उमापति शङ्करको द्वन्द्वयुद्धमें हराकर प्रसन्न किया है ॥ २७ ॥ और मुझे पृथिवी पर जिसकी अपेक्षा दूसरा कोई पुरुष प्यारा नहीं है और मेरी कोई भी वस्तु, यहाँ तक कि-स्त्री और पुत्र भी ऐसे नहीं हैं कि-जिनको मैं उसके अर्पण न करसकूँ ॥ २८ ॥ उस उत्तम कर्म करनेवाले मेरे स्नेही अर्जुनने

तात युयुत्ससे ॥ ३५ ॥ एवमुक्तो मया द्रौणिर्मामिदं प्रत्युवाच ह । प्रयुज्य भवते पूजां योत्स्ये कृष्ण त्वयेत्युत ॥ ३६ ॥ प्रार्थितं ते मया चक्रं देवदानवपूजितम् । अजेयः स्यामिति विभो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥ त्वत्तोऽहं दुर्लभं काममनवाप्यैव केशव । प्रतियास्यामि गोविंद शिवेनाभिवदस्व माम् ॥३८॥ एतत् सुभीमं भीमानामृषभेण त्वया धृतम् । चक्रमप्रतिचक्रेण भुवि नान्योऽभिपद्यते ॥ ३९ ॥ एतावदुक्त्वा द्रौणिर्मां युग्यानश्वान् धनानि च। आदायोपययौ काले रत्नानि विविधानि च४०

पुत्र है, सब यादव तेरा आदर करते हैं, हे महारथ ! हे तात ! तू बता तो सही, इस चक्रको लेकर तू किसके साथ युद्ध करना चाहता है ? ॥ ३५ ॥ मैंने अश्वत्थामासे ऐसा कहा, तब उसने मुझे उत्तर दिया, कि–हे कृष्ण ! मैं तुम्हारी पूजा करके तुम्हारे ही साथ युद्ध करूँगा ॥३६॥ हे विभो ! मैं देवता और दानवोंमें पूजित आपके चक्रको इसलिये माँगता हूँ, कि–मुझे कोई जीत न सके, यह बात मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ३७ ॥ हे केशव ! मैं आपसे अपनी अतिदुर्लभ कामनाको बिना पाये ही लौट जाऊँगा ! परन्तु हे केशव ! आप इतना कहदीजिये कि–'तेरा कल्याणहो' बस मैं चलाजाऊँगा ॥ ३८ ॥ जिसकी बराबरी करनेवाला कोई शस्त्र नहीं है ऐसे इस भयानक और भय देनेवले चक्रको आप महात्मा ही धारण करते हैं, इस पृथिवी पर इसको धारण करसकने वाला आपके सिवाय और कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ ऐसा मुझसे कहकर वह रथमें जोड़ने योग्य उत्तम घोड़े, धन तथा भाँति २ के रत्न लेकर अपने घरको चलागया ।४०।

स्थितस्तस्यां प्रभामण्डलरश्मिवान्। तस्य सत्यवतः केतुर्भुजगारिरदृश्यत ॥ ५ ॥ अथारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्वधनुष्मताम्। अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥ अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ। रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ॥७॥ तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम्। प्रतोदेन जवोपेतान् परमाश्वानचोदयत् ॥ ८ ॥ ते हयाः सहसोत्पेतुर्गृहीत्वा स्यन्दनोत्तमम्। आस्थितं पाण्डवेयाभ्यां यदूनामृषभेण च ॥ ९ ॥ वहतां शार्ङ्गधन्वानमश्वानां शीघ्रगामिनाम्। प्रादुरासीन्महान् शब्दः पक्षिणां पततामिव ॥ १० ॥ ते समाच्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरत-

---

समान दीखरही थी ॥ ४ ॥ उस ध्वजदण्डके ऊपर प्रभाके मण्डलकी किरणोंवाले सर्पोंके शत्रु तथा भगवान्के केतुरूप गरुड़ भगवान् विराजमान दीखरहे थे ॥ ५ ॥ ऐसे रथके ऊपर सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीके सवार होजाने पर सत्यकर्म करनेवाला अर्जुन और कुरुराज युधिष्ठिर भी सवार होगये ॥ ६ ॥ जैसे इन्द्रके पीछे बैठे हुए दो अश्विनीकुमार शोभा पाते हैं, तैसे ही श्रीकृष्णके पीछे बैठेहुए महात्मा अर्जुन और युधिष्ठिर शोभा पारहे थे ॥ ७ ॥ दाशार्ह श्रीकृष्ण, लोकोंमें प्रतिष्ठा पायेहुए रथमें उन दोनोंको बैठालकर वेगवान् बड़े२ घोड़ोंको चाबुकसे हाँकने लगे ॥ ८ ॥ घोड़े भी अर्जुन, युधिष्ठिर और यादवोंके बड़े श्रीकृष्ण जिसमें सवार थे उस उत्तम रथको लेकर एकसाथ उड़नेलगे ॥ ९ ॥ और जिस समय घोड़े शीघ्रताकी चालसे श्रीकृष्णको लेजा रहे थे उस समय उड़तेहुए पक्षियोंकेसा महान् शब्द

प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ १६ ॥ भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम् ॥ १७ ॥ भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ।व्यथितात्माऽभवद् द्रौणिः प्राप्तञ्चेदममन्यत १८ स तद्दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिंतयत् । जग्राह च स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना ॥ १९ ॥ स तामापदमासाद्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् । अमृष्यमाणस्ताञ्छूरान् दिव्यायुधधरान् स्थितान् । अपाण्डवायेति रुषा व्यसृजद्दारुणं वचः । इत्युक्त्वा राजशार्दूल द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २१ ॥ सर्वलोकप्रमोहार्थं तदस्त्रं प्रमुमोच ह ।

उसको देखते ही महाबाहु भीमसेन धनुष और बाण लेकर उसके सामनेको दौड़ा और कहनेलगा, कि—"अरे ओ ! खड़ा रह, खड़ा रह" उधर धनुष और बाण लिये भीमसेनको चढ़कर आताहुआ देखते ही और उसके पीछे कृष्णके रथमें बैठेहुए अर्जुन और युधिष्ठिरको देखते ही,अश्वत्थामाके मनमें डर बैठगया,उस समय उसने विचार करके यह निश्चय किया,कि—यही समय ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करनेके योग्य है ॥१५—१८॥ और ब्रह्मास्त्रको छोड़नेके लिये प्रबल मनवाले अश्वत्थामाने बायें हाथसे दर्भकी तुली लेकर मन ही मनमें दिव्य और महान् ब्रह्मास्त्रका ध्यान किया ॥ १९ ॥ हे राजसिंह ! उसके सामने दिव्य अस्त्र लियेहुए शूरवीर खड़े थे, उनके प्रहार को अश्वत्थामा सह नहीं सकता था, ऐसा मनमें आनेसे तथा स्वयं बड़ी भारी विपत्तिमें पड़जानेके कारण प्रतापी अश्वत्थामाने 'पृथिवी पाण्डवोंसे रहित हो"ऐसा दारुण वाक्य कहकर सब लोकोंको मोहमें डालनेके लिये

पूर्वमाचार्यपुत्राय ततोऽनन्तरमात्मने । भ्रातृभ्यश्चैव सर्वेभ्यः स्वस्तीत्युक्त्वा परन्तपः ॥५॥ देवताभ्यो नमस्कृत्य गुरुभ्यश्चैव सर्वशः । उत्ससर्ज शिवं ध्यायन्नस्त्रमस्त्रेण शाम्यताम् ॥ ६ ॥ ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्वना । प्रजज्वाल महार्चिष्मद्युगान्तानलसन्निभम् ७ तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः । प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम् ॥ ८ ॥ निर्घाता बहवश्चासन् पेतुरुल्काः सहस्रशः । महद्भयञ्च भूतानां सर्वेषां समजायत ॥९॥ सशब्दमभवद् व्योम ज्वालामालाकुलं भृशम्। चचाल च मही कृत्स्ना सपर्वतवनद्रुमा ॥१०॥ ते त्वस्त्र-

---

से नीचे उतर पड़ा, और 'पहले आचार्यके पुत्रका, और फिर अपना तथा अपने सब भाइयोंका मङ्गल हो' ऐसा कहकर देवता और सब गुरुओंको प्रणाम करके तथा पीछेसे 'इस अस्त्रसे शत्रुका अस्त्र शान्त हो' ऐसा मनमें ध्यान धरकर शङ्करका स्मरण किया और फिर जगत्के कल्याणकी इच्छासे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४–६ ॥ अर्जुनने एक साथ ज्योंही ब्रह्मास्त्रको छोड़ा, कि–वह बड़ीभारी लपटोंवाले प्रलय कालके अग्निकी समान धक धक करके जलनेलगा ॥ ७ ॥ इसप्रकार ही तीक्ष्ण तेजस्वी अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र भी तेजके मण्डलसे घिरकर बड़ी२ ज्वालाओंके साथ धक २ करता हुआ जलने लगा ॥ ८॥ धड़ाम २ बड़े२ शब्द होनेलगे, हजारों उल्का गिरने लगीं सब प्राणी बड़े भयमें आपड़े ॥ ९ ॥ उस ज्वालाओंके समूहसे परिपूर्ण अस्त्रसे आकाशमें बड़ा कोलाहल होनेलगा, पर्वत–वन और वृक्षों सहित सब पृथिवी काँपनेलगी ॥ १० ॥ वे दोनों अस्त्र स्वर्गादि सब

रथाः । नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथञ्चन । किमिदं साहसं वीरौ कृतवन्तौ महात्ययम् ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि अर्जुनास्त्रत्यागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच। दृष्ट्वैव नरशार्दूल तावग्निसमतेजसौ संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ १ ॥ उवाच भरतश्रेष्ठस्तावृषी प्राञ्जलिस्तदा । प्रयुक्तमस्त्रेमस्त्रेण शाम्यतामिति वै मया ॥२॥ संहृते परमास्त्रेऽस्मिन् सर्वानस्मानशेषतः । पापकर्मा ध्रुवं द्रौणिः प्रधक्ष्यत्यस्त्रतेजसा । यदत्र हितमस्माकं लोकानां चैव सर्वथा । भवंतौ देवसङ्काशौ तथा सम्मन्तुमर्हथः ॥४॥ इत्युक्त्वा सञ्जहारास्त्रं पुनरेव धनञ्जयः । संहारो दुष्करस्तस्य देवैरपि

तो भी तुम दोनों वीर पुरुषोंने ऐसा अनिष्टकारी साहस क्यों किया? ॥१६॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त १४

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! अग्नि की समान तेजस्वी उन दोनों ऋषियोंको (दोनों अस्त्रोंके मध्यमें खड़े हुए) देखकर अर्जुनने एकसाथ अपने दिव्य अस्त्रको पीछेको खेंचलेनेका निश्चय करके हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दोनों हाथ जोड़ेहुए उसी समय उन दोनों ऋषियोंसे कहा, कि–मैंने 'शत्रुके अस्त्रको शान्त करदेय' केवल यही सङ्कल्प करके अपने अस्त्रको छोड़ा था । १–२ । परन्तु इस अपने अस्त्रको यदि मैं पीछेको लौटलूँगा तो पाप कर्म करनेवाला अश्वत्थामा अवश्य ही ब्रह्मास्त्रके तेजसे हमें जलाडालेगा ॥ ३ ॥ आप दोनों देवताओंकी समान हैं, इसलिये जिसप्रकार हमारा और लोकोंका सर्वथा हित हो वही काम आप दोनोंको करना चाहिये ४

स्थितौ। न शशाक पुनर्घोरमस्त्रं संहर्तु मोजसा॥ ११ ॥ अशक्तः प्रतिसंहारे परमास्त्रस्य संयुगे। द्रौणिर्दीनमना राजन् द्वैपायनमभाषत॥ १२ ॥ उत्तमव्यसनार्त्तेन प्राणत्राणमभीप्सुना। मयैतदस्त्रमुत्सृष्टं भीमसेनभयान्मुने १३ अधर्मश्च कृतोऽनेन धार्त्तराष्ट्रं जिघांसता। मिथ्याचारेण भगवन् भीमसेनेन संयुगे ॥ १४ ॥ अतः सृष्टमिदं ब्रह्मन् मयास्त्रमकृतात्मना। तस्य भूयोऽथ संहारं कर्तुं नाहमिहोत्सहे ॥ १५ ॥ विसृष्टं हि मया दिव्यमेतदस्त्रं दुरासदम्। अपाण्डवायेति मुने वह्नितेजोऽनुमन्त्र्य वै। १६। तदिदं पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम्। अद्य पांडु-

खड़ेहुए देखकर ब्रह्मास्त्र तो पीछेको लौटानेका उद्योग किया, परन्तु अपने बलसे वह उस भयानक ब्रह्मास्त्रको पीछेको नहीं लौटासका ॥ ११ ॥ हे राजन्! जब अश्वत्थामा उस ब्रह्मास्त्रको पीछेको नहीं लौटासका, तब मनमें उदास होकर वेदव्यासजीसे कहने लगा, कि॥१२॥ हे मुने! जब मैं बड़ी विपत्तिमें आपड़ा तब मैंने अपने प्राणोंकी रक्षा करनेकी इच्छासे और भीमसेनसे भयभीत होकर इस अस्त्रका प्रयोग किया है ॥ १३ ॥ और हे भगवन्! इस मिथ्या आचरणवाले भीमसेनने रणमें दुर्योधनको मारकर अधर्म किया है॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन्! इसलिये ही मैंने जितेन्द्रिय न होतेहुए भी इस अस्त्रका प्रयोग किया है और अब मैं इस अस्त्रका उपसंहार करनेका साहस नहीं करसकता ॥ १५ ॥ हे मुने! मैंने इस दिव्य और दुर्लभ अस्त्रको अग्निके तेजसे अभिमंत्रित करके पांडवोंका नाश करनेके लिये छोड़ा है ॥१६॥ इसलिये पाण्डवोंका नाश करनेको चढ़ाया हुआ यह

वध्यते । समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥२३॥
एतदर्थं महाबाहुः शक्तिमानपि पाण्डवः । न विहन्या-
त्तदस्त्रं तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ २४ ॥ पाण्डवास्त्वञ्च
राष्ट्रञ्च सदा संरक्ष्यमेव हि । तस्मात् संहर दिव्यं त्वम-
स्त्रमेतन्महाभुज ॥ २५ ॥ अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः
सन्तु निरामयाः । न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमि-
च्छति॥२६॥मणिञ्चैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति ।
एतदादाय ते प्राणान् प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः ॥ २७ ॥
द्रौणिरुवाच । पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत्कौरवं
धनम् । अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥२८॥
यमाबध्य भयं नास्ति शस्त्रव्याधिक्षुधाश्रयम् । देवेभ्यो
दानवेभ्यो वा नागेभ्यो वा कथञ्चन२९न च रक्षोगणभयं

देशमें बारह वर्षतक मेघ नहीं बरसते हैं ॥ २३ ॥ इस
लिये ही शक्तिमान् होतेहुए भी महाबाहु अर्जुनने प्रजा
का हित करनेकी इच्छासे तेरे ब्रह्मास्त्रका नाश नहीं किया
है ॥ २४ ॥ पाण्डवोंकी रक्षा होनी चाहिये, और तेरी
भी रक्षा होनी चाहिये तथा देशकी भी सदा रक्षा होनी
चाहिये, इसलिये हे महाबाहु अश्वत्थामा ! तू इस दिव्य
ब्रह्मास्त्रको पीछेको लौटाले॥२५॥ तेरा क्रोध शान्त होना
चाहिये, पांडव कुशलसे रहें, राजर्षि युधिष्ठिर अधर्मसे
जीतना नहीं चाहते२६तेरे मस्तकपर जो मणि है वह मणि-
अब तू पांडवोंको देदे और पांडव इस मणिको लेकर
तुझे प्राणदान देदेंगे२७अश्वत्थामाने कहा, कि-पांडवोंने
और कौरवोंने जो धन इकट्ठा किया है तथा जो रत्न पाये
हैं, मेरा यह मणि उन सबसे भी अधिक मूल्यका है।२८।
इस मणिको मस्तक पर धारण करनेसे शस्त्रका, रोगका,

वैशम्पायन उवाच । ततः परममस्त्रं तु द्रौणिरुद्यतमा-
हवे । द्वैपायनवचः श्रुत्वा गर्भेषु प्रमुमोच ह ॥ ३५ ॥
इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्म-
शिरोऽस्त्रस्य पाण्डवेयगर्भप्रवेशने पञ्चदशोऽध्यायः १५
वैशम्पायन उवाच । तदाज्ञाय हृषीकेशो विसृष्टं पाप-
कर्मणा । हृष्यमाण इदं वाक्यं द्रौणिं प्रत्यब्रवीत्तदा ।१ ।
विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः । उपप्लव्य-
गतां दृष्ट्वा व्रतवान् ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ परिक्षीणेषु
कुरुषु पुत्रस्तव भविष्यति । एतदस्य परिक्षित्त्वं गर्भस्थ-
स्य भविष्यति ॥ ३ ॥ तस्य तद्वचनं साधोः सत्यमे-

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! वेद-व्यासजीकी बात सुनकर अश्वत्थामाने, युद्धमें पांडवोंका संहार करनेके लिये जो ब्रह्मास्त्र उठाया था उसको पाण्डवोंके आगेको होनेवाले उत्तराकुमारीके गर्भमें स्थित पुत्रके ऊपर छोड़दिया ॥ ३५ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! पाप कर्म करनेवाले अश्वत्थामाने पाण्डवोंके पौत्रके ऊपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है, जब यह जाना तब कृष्णने बड़े ही प्रसन्न होकर उसी समय अश्वत्थामासे कहा, कि–॥ १ ॥ पहले विराटराजकी पुत्री उत्तरा, जो कि–इस समय अर्जुनकी पुत्रवधू है यह जब उपप्लव्यमें थी, उस समय एक व्रतधारी ब्राह्मणने इससे कहा था, कि–२ सब कौरवोंका नाश होजाने पर तेरे एक पुत्र होगा और गर्भमें स्थित ही यह परीक्षितपना होगा अर्थात् उसकी गर्भस्थितिमें ही सबका सर्वथा परिक्षय (नाश)

फलमाप्नुहि । त्रीणि वर्षसहस्राणि चरिष्यसि महीमिमाम् ॥ १० ॥ अप्राप्नुवन् क्वचित् काञ्चित् सम्विदं जातु केनचित् । निर्जनानसहायस्त्वं देशान् प्रविचरिष्यसि११ भवित्री न हि ते क्षुद्र जनमध्येषु संस्थितिः । पूयशोणितगन्धी च दुर्गकान्तारसंश्रयः ॥ १२ ॥ विचरिष्यसि पापात्मा सर्वव्याधिसमन्वितः । वयः प्राप्य परिक्षित्तु वेदव्रतमवाप्य च ॥१३॥ कृपाच्छारद्वताच्छूरः सर्वास्त्राण्युपलप्स्यते। विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः१४ षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति । इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति१५परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते। अहं तं जीवयिष्यामि दग्धं शस्त्राग्नितेजसा।

है ॥ ९ ॥ इसलिये तुझे अपने इस पापकर्मका फल भोगना पड़ेगा ! तू तीन हजार वर्षतक कहीं भी किसी के भी साथ बातचीत बिना किये मनुष्यरहित देशोंमें अकेला ही भटकता फिरेगा ॥ १०-११ ॥ अरे नराधम ! तेरा मनुष्योंमें निवास नहीं होगा, तेरे शरीरोंमेंसे पीब और रुधिरकी दुर्गन्ध निकला करेगी और तू पापात्मा सब प्रकारके रोगोंसे दुःखी होकर अगम्य वनोंमें भटकता फिरेगा और वह वीर परीक्षित् वेद-व्रतको धारण करके शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यसे सब प्रकारकी अस्त्रविद्याका अभ्यास करेगा और उत्तम प्रकारके अस्त्रोंको जानकर क्षत्रियधर्मके अनुसार वर्त्ताव करेगा ॥ १२-१४ ॥ और इससे भी अधिक सुन—अरे दुष्टबुद्धि ! तेरी दृष्टिके सामने ही धर्मात्मा महाबाहु राजा परीक्षित् राजसिंहासन पर बैठ कर साठ वर्ष तक राज्य करेगा, यद्यपि ब्रह्मास्त्रकी अग्निके तेजसे उत्तराका

युधं सुधि ॥ ३३ ॥ द्रौपद्युवाच । केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम । शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥ ३४ ॥ तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत्तदा । गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि ॥ ३५ ॥ ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन् प्रभुः । शुशुभे स तदा राजा सचन्द्र इव पर्वतः ॥ ३६ ॥ उत्तस्थौ पुत्रशोकार्त्ता ततः कृष्णा मनस्विनी । कृष्णञ्चापि महाबाहुं परिपप्रच्छ धर्मराट् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौपदीसान्त्वने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच । हतेषु सर्वसैन्येषु सौप्तिके तै

और उसके शस्त्रोंको पृथिवी पर डलवादिया ॥ ३३ ॥ द्रौपदीने कहा, कि—गुरुका पुत्र भी मेरा गुरुसमान ही है, मेरी केवल इतनी ही इच्छा थी, कि मेरा जो अनिष्ट किया है उसका बदला लेलूँ, सो मैं उऋण होगयी, हे भारत ! अब इस मणिको राजा युधिष्ठिर अपने शिर पर धारण करलें ॥ ३४ ॥ यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने उस मणिको गुरुका उच्छिष्ट मानकर तथा द्रौपदीकी बात रखकर उसी समय अपने मस्तक पर धारण कर लिया ३५ जब राजा युधिष्ठिरने उस मणिको अपने मस्तक पर धारण किया उस समय जैसे चन्द्रमासे उदयाचल शोभा पाता है तैसे शोभा पाने लगे ॥३६॥ तदनन्तर पुत्रोंके शोकसे आतुर हुई बड़े मनवाली द्रौपदी तहाँसे उठकर रनवासमें चलीगयी और महाबाहु धर्मराज श्रीकृष्णसे बूझनेलगे॥३७॥सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥१६॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! त्रिरात्रके वश

च । जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ॥ १८ ॥
विहितान्नाः प्रजास्तास्तु जग्मुः सृष्टा यथागतम् । ततो
ववृधिरे राजन् प्रीतिमत्यः स्वयोनिषु ॥ १९ ॥ भूतग्रामे
विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरावपि । उदतिष्ठज्जलाज्ज्येष्ठः
प्रजाश्चेमा ददर्श सः ॥ २० ॥ बहुरूपाः प्रजाः सृष्टा विवृ-
द्धाश्च स्वतेजसा । चुक्रोध भगवान्रुद्रो लिंगं स्वस्याप्य-
विध्यत ॥ २१ ॥ तत् प्रविद्धं तथा भूमौ तथैव प्रत्यति-
ष्ठत । तमुवाचाव्ययो ब्रह्मा वचोभिः शमयन्निव ॥२२॥
किं कृतं सलिले शर्व चिरकालस्थितेन ते । किमर्थञ्चेद-
मुत्पाद्य लिंगं भूमौ प्रवेशितम् ॥ २३ ॥ सोऽब्रवीत् जात-
संरम्भस्तथा लोकगुरुर्गुरुम् । प्रजाः सृष्टाः परेणेमाः

के लिये अन्न, औषधियें, स्थावर पदार्थ और बलवानों के लिये दुर्बल पदार्थ खानेको रखदिये ॥ १८ ॥ इस प्रकार आजीविकाका प्रबन्ध करदेने पर प्रजा अपने २ स्थानको चलीगयी और प्रीतिवाली होकर अपनी २ योनियोंमें वृद्धि पानेलगी ॥ १९ ॥ प्राणियोंकी वृद्धि होगयी, लोकगुरु ब्रह्माजी भी प्रसन्न होगये, इतनेमें ही ज्येष्ठ रुद्र पानीमेंसे बाहर निकले, उन्होंने देखा तो अनेकों प्रकारकी प्रजा बढ़ीहुई है, और वह अपने तेजसे बढ़गयी है भगवान् रुद्र उस प्रजाको देखकर क्रोधमें भरगये, और उन्होंने अपना लिङ्ग काटकर पृथिवी पर डालदिया, तदनन्तर अविनाशी ब्रह्माजी अपने वचनोंसे उनको शान्त करतेहुए कहनेलगे, कि—हे शिव ! तुमने चिरकाल तक जलके भीतर रहकर क्याकिया ? अपने लिङ्ग को पृथिवी पर तोड़ कर क्यों डाल दिया ? ॥ २०-२३ ॥ क्रोधमें भरेहुए लोकगुरु शङ्करने ब्रह्माजीसे कहा, कि-यह

षिप ॥३॥ सोऽकल्प्यमाने भागे तु कृत्तिवासा मखेऽमरैः। ततः साधनमन्विच्छन् धनुरादौ ससर्ज्ज ह ॥ ४ ॥ लोकयज्ञः क्रियायज्ञो गृहयज्ञः सनातनः। पञ्चभूतनृयज्ञश्च जज्ञे सर्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥ लोकयज्ञैर्नृयज्ञैश्च कपर्दी विदधे धनुः। धनुः सृष्टमभूत्तस्य पञ्चकिष्कुप्रमाणतः॥६॥ वषट्कारोभवज्ज्या तु धनुषस्तस्य भारत। यज्ञाङ्गानि च चत्वारि तस्य सन्नहनेऽभवन् ॥ ७ ॥ ततः क्रुद्धो महादेवस्तदुपादाय कार्मुकम्। आजगामाथ तत्रैव यत्र देवाः

हे राजन्! उन्होंने यज्ञमें रुद्रका भाग नहीं निकाला।३। बाघाम्बरधारी रुद्रने देवताओंके द्वारा यज्ञमें अपने भाग की कल्पना न देखकर पहले उस यज्ञका नाश करनेवाले धनुषको रचा ॥ ४ ॥ (सब लोक हमें सत्पुरुष जाने ऐसी वासनावाला) लोकयज्ञ (गर्माधान आदि संस्काररूप) क्रियायज्ञ (पत्नीकी सहायतासे होसकनेवाला अग्निहोत्र आदि)गृहयज्ञ, (आत्माका तर्पणरूप) पञ्चभूतात्मक यज्ञ और (अतिथितर्पणरूप) मनुष्ययज्ञ—इन पाँच प्रकारके यज्ञोंमेंसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है।५। इनकेमें लोकयज्ञ और मनुष्ययज्ञसे शङ्करने धनुषको उत्पन्न किया, यह धनुष पाँच किष्कु (पाँच हाथ)का था ६ हे भरतवंशी राजन्! वषट्कार उस धनुषकी डोरी हुआ, अर्थित्व, समर्थत्व, विद्वत्व और द्वन्द्वशून्यत्व इन चार प्रकारके अङ्गोंने उस धनुषको दृढ़ बनादिया ७ फिर कोपायमान *

* मूलमें जो महादेवजीको 'कोपायमान हुए' कहा है, उसका कारण यह है,कि—यज्ञके अङ्गोंको मूढ़ लोगोंने लोकैषणा आदिमें लगादिया, इसलिये महादेवजीको क्रोध चढ़ आया था।

नभस्तले ॥१४॥ अपक्रान्ते ततो यज्ञे संज्ञा न प्रत्यभात् सुरान्। नष्टसंज्ञेषु देवेषु न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १५ ॥ त्र्यम्बकः सवितुर्बाहू भगस्य नयने तथा। पूष्णश्च दशनान् क्रुद्धो धनुष्कोट्या व्यशातयत् ॥१६॥ प्राद्रवन्त ततो देवा यज्ञांगानि च सर्वशः। केचित्तत्रैव घूर्णन्तो गतासव इवाभवन् ॥ १७ ॥ स तु विद्राव्य तत्सर्वं शिति-

अभीतक आकाशमें उसही रूपसे विराजरहे हैं ॥ १४ ॥ यज्ञके चलेजानेपर देवता संज्ञाविहीन होगये, देवताओं की संज्ञा नष्ट होजानेपर उनको कुछभी नहीं सूझपड़ा १५ क्रोधमें भरेहुए त्र्यम्बकने (१) सविताके दोनों हाथोंको, भगके नेत्रोंको और पूषाके दाँतोंको धनुषकी नोकसे तोड़ दिया ॥ १६ ॥ यह देखकर देवता तथा यज्ञोंके अङ्ग तहांसे भागगये और कितनेही प्राणरहितसे होकर

युक्त होनेके कारण भ्रष्ट होजाता है और यज्ञका फल भोगकर व्रीहि आदि आदि भिन्न२ योनियोंमें उत्पन्न होता है और स्थावर आदिमें उत्पत्ति होनेके कारण वह यज्ञपति विवेक आदि सब गुणोंसे भ्रष्ट होजाता है, तात्पर्य यह है, कि—यज्ञका कोईभी कर्म अहङ्कारके साथ नहीं करना चाहिये।

(१) नीलकण्ठने इसका यह अभिप्राय दिखाया है, त्र्यम्बक पदका नया ही अर्थ निकालकर इसको तत्त्वज्ञान पर लगाया है त्र्यम्बक कहिये श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनसे जिसको पाया जासकता है ऐसे परमेश्वरने सविताके बाहुओंको अर्थात् यज्ञको उत्पन्न करनेवाले देहके कार्यकारणरूप दो भुजाओंको, भगके नेत्र कहिये विहित-निषेधरूप संकल्पको, पूषाके दाँतोंको कहिये वाक् इन्द्रियमें रहनेवाले मन्त्रोंको, धनुषकी नोक कहिये लोकैषणा तथा देहैषणासे नाश करडाला।

ततः सुस्थमिदं सर्वं बभूव पुनरेव हि । सर्वाणि च हवींष्यस्य देवा भागमकल्पयन् ॥२३॥ तस्मिन् क्रुद्धेऽभवत् सर्वमसुस्थं भुवनं प्रभो । प्रसन्ने च पुनः स्वस्थं प्रसन्नोऽस्य च वीर्यवान् ॥ २४ ॥ ततस्ते निहताः सर्वे तव पुत्रा महारथाः । अन्ये च बहवः शूराः पाञ्चालस्य पदानुगाः ॥ २५ ॥ न तन्मनसि कर्त्तव्यं न च ते द्रौणिना कृतम् । महादेवप्रसादेन कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासक्यां संहितायां सौसिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि कृष्णयुधिष्ठिरसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

समाप्तमैषीकपर्व सौप्तिकं च पर्व

भागी बनाया २२ इस जगत्में फिर शान्ति फैलगयी, उस दिनसे देवताओंने यज्ञमें सब हविषोंमें रुद्रका भाग भी करदिया २३ हे राजन् ! यह महादेवजी जब कुपित हुए थे तब सब लोकोंमें गड़बड़ी पड़गयी थी, जब वह प्रसन्न हुए तो सर्वत्र शान्ति फैलगयी, ऐसे महावीर्यवान् महादेवजी अश्वत्थामाके ऊपर प्रसन्न होगये थे२४ इसलिये ही उसने तुम्हारे सब महारथी पुत्रों को तथा दूसरे पंचालराजाके बहुतसे वीर सैनिकोंको मारडाला२५तथा तुम अपने मनमें यह न समझना, कि-यह काम अश्वत्थामाने किया है, यह तो उसने महादेवजी की कृपासे ही किया था, अब आपको जो काम करना हो आनन्दसे करिये २६ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

इति श्रीमहाभारतके सौसिकपर्वका मुरादाबादनिवासि-
म०कु० रामस्वरूपशर्माकृत भाषानुवाद
समाप्त.

स्त्रीपर्वकी विषयसूची समाप्त.

—०—

पुस्तक मिलनेका पता–
प० रामस्वरूप शर्मा
सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद

दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम् । पुत्रशोकाभिसन्तप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ ४ ॥ ध्यानमूकत्वमापन्नं चिन्तया समभिप्लुतम् । अभिगम्य महाराज सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥ किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता । अक्षौहिण्यो हता चाष्टौ दश चैव विशाम्पते ॥ ६ ॥ निर्जनेयं वसुमती शून्या संप्रति केवला । नानादिग्भ्यः समागम्य नानादेश्या नराधिपाः ॥ ७ ॥ सहैव तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः । पितॄणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा ॥ गुरूणाञ्चानुपूर्वेण प्रेतकार्याणि कारय ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः । पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः । दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन् पृथिवीमिमाम् १०

जानेपर कटी शाखाओंवाले वृक्षकी समान दीनहुए, पुत्रोंकेशोकसे अतिसन्ताप पातेहुए, चिन्तावश मौनहुए तथा चिन्तासे व्याकुल हुए धृतराष्ट्रके पास जाकर बुद्धिमान् सञ्जयने इसप्रकार कहा, कि–॥ ४–५ ॥ हे महाराज ! अब तुम शोक क्यों करते हो ? शोक आपकी कुछ सहायता नहीं करसकता, हे राजन् ! अठारह अक्षौहिणी सेना मारीगयी ॥ ६ ॥ यह पृथिवी निर्जन होगयी, जिधर देखो उधर सूनी दीखती है, भिन्न २ दिशाओंमेंसे अनेकों देशोंके राजे तुम्हारे पुत्रकी सहायता करनेको आये थे, वे सब तुम्हारे पुत्रके साथ मारेगये, अब तो तुम चचा ताऊ, पुत्र, पौत्र, संबन्धी, सुहृद, और गुरुओंके क्रमसे प्रेतकर्म करवाओ ॥ ७–८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–सञ्जयकी दुःखदायक बातको सुन पुत्र और पौत्रोंके मरणसे खिन्न होकर, जैसे आँधीके झपाटेमें वृक्ष गिरपड़ता है तैसे ही, प्रतापी राजा धृतराष्ट्र पृथिवी पर गिरपड़े जब होश आया तब वह कहने लगे ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि–मेरे पुत्र, मंत्री और सब स्नेही मारेगये, अब

सञ्जय दुष्कृतम् ॥१७॥ यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते । नूनं व्यपकृतं किञ्चिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ १८ ॥ येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान् । परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुलयश्च मे ॥ १९ ॥ सुहृन्मित्रविनाशश्च दैवयोगादुपागतः । कान्योऽस्ति दुःखिततरो मत्तोन्यो हि पुमान् भुवि ॥ २० ॥ तन्मामद्यैव पश्यन्तु पाण्डवाः संशितव्रताः । विवृतं ब्रह्मलोकस्य दीर्घमध्वानमास्थितम् ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं वितन्वतः । शोकापहं नरेन्द्रस्य सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शोकं राजन् व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः । शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम ॥ २३ ॥

कर्णके नाशको तथा द्रोणरूप सूर्यके ग्रासको सुनकर मेरी छाती फटीजाती है, हे संजय ! मुझे याद नहीं आता, कि-मैंने पहले कोई पापकर्म किया हो, जिसका फल आज मुझ मूढको भोगना पडरहा है, परन्तु निःसन्देह मैंने पहले जन्ममें कोई पाप कर्म अवश्य किया होगा ॥ १६-१८ ॥ यदि ऐसा नहीं होता तो विधाता मुझे ऐसे दुःखदायक कामोंमें लाकर न पटकदेता ! अब मेरी आयु पूरी होनेको आगयी है, दैवयोगसे सब पुत्र और बांधवोंका नाश होगया है, स्नेही और मित्रोंका भी नाश होगया है, बता तो सही इस पृथ्वी पर मुझसे अधिक दुःखी दूसरा और कौन मनुष्य होगा ? ॥१९॥२० ॥ इसलिये उत्तम आचरण वाले पांडव आज ही मुझे ब्रह्मलोकके खुले द्वारवाले लंबे मार्गमें खडाहुआ देखें अर्थात् मैं आज ही अपने प्राणोंको त्यागदूँगा॥२१ वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा धृतराष्ट्र इसप्रकार बहुत ही विलाप करनेलगे, वडा शोक करनेलगे, तब सञ्जयने राजाके शोकको शान्त करनेवाले वाक्य कहना आरम्भ किये, कि-॥ २२ ॥ राजा सृञ्जय पुत्रके शोकसे दुःखी होने लगा था, तब मुनियोंने उसको

न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमभीप्सता ३०अल्पबुद्धिरहङ्कारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन् । क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसन्तुष्टश्च वीर्यवान्३१ श्रुतवानसि मेधावी सत्यवांश्चैव नित्यदा । न मुह्यन्तीदृशा सन्तो बुद्धिमन्तो भवादृशाः ॥ ३२ ॥ न धर्मः सत्कृतः कश्चित्तव पुत्रेण भारत । क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्द्धितं यशः ॥ ३३ ॥ मध्यस्थो हि त्वमप्यासीर्न क्षमं किञ्चिदुक्तवान् । दुर्धरेण त्वया भारस्तुलया न समं धृतः ॥ ३४ ॥ आदावेव मनुष्येण वर्त्तितव्यं यथाक्षमम् । यथा नानीतमर्थे वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ३५ ॥ पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन् प्रियं तस्य चिकीर्षितम् । पश्चात्तापमिमं प्राप्तो न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३६ ॥ मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं

था, वह अल्पबुद्धि और अहङ्कारी था, इसलिये सदा युद्ध ही युद्धकी रटना लगाया करता था, इसलिये उसने किसी प्रकारके भी धर्मका आदर नहीं किया, वह वीरस्वभावका था तो भी क्रूर, असहनशील और सदा असंतोषी था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तुम तो शास्त्रको जाननेवाले, विद्वान् और सत्यवादी हो, तुम-सरीखे विद्वान् मनुष्य तो दुःखमें घबड़ाते नहीं हैं ! ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने क्षत्रियके किसी भी धर्मका आदर नहीं किया, किन्तु सब क्षत्रियोंका नाश करडाला और शत्रुओंके यश को बढादिया ॥३३॥ तुम तो मध्यस्थ (उदासीन) हुए बैठे रहे, समर्थ होतेहुए भी उनको किसी उचित बातका ज़रा भी उपदेश नहीं दिया, आपको कोई भी रोक नहीं सकता था तो भी आपने दोनों ओरके बोझेको एकसी (निष्पक्ष) तराजू पर नहीं तोला ३४ ॥ मनुष्यको आरम्भमें ही ऐसा करना चाहिये, कि-जिससे कियेहुए कामके लिये पीछेसे पछताना न पड़े ॥ ३५ ॥ परन्तु हे राजन् ! तुमने तो पुत्रके प्रेमके कारण सदा उसका ही मनचीता काम करना चाहा, इसलिये ही अब पश्चात्ताप करना

मानवान् । जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना ॥४३॥
वैशम्पायन उवाच । एवमाश्वासितस्तेन सञ्जयेन महात्मना ।
विदुरो भूय एवाह बुद्धिपूर्वं परन्तपः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततोऽमृतसमैर्वाक्यैर्ह्लादयन् पुरुषर्षभम् ।
वैचित्रवीर्यं विदुरो यदुवाच निबोध तत् ॥ १ ॥ विदुर उवाच ।
उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे धारयात्मनमात्मना ॥ एषा वै सर्वसत्त्वानां
लोकेश्वर परा गतिः ॥ २ ॥ सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः
समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवितम् ॥३॥

लोग भी इसको अच्छा नहीं कहते ॥ ४२ ॥ शोक अग्निकी चिनगारियोंकी समान मनुष्योंको जलाकर भस्मकर डालता है; इस लिये तुम स्वयं अपनी बुद्धिसे अपने मनको स्थिर करो और शोक क्रोधको त्यागो ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-महात्मा सञ्जयने धृतराष्ट्रको उपदेश देकर धीरज दिया, तदनन्तर परन्तप विदुर राजाधृतराष्ट्रसे फिर बहुत विचारकर धीरजके वचन कहने लगे ॥ ४४ ॥ पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! फिर विदुरजी अमृतकी समान मीठे वचनोंसे विचित्रवीर्यके पुत्र महात्मा राजा धृतराष्ट्रको प्रसन्न करते हुए जो उपदेश देनेलगे थे, उसको तुम सुनो १ विदुरजीने कहा कि—हे राजन् ! तुम पृथिवी पर क्यों पड़े हो ? उठकर खड़े होजाओ और धीरज धरकर अपने मनको स्थिर करो, हे राजन् ! यह मरना तो सब ही प्राणियोंके लिये आवश्यक रचागया है ॥२॥ उत्पन्न होनेवाले सब ही पदार्थ नष्ट होजाते हैं जिनकी उन्नति होती है उनका एक दिन पतन भी अवश्य ही होता है, जिनका संयोग होता है उनका वियोग भी अवश्य ही है

र्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् । यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥ १० ॥ न चाप्येतान् हतान् युद्धे राजन् शोचितुमर्हसि । प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥ ११ ॥ सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः । सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना ॥ १२ ॥ अदर्शनादापतिता पुनश्चादर्शनं गताः । नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥१३॥ हतोपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः । उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ १४ ॥ तेषां कामदुघांल्लोकानिन्द्रः

अपने वशमें रखकर इधरके उधर करता रहता है ॥ ९ ॥ बहुत से प्राणी एकसाथ यात्रा कररहे हैं और सबको तहाँ ही जाना है, परन्तु काल जिसको आगे लेजाता है वह सबसे पहले पहुँच जाता है, फिर उस जानेवालेके लिये शोक क्या करना ॥ १० ॥ और वैसे भी हे राजन् ! तुम्हें इन युद्धमें मारेजाने वालोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि—यदि तुम शास्त्रके प्रमाणोंको मानते हो तो ये युद्धमें मरनेसे मोक्षको प्राप्त होगये हैं ॥ ११ ॥ इस युद्धमें लड़नेवाले स्वाध्याय करनेवाले—वेदके ज्ञाता, और उत्तम आचरणवाले थे, फिर ये सामने पड़कर लड़तेहुए मारे गये हैं, इनके लिये शोक क्या करना ॥ १२ ॥ जन्मसे पहले ये कहीं नहीं दीखते थे, अदर्शनमेंसे ही इस जगत्में आपड़े थे और फिर अदर्शनमें ही जापहुँचे, इनका तुम्हारे साथ संबन्ध नहीं है और न तुम्हारा इनके साथ संबन्ध है, फिर तुम इनके लिये क्यों शोक करते हो ? ॥ १३ ॥ रणमें मरनेसे स्वर्ग मिलता है और शत्रुको मारनेसे यश मिलता है, दोनों ही दशामें युद्धमें बड़ा भारी लाभ है, युद्धमें निष्फलता है ही नहीं ॥ १४ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! रणमें मरनेवालोंको इन्द्र उनकी कामना पूरे करनेवाले लोक देगा और ये इन्द्रके घर

दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥२२॥न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम । न मध्यस्थः क्वचित् कालः सर्वं कालः प्रकर्षति ॥ २३ ॥ कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २४ ॥ अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः । आरोग्यं प्रियसम्वासो गृध्येदेषु न पण्डितः ॥ २५ ॥ न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि । अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्त्तते ॥ २६ ॥ अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् पराक्रमम् । भैषज्यमेतद्द दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ॥२७॥ चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्द्धते ।

हुए ? ॥ २१ ॥ शोकके हजारों स्थान हैं और भयके सैंकड़ों स्थान हैं, वे मूढ़ मनुष्यके ऊपर प्रतिदिन अपना प्रभाव दिखाते हैं, परन्तु विवेकीके ऊपर नहीं चलासकते॥२२॥हे श्रेष्ठ कुरुराज ! कालका न कोई प्यारा है, न कोई द्वेषपात्र है तथा काल कभी उदासीनता नहीं दिखाता, वह तो सबको ही खेंचकर लेजाता है।२३। काल सब प्राणियोंको पकाता है (बड़ा करता है) और काल ही सब प्रजाओंका संहार करडालता है, सब प्राणी सोजाते हैं और काल जागता ही रहता है, निःसन्देह कालको लाँघना बड़ा कठिन है ॥ २४ ॥ जवानी, रूप, जीवन, धनका भण्डार, नीरोगता और प्यारे मनुष्योंका साथ, यह सब अनित्य है (सदा नहीं रहता) इसलिये विचारवान्को इनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये ॥ २५ ॥ इसलिये देशभरके दुःखको लेकर तुम अकेले क्यों शोक करते हो ? यद्यपि संबंधियोंके मरणसे दुःख आकर दबाता ही है, परन्तु शोक करनेसे दुःख दूर नहीं होसकता २६ इसलिये मरेहुओंके लिये शोक न करके यदि अपनेमें पराक्रम देखे तो उसका बदला लेय, दुःखकी औषधि तो यही है, कि-उसका ध्यान ही न करे ॥ २७ ॥ क्योंकि-इस दुःखकी ओरको

येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः । तेन तेन शरीरेण तत् फलं समुपाश्नुते॥३४॥आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः । आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्यापकृतस्य च ॥ ३५ ॥ शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा । कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित् ॥ ३६ ॥ न हि ज्ञानविरुद्धेषु बहुपापेषु कर्मसु । मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
धृतराष्ट्राश्वासने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

धृतराष्ट्र उवाच । सुभाषितैर्महाप्राज्ञ शोकोयं विगतो मम । भूय एव तु वाक्यानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ अनिष्टानाञ्च संसर्गादिष्टानाञ्च विवर्ज्जनात् । कथं हि मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्ते

जो२ कर्म करता है, उस२ शरीरसे उस २ कर्मके फलको भोगता है ॥ ३४ ॥ मनुष्य आप ही अपना बंधु (मित्र) है और आप ही अपना शत्रु है तथा आप ही अपने किएहुए पाप पुण्यका साक्षी है; इसमें दूसरेका कुछ लगाव नहीं है ॥ ३५ ॥ शुभ कर्म का फल सुखदायक और पाप कर्मका फल दुःखदायक होता है तथा कियेहुए कर्मका फल सर्वत्र भोगना ही पड़ता है और न कियेहुए कर्मका फल कभी नहीं भोगना पड़ता ॥ ३६ ॥ और आप सरीखे बुद्धिमान् मनुष्य तो ज्ञानसे विरुद्ध, महादुःखदायक और जड़ काटनेवाले महादुःखके मूलरूप कर्मोंको करनेमें कभी जुटते ही नहीं हैं ॥ ३७ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे महाबुद्धिमान् विदुर ! तुम्हारे सुन्दर-सारभूत शब्दोंको सुनकर मेरा शोक मिटगया, इसलिये मैं फिर भी तुमसे ठीक२ सुभाषित वचनोंको सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ मुझे बताओ, कि—अनिष्ट वस्तुओंके संसर्गसे और इष्ट वस्तुओंके त्यागसे मानसिक दुःख होते हैं, उनसे विवेकी कैसे छूटता है ?

पूरुषः । अन्यद्रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ ९ ॥ वैचित्रवीर्य साध्यं हि दुःखं वा यदि वा सुखम् । प्राप्नुवन्तीह भूतानि स्वकृतेनैव कर्मणा ॥ १० ॥ कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत । ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा ॥ ११ ॥ यथा च मृण्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते । किञ्चित् प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा ॥ १२ ॥ छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा । आर्द्रं वाप्यथ वा शुष्कं पच्यमानमथापि वा ॥ १३ ॥ उत्तार्यमाणमापाकादुद्धृतञ्चापि भारत । अथवा परिभुज्जन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ १४ ॥ गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथवा दिवसान्तरः । अर्द्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपिवा ॥ १५ ॥ सम्वत्सरगतो वापि द्विसम्वत्सर एव वा । यौवनस्थोऽथ

त्यागकर अन्य देहको धारण करलेता है ॥ ९ ॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र ! इसप्रकार प्राणी इसलोकमें अपने किये हुए कर्मसेही सुख वा दुःखको पाया करते हैं ॥ १० ॥ हे भारत ! मनुष्य स्वाधीन हो चाहे पराधीन हो, परन्तु उसको कर्मवश स्वर्ग मिलता है तथा सुख और दुःखका भारभी कर्मवश उठानाही पड़ता है ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जिसप्रकार एक मट्टीका वासन वनानेके लिये चाकपर चढ़ाया जाता है उस समय अथवा जराएक वनजाता है तब अथवा पूरा वनजाने पर अथवा उसको सूतसे जुदा करके नीचे उतारनेमें वा नीचे उतारने लेनेपर, गीली दशामें अथवा सूख जानेपर अथवा अवेमें पकाते समय अथवा बाहर निकालतेमें अथवा हे भारत ! निकल आनेपर वह मट्टीका वासन जैसे टूटजाता है, ऐसेही देहधारियोंके शरीरभी गर्भकी दशामें वा जन्म होजाने पर, एक दिनका होजाने पर या पन्द्रह दिनका होजाने पर, एक महीनेका होजाने पर वा एक वर्षका होजाने पर, दो वर्षका होजाने पर अथवा जवानीमें आजाने पर, मध्यम अवस्था आजाने पर या

जन्मप्रभृति भूतानां क्रिया सर्वोपलच्यते । पूर्वमेवेह कलिले वसते किञ्चिदन्तरम् ॥ २ ॥ ततः स पञ्चमेतीते मासे वासमकल्पयत् । ततः सर्वांगसंपूर्णो गर्भो वै स तु जायते ॥ अमेध्यमध्ये वसति मांसशोणितलेपने ॥ ३ ॥ ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादो ह्यधः-शिराः । योनिद्वारमुपागम्य बहून् क्लेशान् समृच्छति ॥ ४ ॥ योनिसंपीडनाच्चैव पूर्वकर्मभिरन्वितः । तस्मान्मुक्तः स संसाराद-न्यान् पश्यत्युपद्रवान् ॥ ५ ॥ ग्रहास्तमुपगच्छन्ति सारमेया इवा-मिषम् ॥ ६ ॥ ततः प्राप्तोत्तरे काले व्याधयश्चापि तं तथा । उप-सर्पन्ति जीवन्तं बध्यमानं स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥ तं बद्धमिन्द्रियैः

प्राणियोंके जन्मसे लेकर ही उनकी सब क्रियाएँ शास्त्रमें कही हैं, पहले गर्भ कलिल (रजवीर्यका बुद्बुद) होता है, वह धीरे२ बढ़ता है, थोड़े ही समय पीछे उसमें जीव चैतन्यरूपसे बसने लगता है ॥ २ ॥ जब पाँचवाँ महीना उतरकर छठा महीना लगता है तब उसमें चैतन्य निवास करता है, तदनन्तर गर्भ सर्वाङ्गपूर्ण होजाता है ॥ ३ ॥ इसप्रकार मांस तथा रुधिर से लिप्त अपवित्र गर्भमें जीवको निवास करना पड़ता है, जब जन्मकाल आता है तब वायुके वेगके कारण जीवके चरण पहले नीचेको होते हैं वे ऊपरको होजाते हैं और शिर नीचेको होजाता है ॥ ४ ॥ और वह योनिद्वार पर आ अटकजाता है, उस समय उसको बड़े दुःख सहने पड़ते हैं, फिर योनिमें पिचने लगता है और फिर जीवात्मा पूर्वजन्मके कर्मोंके साथ योनिमेंसे बाहर निकल पड़ता है, फिर वह संसारमें दूसरे दुःखोंका अनुभव करता है, जैसे कुत्ते मांसके पीछे२ फिरा करते हैं तैसे ही बालग्रह उस जीवके पीछे२ फिरते हैं, यह जीव जैसे२ बड़ा होताजाता है तैसे२ अपने कर्मोंसे बँधेहुए उस जीवके पास व्याधियें आती चली जाती हैं ॥ ५-७ ॥ हे राजन् ! जिनमें कनक कान्ता आदि विषयोंका

रमते दुष्कुलीनान् विकुत्सयन् । धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रान् परिकुत्सयन् ॥१३॥ मूर्खानिति परानाह नात्मानं समवेक्षते । दोषान् क्षिपति चान्येषां नात्मानं शास्तुमिच्छति ॥ १४ ॥ यदा प्राज्ञाश्च मूर्खाश्च धनवन्तश्च निर्द्धनाः । कुलीनाश्चाकुलीनाश्च मानिनोऽथाप्यमानिनः ॥ १५ ॥ सर्वे पितृवनं प्राप्ताः स्वपन्ति विगतत्वचः । निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः ॥ १६ ॥ विशेषं न प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः । येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् ॥१७॥ यदा सर्वसमं न्यस्ताः स्वपन्ति धरणीतले । कस्मा-

---

भी नहीं पहचान सकता ॥ १२ ॥ उलटा स्वयं अपनेको कुलीन मानकर कुलीनताके अभिमानमें ही मग्न रहता है और नीच कुलवालोंकी निन्दा करता है, धनके गर्वसे घमण्डमें भरजाता है और निर्धनोंको बुरा कहता है ॥ १३ ॥ दूसरोंको मूर्ख कहता है और अपनी ओरको देखता ही नहीं, दूसरोंके दोष निकालता है, परन्तु अपने दोषोंके लिये अपने आपको नियम में नहीं रखना चाहता ॥ १४ ॥ जब बुद्धिमान् या मूर्ख, धनवान् या निर्धन, कुलीन या अकुलीन, प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित सब ही जब मरजाते हैं तब मांसशून्य, हड्डियोंके कङ्कालरूप और नसोंसे बँधेहुए शरीरमात्रसे श्मशानमें जाकर नग्नदशासे सोरहते हैं ॥ १५-१६ ॥ उस समय दूसरे पुरुष उनके शवोंमें कोई भी ऐसी विशेषता नहीं देखते, कि जिसके कारणसे उन मरोंहुओंके कुल और रूपको पहचान सकें ॥ १७ ॥ (मरेहुओंको यदि भूमिमें गाड़ दियाजाता है तो वे कीड़ेरूप परिणामको पाते हैं, जिनके शवको पशुपक्षी खाजाते हैं वे विष्ठारूप होजाते हैं और जिनको जला दिया जाता है वे भस्मरूपमें होजाते हैं, इसप्रकार) मरणके बाद सबकी एकसी ही दशा होती है, मरकर सब ही खुली भूमिपर सोते हैं, तो फिर लोग इस जगतमें अपने मनमें

क्रौधैरतिघोरं महास्वनैः । पिशितादैरतिभयैर्महोग्रकृतिभिस्तथा ।४।
समन्तात् संपरिक्षिप्तं यत् स्म दृष्ट्वा त्रसेद्यमः । तदस्य दृष्ट्वा हृदय-
मुद्वेगमगमत् परम् ॥ ५ ॥ अभ्युच्छ्रयश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च
परन्तप । स तद्वनं व्यनुसरन् संप्रधावन्नितस्ततः ॥ ६ ॥ वीक्ष-
माणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति । स तेषां छिद्रमन्विच्छन्
प्रद्रुतो भयपीडितः ॥७॥ न च निर्याति वै दूरं न वा तैर्विप्रमोच्यते ।
अथापश्यद्वनं घोरं समन्ताद्वागुरावृतम् ॥ ८ ॥ बाहुभ्यां सपरि-
क्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया । पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ९
नभस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् । वनमध्ये च तत्राभूदुद-
पानः समावृतः ॥ १० ॥ वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्दृढाभिरभि-

वनमें जापहुँचा ॥ ३ ॥ वह वन घोर गर्जना करनेवाले सिंह, व्याघ्र, रीछ आदिकोंसे महाभयानक था, चारों ओर मांस खाने वाले महाभयानक और महाघोर आकार वाले राक्षसोंसे ऐसा भरा हुआ था, कि—जिसको देखकर यमराज भी डरजाय, उस वनको देखकर इस ब्राह्मणका हृदय बड़ा ही घबड़ाने लगा ।४-५। हे परन्तप राजन् ! उसके रोमाञ्च खड़े होगये और मनमें अनेकों प्रकारके भयके विचार उठने लगे, वह उस वनमें पहुँचकर इधर उधरको दौड़ने लगा और मुझे रक्षाका स्थान कहीं मिलजाय, इस विचारसे चारों ओरको देखनेलगा, वह भयसे दुःखी होकर उन पशुओंके झापटेमेंसे बचनेके लिये इधर उधर को दौड़ता रहा ॥ ६ ॥ ७ ॥ परन्तु वह न तो उस वनमेंसे दूरही जासका और न उन पशुओंके चुङ्गलमेंसेही छूटसका, उसने फिरते२ देखा तो वह वन जाल लगाकर चारों ओरसे घेरलिया गया था ॥ ८ ॥ एक महाघोर स्त्री उस वनको अपनी दोनों भुजाओंसे घेरेखड़ी थी, और पहाड़ोंकी समान ऊँचे पाँच शिरवाले सर्पोंसे तथा आकाशको छूनेवाले बड़े२ वृक्षोंसे वह वन चारों ओरसे

समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ॥ १७ ॥ स्वादनीयानि भूतानां यैर्बालो विप्रकृष्यते । तेषां मधूनां बहुधा धाराः प्रस्रवते तदा ॥ १८ ॥ आलम्बमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा । न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य सङ्कटे ॥ १९ ॥ अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः । न चास्य जीविते राजन् निर्वेदः समजायत २० तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता । कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति च मूषिकाः ॥ २१ ॥ व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया । कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च ॥ २२ ॥ वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषिकेभ्यश्च पञ्चमम् । मधुलोभान्मधुकरैःषष्ठं माहु-

---

कररही थीं, ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो मधु प्राणियोंको बड़ाही मीठा लगता है और बालक जिसको खाना चाहा करते हैं ऐसे मधुकी उस समय उस वृक्षमेंसे बहुतसी धारें टपकरही थीं॥ १८ ॥ वह उलटे शिर लटकाहुआ पुरुष मधुकी इन धारोंको पीरहा था और बड़ेभारी सङ्कटमें पड़ा होनेपर भी उस पुरुषकी मधुको पीनेकी तृष्णा शान्त नहीं होती थी ॥ १९ ॥ वह मानो मधु (शहद) को पीकर तृप्त हुआही नहीं, इसप्रकार वारम्वार उस शहदकोही पीना चाहता था, परन्तु हे राजन्! उसको अपने सङ्कटमें पड़े हुए जीवन के ऊपर जराभी खेद नहीं होता था ॥ २० ॥ क्योंकि—उस शहद के भीतरही मनुष्यजीवनकी आशा जमी रहती है, जिस वृक्षकी जड़ोंको पकड़ेहुए वह लटकरहा था उस वृक्षको काले और सफेद चूहे रातदिन काटरहे थे ॥ २१ ॥ इसप्रकार भयानक वनमें पहले तो उन सर्पोंका भय, दूसरे महाभयानक स्त्रीका भय, तीसरे कुए की तलीमेंके नागका भय, चौथे कुएकी मनपर खड़ेहुए एक हाथी का भय ॥ २२ ॥ पाँचवें किनारे पर खड़ेहुए वृक्षके चूहोंके काट डालनेसे गिरपड़नेका भय और छठें शहदका लोभ करतेहुए शहदकी मक्खियें आकर काट लेंगी यह भय था ॥ २३ ॥

हि यच्चैतत् संसारगहनं हि तत् ॥ ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्त्तिताः । या सा नारी बृहत्काया अधितिष्ठति तत्र वै ॥ ६ ॥ तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा वर्णरूपविनाशिनीम् । यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम् ॥ ७ ॥ यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः । अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ ॥८ कूपमध्ये तु या जाता वल्ली यत्र स मानवः । प्रताने लम्बते लग्नो जीविताशा शरीरिणाम् ॥ ६ ॥ स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति । षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् स तु संवत्सरः स्मृतः ॥१०॥ मुखानि ऋतवो मासा पादा द्वादश कीर्त्तिताः ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति मूषिकाः पन्नगास्तथा ॥ ११ ॥ राज्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः । ते ये मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्त्तिताः ।१२।

समझो, जिस दुर्गम वनका वर्णन किया है, उसको संसारका गहनपना समझो ॥ ५ ॥ और जो हिंसक प्राणी कहे थे उनको व्याधियें समझो, बड़ीभारी कायावाली जो स्त्री उस वनमें अपने दोनों हाथोंको फैलाकर खड़ी थी, उसको विद्वान् रूप और वर्णका नाश करनेवाली जरा कहते हैं, वनमें जिस कुएका वर्णन किया है, उसको देहधारियोंका देह समझो ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस कुएके नीचेके भागमें जो बड़ाभारी सर्प रहता था उसको सब प्राणियों का नाश करनेवाला और सर्वस्व हरनेवाला काल जानो ॥८॥ उस कुएमें जो लता उगीहुई थी और जिसके तन्तुओंमें वह मनुष्य उलटे शिर लटकरहा था उसको देहधारियोंकी जीविताशा जानो ॥ ६ ॥ कुएकी मनपर वृक्षके चारों ओर जो छः मुखवाला हाथी फिर रहा था उसको संवत्सर जानो ॥ १० ॥ छः मुखोंको छः ऋतु जानो, बारह पैरोंको बारह महीने जानो और उस वृक्षको जो सर्पोंकी समान विषैले चूहे काटरहे हैं उनको प्राणियोंकी दशाका चिन्तवन करनेवाले रात और दिन कहते हैं

तत्र पण्डिताः ॥ ४ ॥ तस्मादध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः । यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः ॥ ५ ॥ सोऽयं लोकसमावर्त्तो मर्त्यानां भरतर्षभ । चराणां स्थावराणाञ्च न गृध्येत्तत्र पण्डितः ॥ ६ ॥ शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः । प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्याला कथिता बुधैः ॥ ७ ॥ क्लिश्यमानाश्च तैर्नित्यं वार्यमाणाश्च भारत । स्वकर्मभिर्महाव्यालैर्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ८ ॥ अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप । आप्नोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी ॥ ९ ॥ शब्दरूपरसस्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि । मज्जामांसमहापंके निरालम्बे समन्ततः ॥ १० ॥ संवत्सराश्च मासाश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।

बीचर में गर्भवासमें विश्राम लेना पड़ता है, परन्तु इनमें जो विवेकी होते हैं वे इस गर्भमें वास करके संसारसे तथा गर्भवाससे छूटजाते हैं ॥४॥ शास्त्रको जाननेवाले मनुष्योंने गर्भवासको मार्गका रूपक दिया है और गहन संसारको वनरूप माना है ॥ ५ ॥ हे भरतसत्तम ! इस संसारमें मनुष्योंको तथा स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको जन्मना और मरना पड़ता है, परन्तु जो विवेकी मनुष्य है वह संसारमें सुखकी आशा नहीं करता, इसलिये उसको संसारमें जन्म लेने वा मरनेका कोई सुख दुःख नहीं होता है ६ मनुष्योंको प्रत्यक्ष वा छिपीहुई शरीर और मनकी जो व्याधियें होती हैं उनको पण्डितोंने हिंसक प्राणियोंकी उपमा दी है ॥७॥ हे भारत ! अल्प बुद्धिवाले मनुष्य प्रत्यक्ष वा परोक्ष अपने कर्मरूप महाहिंसक प्राणियोंसे नित्य क्लेश पाते हैं और उनकी टक्करें सहते हैं परन्तु उनसे उकताते नहीं ॥ ८ ॥ कर्मधर्म योगसे अज्ञानी मनुष्य कदाचित् उन व्याधियोंमेंसे छूट भी जाते हैं तो वह रूपका नाश करनेवाली जरा पीछेसे आकर घेरलेती है ॥ ९ ॥ तथा उसके साथ ही अनेकों प्रकारके शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध भी उस

तद्धि जायते ॥ १६ ॥ तस्मादस्य निवृत्त्यर्थं यत्नमेव चरेद् बुधः । उपेक्षा नात्र कर्त्तव्या शतशाखः प्रवर्त्तते ॥ १७ ॥ यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः । सन्तुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति ॥ १८ ॥ याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः । स चैतत्प्राप्नुयाद्राजन् यत्त्वं प्राप्तो नराधिप॥१९॥अनुतर्षुलमेवैतद् दुःखं भवति मारिष । राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशञ्च भारत । साधुः परमदुःखानां दुःखं भैषज्यमाचरेत् ॥२०॥ ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम् । छिन्ध्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः॥२१॥ न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः । तथोन्मोचयते दुःखा-

---

उनको संसारमें जन्म मरणका दुःख नहीं होता, हे राजन् ! संसार में चक्कर लगाने वालोंको ही यह दुःख भोगना पड़ता है ।१५-१६। इसलिये विचारवान् पुरुष इस संसारका नाश करनेके लिये उद्योग करे, इसमें उपेक्षा (लापरवाही) न करे, उपेक्षा करनेसे यह संसाररूप वृक्ष सैंकड़ों शाखाओंसे बढ़ने लगता है ।१७। हे राजन् ! जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है, क्रोध और लोभका तिरस्कार करता है, जो सन्तोषी और सत्यवादी होता है वही मोक्ष पाता है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस संसारको ही यमलोकमें लेजानेवाला रथ कहा है जो इसके मोहमें पड़जाते हैं वे बुद्धिहीन हैं, हे राजन् ! तुम भी इस संसारमें ही पड़े हो ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिसपुरुषको राज्यके नाशसे, स्नेहियोंके नाशसे और पुत्रोंके नाशसे दुःख होता है, यह दुःख बड़ीभारी तृष्णासे भरा और भयानक है, इसलिये सत्पुरुषको तो इन दुःखोंको दूर करनेके लिये अवश्य ही औषध करनी चाहिये ॥ २० ॥ मनुष्यको चाहिये, कि-अपने मनको वशमें रखकर परमात्माके स्वरूपकी ज्ञानरूप महौषधिसे अपने दुःखरूप रोगका नाश करे ॥ २१ ॥ स्थिरताके साथ संयमका पालन करनेवाला मन जिसप्रकार अपने जीवा-

बुद्धिजालेन संवृताः ॥ २८ ॥ अमूढमदृष्टयो मन्दा भ्राम्यन्ते तत्र तत्र ह । सुमूढमदृष्टयो राजन् व्रजन्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
विशोककरणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच । विदुरस्य तु तद्वाक्यं निशम्य कुरुसत्तमः । पुत्रशोकाभिसन्तप्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥ १ ॥ तं तथा पतितं भूमौ निःसंज्ञं प्रेक्ष्य बान्धवाः । कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षत्ता च विदुरस्तथा ॥ २ ॥ सञ्जयः सुहृदश्चान्ये द्वाःस्था ये चास्य सम्मताः । जलेन सुखशीतेन तालवृन्तैश्च भारत ॥ ३ ॥ पस्पर्शुश्च करैर्गात्रं वीज्यमानाश्च यत्नतः । आश्वास्य तु चिरं कालं धृतराष्ट्रं तथागतम् ॥ ४ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य लब्धसंज्ञो महीपतिः । विललाप चिरं कालं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ५ ॥ धिगस्तु खलु मानु-

---

सूक्ष्म दृष्टिवाले तत्त्वज्ञानी पुरुष उस जालमें न बँधकर सनातन परमपुरुषको पाते हैं ॥२८—२९॥ सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—जनमेजय ! कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र विदुरके इस परम वाक्यको सुनने पर भी पुत्रोंके मरणकी याद आनेसे शोकसे व्याकुल हो वार २ मूर्छा खाकर पृथिवी पर गिरनेलगा ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रको मूर्छित हो पृथिवी पर गिरते देखकर वेदव्यास, विदुर, सञ्जय, दूसरे स्नेही तथा विश्वासपात्र द्वारपाल उनको सावधान करनेके लिये शीतल जलके छींटे देने लगे, ताड़के पंखोंसे पवन करनेलगे तथा शरीरके ऊपर हाथ फेरने लगे इसप्रकार बहुत देरतक उपचार किया तब राजाको चेत हुआ, वह फिर पुत्रोंके मरणकी याद आनेसे दुःखित होकर विलाप करनेलगे,विलाप करते२ कहने लगे, कि-मनुष्यजन्मको धिक्कार है, तिसपर भी विवाह करके पुत्रादि परिवार बढ़ानेको धिक्कार है, क्यों कि— मनुष्योंको पुत्रादिके कारणसे ही वारंवार दुःख

र्थकुशलः प्रभो ॥ १३ ॥ न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदितव्यं परन्तप । अनित्यतां हि मर्त्यानां विजानासि न संशयः ॥ १४ ॥ अध्रुवे जीवलोके च स्थाने वाशाश्वते सति । जीविते मरणान्ते च कस्माच्छोचसि भारत ॥१५॥ प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र वैरस्यास्य समुद्भवः । पुत्रं ते कारणं कृत्वा कालयोगेन कारितः ॥ १६ ॥ अवश्यं भवितव्ये च कुरूणां वैशसे नृप । कस्मात् शोचसि तान् शूरान् गतान् परमिकां गतिम् ॥ १७ ॥ जानता च महाबाहो विदुरेण महात्मना । यतितं सर्वयत्नेन शमं प्रति जनेश्वर ॥ १८ ॥ न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः १९ दैवतानां हि यत् कार्यं मया प्रत्यक्षतः श्रुतम् । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि

ने कहा, कि—हे महाबाहु धृतराष्ट्र ! मैं तुझसे जो कुछ कहता हूँ उसको सुन, हे राजन् ! तू शास्त्र पढ़ा हुआ बुद्धिमान् तथा धर्म और अर्थमें प्रवीण है ॥१३॥ हे परन्तप ! जानने योग्य कोई बात भी तेरी अनजानी नहीं है, निःसन्देह तू इस बातको भी जानता है, कि—सब ही मनुष्य एक न एक दिन मरने वाले हैं ॥ १४ ॥ हे भारत ! यह जीवलोक (मर्त्यलोक) अध्रुव (नाशवान्) है, परब्रह्मका स्थान ध्रुव (नित्य) है और जीवनका अन्त मरण है फिर तू क्यों शोक करता है ? ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस वैरकी उत्पत्ति तो तेरे सामने ही हुई थी, कालने ही तेरे पुत्रको निमित्त बनाकर यह विरोधका बीज बोदिया था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! कौरवोंका नाश तो अवश्य ही होना था, वह होगया उन सब वीरोंको परमगति मिली है ? फिर तू शोक क्यों करता है॥१७॥ हे महाबाहु राजन् ! महात्मा विदुर इस बातको जानता था, इस लिये ही उसनेशान्तिके लिये सब प्रकारका उद्योग कर छोड़ा१८मैं तो यह मानता हूँ,कि—कोई भी मनुष्य चिरकाल तक उद्योग करता रहे तो भी दैवके बनाये हुए मार्गमें उलट फेर नहीं कर सकता

घातयिष्यन्ति दृढैः शस्त्रैः प्रहारिणः । ततस्ते भविता देवि भार-
स्य युधि नाशनम् ॥ २८ ॥ गच्छ शीघ्रं स्वकं स्थानं लोकं धारय
शोभने । य एष ते सुतो राजन् लोकसंहारकारणात् ॥ २९ ॥
कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप । अमर्षी चपलश्चापि
क्रोधनो दुष्प्रसादनः ॥ ३० ॥ दैवयोगात् समुत्पन्ना भ्रातरश्चास्य
तादृशाः । शकुनिर्मातुलश्चैव कर्णश्च परमः सखा ॥ ३१ ॥ समु-
त्पन्ना विनाशार्थं पृथिव्यां सहिता नृपाः । यादृशो जायते राजा
तादृशोऽस्य जनो भवेत् ॥ ३२ ॥ अधर्मो धर्मतां याति स्वामी चेद्धा-
र्मिको भवेत् । स्वामिनो गुणदोषाभ्यां भृत्याः स्युर्नात्र संशयः ३३
दुष्टं राजनमासाद्य गतास्ते तनया नृप । एतमर्थं महाबाहो नारदो

क्षेत्रमें इकट्ठे होकर आपसमें मजबूत शस्त्रोंके प्रहार करतेहुए एक दूसरेको मारडालेंगे तब हे देवी ! उस युद्धमें तेरा भार उतर जायगा ॥ २७-२८ ॥ हे सुन्दरी ! तू शीघ्रही अपने स्थानको जा और उस युद्धके योधाओंके भारको धारण कर, हे राजन् ! गान्धारीके पेटमें तुझसे जो यह दुर्योधन पुत्र पैदाहुआ था यह लोकोंका संहार करनेके लिये कलिका अंश उत्पन्न हुआ था, इस लिये ही वह असहनशील, चपल और क्रोधी था तथा उसके साथमें रहनेवाले भी दुष्टात्मा थे ॥ २९ । ३० ॥ दैवयोगसें उसके भाई भी ऐसेही उत्पन्न होगये थे, शकुनि उसका मामा था और कर्ण उसका परम मित्र था ॥ ३१ ॥ ये सब राजे पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही एक साथ उत्पन्न होगये थे, जैसा राजा होता है उसके पासवाले भी वैसेही होते हैं ॥ ३२ ॥ यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धार्मिक होती है और अधर्मी सेवक भी धार्मिक बनजाते हैं स्वामीमें जैसे गुण दोष होते हैं उसके सेवकोंमें वैसेही गुण दोष आजाते हैं इसमें जराभी सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! दुष्ट राजाको पाकर तेरे पुत्र मारेगये, हे महाबाहो ! इस बातको तत्त्ववेत्ता नारद

धर्मपुत्रेण मया युद्धे निवेदिते । अविग्रहे कौरवाणां दैवन्तु बल-वत्तरम् ॥ ४२ ॥ अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन् कथञ्चन । कृतान्तस्य तु भूतेन स्थावरेण चरेण च ॥ ४३ ॥ भवान् धर्मपरो यत्र बुद्धिश्रेष्ठश्च भारत । मुह्यते प्राणिनां ज्ञात्वा गतिञ्चागतिमेव च ॥ ४४ ॥ त्वान्तु शोकेन सन्तप्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः । ज्ञात्वा युधिष्ठिरो राजा प्राणानपि परित्यजेत् ॥ ४५ ॥ कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि । स कथं त्वयि राजेन्द्र कृपां वै न करिष्यति ॥ ४६ ॥ मम चैव नियोगेन विधेश्चाप्यनिवर्त्तनात् । पाण्डवानाञ्च कारुण्यात् प्राणान्धाराय भारत ॥ ४७ ॥ एवं ते वर्त्तमानस्य लोके कीर्त्तिर्भविष्यति । धर्मार्थः सुमहांस्तात तप्तं स्याच्च

धृतराष्ट्र ! उत्तम राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरसे मैंने भी यह बात कही थी, मेरे यह बात कहने पर धर्मपुत्रने कौरवोंके साथ युद्ध न करनेके लिये बहुतही उद्योग किया, परन्तु दैव बड़ा बलवान् है ४०-४२ हे राजन् ! इस जगत्के स्थावर और जङ्गम प्राणियोंके साथ काल का जो संबन्ध है उसको कोई भी नहीं मेटसकता ॥ ४३ ॥ हे भारत ! तू धर्मात्मा है, बड़ा बुद्धिमान् है, प्राणियोंके कर्मानुसार जन्म और मरणको जानता है तो भी जब मोहमें पड़गया तो फिर क्या कहाजाय ॥४४॥यदि राजा युधिष्ठिरको मालूम होजायगा, कि–तुम शोकसे ऐसे घबड़ा रहे हो और बार२ मूर्छित हो जाते हो तो वह अवश्यही अपने प्राणोंको त्यागदेंगे ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! वीर युधिष्ठिर जब पशु पक्षियों तक पर दयालु है तो फिर तेरे ऊपर दया क्यों न करेगा ? ॥ ४६॥ हे भरतवंशी राजन् ! तू मेरी आज्ञासे और दैवको कोईभी नहीं पलटसकता यह समझ कर तथा पांडवोंके ऊपर दयाभाव लाकर अपने प्राणोंको धारण कर ॥ ४७ ॥ हे तात ! ऐसा वर्त्ताव करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्त्ति होगी और महान् धर्म तथा अर्थका साधन होगा तथा

राजा धर्मपुत्रो महामनाः । कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः २
अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापश्चान्योन्यकारितः । वृत्तांतमुत्तरं ब्रूहि
यद्भाषत सञ्जयः ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । हते दुर्योधने चैव
हते सैन्ये च सर्वशः । सञ्जयो विगतप्रज्ञो धृतराष्ट्रमुपस्थितः ॥४॥
सञ्जय उवाच। आगम्य नानादेशेभ्यो नानाजनपदेश्वराः।पितृलोकं
गता राजन् सर्वे तव सुतैः सह ॥५॥ याचमानेन सततं तव पुत्रेण
भारत । घातिता पृथिवी सर्वा वैरस्यान्तं विधित्सता ॥ ६ ॥ पुत्रा-
णामथ पौत्राणां पितृणाञ्च महीपते । आनुपूर्व्येण सर्वेषां प्रेत-
कार्याणि कारय ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं
घोरं सञ्जयस्य महीपतिः । गतासुरिव निश्चेष्टो न्यपतत् पृथिवी-

सुनाना चाहिये ॥ १॥ कुरुराज उदारचित्त राजा युधिष्ठिरने तथा कृपाचार्य आदि उन तीनोंने भी क्या किया ? ॥ २ ॥ अश्वत्थामाका कर्म और आपसके शापकी कथा मैंने सुनली, परन्तु इसके बादका वृत्तान्त तथा सञ्जयने जो कुछ कहा हो वह मुझे सुनाओ ॥ ३ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे जनमेजय ! रणमें दुर्योधनका और उसकी सब सेनाका नाश होजाने पर व्यासजीका दियाहुआ जिसका दिव्यज्ञान नष्ट होगया था वह सञ्जय राजा धृतराष्ट्रके पास आकर खड़ा होगया और कहनेलगा ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! भिन्न २ देशोंसे अनेकों देशोंके राजे युद्धकरनेको आये थे वे तुम्हारे पुत्रोंके साथ पितृलोकमें चलेगये हैं ॥ ५ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे पुत्रको सदा ही प्रार्थना करके समझाया, तो भी उसने तो वैरका बदला लेनेकी इच्छासे सब पृथिवीका संहार ही कराडाला ॥ ६ ॥ इसलिये हे राजन् ! अब तुम पुत्र पौत्र और पितृरूप इन सबोंका क्रमसे प्रेतकर्म कराओ ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजन् ! सञ्जयकी इस महाभयानक

भूतानि भरतर्षभ ॥ १५ ॥ एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् । यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥ १६ ॥ यांश्चापि निहतान् युद्धे राजंस्त्वमनुशोचसि । न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवं गताः ॥१७॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनुत्यजः १८ सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे च चरितव्रताः । सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना ॥ १९ ॥ शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः । हूयमानाञ्छरांश्चैव सेहुरुत्तमपूरुषाः ॥ २० ॥ एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् । न युद्धादधिकं किञ्चित् क्षत्रि-

तृणोंके अग्रभागोंको चारों ओरसे चलायमान करता है तैसेही प्राणीभी कालके वशमें होकर चलायमान होते हैं ॥ १५ ॥ इस संसारमें सब एकसाथही यात्रा करनेको निकले हैं और सब कालके पास पहुँचेंगे, परन्तु इनमेंसे जिसके ऊपर काल पहले चढ़ायी करता है वह पहले चलेजाता है तो इसमें शोक क्यों करना ? ॥ १६ ॥ और हे राजन ! युद्धमें मरेहुए जिन राजाओंका तुम शोक करते हो, वे शोक करनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि वे तो (क्षत्रियधर्मके अनुसार सामने पहुँचकर संग्राममें लड़ते२ मरे हैं, इसकारण) स्वर्गमें गये हैं ॥ १७ ॥ वीर पुरुष रणमें शरीर छोड़कर जिसप्रकार स्वर्गको जाता है, तैसे पुरुष दक्षिणावाले यज्ञ करनेसे, तप करनेसे और विद्याभ्यास करनेसे स्वर्गमें नहींजाता ॥ १८ ॥ तुम्हारे पुत्र तथा दूसरे सब राजे वेदाभ्यासी, वीर और सदाचारी थे और वे रणमें सन्मुख जूझकर मरे हैं, फिर उनके लिये शोक क्या करना ? ॥ १९ ॥ वीरोंने शरीररूप अग्निमें बाणरूप आहुतियें दी थीं और महात्माओंने अपनेमें होमेजाते हुए बाणोंको सहा था ॥ २० ॥ हे राजन ! मैंने आपसे कहा ही है, कि—क्षत्रियको स्वर्ग देनेवाला युद्धके सिवाय दूसरा

वचनचोदिता । सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत् ॥४॥
ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः । आमन्त्र्यान्योऽ-
न्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः ॥ ५ ॥ ताः समाश्वासयत् क्षत्ता
ताभ्यश्चार्त्ततरः स्वयम् । अश्रुकण्ठीः समारोप्य ततोऽसौ निर्ययौ
पुरात् ॥ ६ ॥ ततः प्रणादः संजज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु । आकुमारं
पुरं सर्वमभवच्छोककर्षितम् ॥७॥ अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देव-
गणैरपि । पृथग्जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ८ ॥ प्रकीर्य
केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च । एकवस्त्रधरा नार्यः परि-
पेतुरनाथवत् ॥ ९ ॥ श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन् ।
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः ॥ १० ॥ तान्युदीर्णानि

साथ दौड़ती२ राजा धृतराष्ट्रके पास आयी ॥ ४ ॥ और बड़े ही शोकमें भरी हुई वे स्त्रियें राजा धृतराष्ट्रके पास आकर आपसमें एक दूसरीको पुकार२ कर बड़े ही जोरसे विलाप करनेलगीं ॥५॥ इस समय विदुरजी स्वयं भी शोकसे व्याकुल होगये थे, तो भी उन्होंने धीरज देकर उन रोती हुई राजरानियोंको चुपाया और फिर सबोंको रथोंमें बैठालकर आप भी अपने रथमें बैठे तथा वे सब नगरमेंसे चलदिये ॥ ६ ॥ इस समय कौरवराजके सब महलों में रोवापीटीका बड़ा कोलाहल मचरहा था, बूढ़ेसे लेकर बालक तक सब नगर शोकसे व्याकुल होरहा था ॥ ७ ॥ जिन स्त्रियोंको पहले देवताओंने भी नहीं देखा था उन पतिहीन हुईं स्त्रियोंके ऊपर उस समय साधारण मनुष्यों तककी दृष्टि पड़ने लगी ॥ ८ ॥ कौरवकुलकी स्त्रियोंने गहने उतार डाले थे, परम शोभायमान केशोंको खोलडाला था और एक वस्त्र पहरे अनाथकी समान रणभूमिकी ओरको जारही थीं ९ सफेद्पर्वतकी समान ऊँचे महलमें से जिस समय कौरववंशकी स्त्रियें रणभूमिकी ओरको जानेके लिये बाहर निकलने लगीं उस समय जिनका पति मारा गया हो ऐसी

शिल्पिनो वणिजो वैश्या सर्वे कर्मोपजीविनः । ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ १७ ॥ तासां विक्रोशमानानामार्त्तानां कुरुसंक्षये । प्रादुरासीन्महाँञ्छब्दो व्यथयन् भुवनान्युत ॥ १८ ॥ युगान्तकाले संप्राप्ते भूतानां दह्यतामिव । अभावः स्यादयं प्राप्त इति भूतानि मेनिरे ॥१६॥ भृशमुद्विग्नमनसस्ते पौराः कुरुसंक्षये । प्राक्रोशन्त महाराज स्वनुरक्तास्तदा भृशम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
धृतराष्ट्रस्य पुरान्निर्याणे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच । क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददृशुस्तान्महारथान् । शारद्वतं कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव च ॥ १ ॥ ते तु दृष्ट्वैव राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् । अश्रुकण्ठा विनिःश्वस्य रुदन्तमिदमब्रुवन् २

तथा दूसरे अनेकों जातिके कारीगरी पर आजीविका करनेवाले पुरुष भी उस राजाके पीछे २ रणभूमिकी ओरको चल दिये १७ कौरवोंके मरणके समय कौरववंशकी स्त्रियें रोरही थीं, उनके बड़ेभारी कोलाहलके कारण सब लोग दुःखी होरहे थे॥ १८ ॥ और जैसे प्रलयकालमें लोक अग्निसे जलने लगते हैं, उस समय सब लोकोंका संहार होजाता है, ऐसे इस समय भी लोग समझने लगे, कि–अब सब प्राणियोंका संहार होजायगा ॥ १६ ॥ तथा हे महाराज ! उस समय कौरवोंके ऊपर प्रेम रखनेवाले नगर निवासी लोग भी चित्तमें अत्यन्त खिन्न होकर बहुत ही रोने लगे ॥ २० ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजा जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुरसे एक कोस पहुँचे होंगे, कि उनको कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृतवर्मा यह तीनों महारथी मिले ॥१॥ वे तीनों वीर पुरुष, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रको देखते क्षण ही आँसू भरलाये और उनका कण्ठ रुक गया तथा लंबे साँस

संख्ये तन्न शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥ न चापि शत्रवस्तेषामृध्यन्ते राज्ञि पाण्डवाः । शृणु यत् कृतमस्माभिरश्वत्थामपुरोगमैः ॥१०॥ अधर्मेण हतं श्रुत्वा भीमसेनेन ते सुतम् । सुप्तं शिबिरमासाद्य पाण्डूनां कदनं कृतम् ॥ ११ ॥ पञ्चाला निहताः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रौपदेयाश्च पातिताः ॥ १२ ॥ तथा विशसनं कृत्वा पुत्रशत्रुगणस्य ते । माद्रवाम रणे स्थातुं न हि शक्यामहे त्रयः ॥ १३ ॥ ते हि शूरा महेष्वासाः क्षिप्रमेष्यन्ति पाण्डवाः । अमर्षवशमापन्ना वैरं प्रतिजिहीर्षवः ॥ १४ ॥ ते हतानात्मजाञ्छ्रुत्वा प्रमत्ताः पुरुषर्षभाः। निरीक्षन्तः पदं शूराः क्षिप्रमेव यशस्विनि ॥ १५ ॥ तेषां तु कदनं कृत्वा संस्थातुं नोत्सहामहे । अनुजानीहि नो राज्ञि मा च शोके मनः कृथाः ॥ १६ ॥ राजं-

---

इस लिये तुम्हें अपने पुत्रोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये ९ हे रानी ! तुम्हारे पुत्रोंके शत्रु पांडव भी कुशलसे नहीं रहे हैं, अश्वत्थामाको आगे करके हमने जो काम किया है उसको तुम सुनो ॥ २० ॥ जब हमने सुना, कि-तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको भीमसेनने अधर्मसे मारडाला है, तब हमने पांडवोंकी सोती हुई छावनीमें पहुँचकर सोते हुए ही सबोंका संहार करडाला ११ धृष्टद्युम्न आदि सब पंचाल मारेगये, द्रुपदके सब पुत्रोंको और द्रौपदीके पुत्रोंको भी हमने मारडाला ॥ १२ ॥ तुम्हारे पुत्रके सब शत्रुओंका इसप्रकार संहार करके भाग आये हैं, क्योंकि-हम तीनों पाण्डवोंके सामने रणमें नहीं ठहर सकते ॥१३॥ हे यशस्विनी गान्धारी ! पांडव शूर हैं, बड़े धनुषधारी हैं, किसीके दबावको सह नहीं सकते और वैरका बदला लेना चाहते हैं, बड़े ही मदमत्त हैं, वे अपने पुत्रोंके मरणका समाचार सुनते ही हमारे पैरोंके चिह्न देखते२ तुरन्त ही हमारे पीछे२ दौड़ आवेंगे१४-१५ उनका संहार करके अब हममें यह साहस नहीं है, कि-यहाँ खड़े

च्छकमरिन्दमाः ॥ २३ ॥ समासाद्याथ वै द्रौणिं पाण्डुपुत्रा महारथाः । व्यजयंस्ते रणे राजन् विक्रम्य तदनन्तरम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि कृपद्रौणिभोजदर्शने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच । हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः । शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यान्तं नागसाह्वयात् ॥ १ ॥ सोऽभ्ययात् पुत्रशोकार्त्तः पुत्रशोकपरिप्लुतम् । शोचमानं महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ २ ॥ अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना । युयुधानेन च तथा तथा चैव युयुत्सुना ॥ ३ ॥ तमन्वयात् सुदुःखार्त्ता द्रौपदी शोककर्षिता । सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन् समागताः ॥ ४ ॥ स गङ्गामनुवृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम । कुररीणामिवार्त्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह ॥ ५ ॥

इच्छानुसार भागगये थे ॥ २३ ॥ और फिर महारथी पांडवोंने अश्वत्थामाको पकड़ लिया था और रणमें युद्ध करके उसको हरा दिया था ॥ २४ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

वैशंपायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! (रात्रिके घोर संग्राममें) सब सेनाके मारेजानेका वृत्तान्त सुनकर पीछेसे उन्होंने सुना, कि—हमारे बूढ़े ताऊजी अपने पुत्रोंको जलदान देनेके लिये हस्तिनापुरमेंसे चलेगये हैं ॥ १ ॥ हे महाराज ! उस समय पुत्रोंके मरणके शोकसे व्याकुल हुए राजा युधिष्ठिर, पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हुए, इसलिये ही शोक करते हुए राजा धृतराष्ट्रके पास अपने भाइयोंको लेगये ॥ २ ॥ वीर और महात्मा श्रीकृष्ण, सात्यकी और युयुत्सु भी उनके साथ ही थे ॥ ३ ॥ पंचाल राजाओंकी रानियोंके साथ शोकसे दुर्बल हुई दुःखार्त्ता द्रौपदी भी उनके पीछे २ गयी ॥ ४ ॥ हे भरतसत्तम ! राजा युधिष्ठिरने गङ्गाके किनारे पर पहुँचकर व्याकुल हुई टटीरियोंकी समान रोती हुई

पाण्डवं परिषस्वजे ॥ १२ ॥ धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत । दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद्द दिधक्षुरिव पावकः ॥ १३ ॥ स कोपपावकस्तस्य शोकवायुसमीरितः । भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते ॥ १४ ॥ तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः । भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ॥ १५ ॥ प्रागेव तु महाबुद्धिर्बुध्वा तस्येङ्गितं हरिः । सन्विधानं महाप्राज्ञस्तत्र चक्रे जनार्दनः ॥ १६ ॥ तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् । बभञ्ज बलवान्राजा मन्यमानो वृकोदरम् ॥ १७ ॥ नागायुतबलप्राणः स राजा भीममायसम् । भंक्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १८ ॥ ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।

ने शोकसे व्याकुल होकर अपने पुत्रोंका नाश करनेवाले उन राजा युधिष्ठिरको अप्रसन्न मनसे आलिङ्गन किया ॥ १२ ॥ हे भारत ! धर्मराजको आलिङ्गन करके शान्त करनेके बाद धृतराष्ट्रके चित्तमें पाप समागया और भीमसेनको अग्निकी समान भस्म करडालना चाहा ॥ १३ ॥ उसका कोपरूप अग्नि शोककी वायुसे धधकउठा था, इसलिये वह ऐसा दीखनेलगा, कि-मानो भीमसेनरूप वनको जलाकर भस्मही करडालेगा ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रके इस खोटे अभिप्रायको पहलेसेही जानगये थे, इसलिये मिलनेके लिये आगे को बढ़तेहुए भीमसेनको दोनों हाथोंसे पकड़कर खेंचलिया और धृतराष्ट्रके सामने लोहेका भीम खड़ा करदिया ॥ १५ ॥ महाबुद्धिमान् (अन्तर्यामी), श्रीहरि पहलेसेही धृतराष्ट्रके मनके भावको ताड़गये थे, इसलिये उन्होंने पहलेही यह प्रबन्ध करलिया था १६ बलवान् राजा धृतराष्ट्रने लोहेके भीमको वास्तविक भीम मानकर दोनों हाथोंसे दबोचतेहुए बड़े जोरसे आलिङ्गन किया और उसको तोड़डाला ॥ १७ ॥ राजा धृतराष्ट्रमें दशहजार हाथियोंकी समान बल था, लोहेके भीमका चूरा करनेमें उनकी छाती दबाव खागयी

प्राप्य जीवन् कश्चिन्न मुच्यते । एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्न कश्चन ॥ २६ ॥ तस्मात् पुत्रेण या तेऽसौ प्रतिमा कारितायसी। भीमस्य सेयं कौरव्य तवैवोपहृता मया ॥ २७ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तापाद्धर्मादपहृतं मनः । तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि ॥ २८ ॥ न त्वेतत्ते क्षमं राजन् हन्यास्त्वं यद् वृकोदरम् । न हि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथञ्चन ॥ २९ ॥ तस्माद्यत् कृतमस्माभिर्मन्यमानैः शमं प्रति । अनुमन्यस्व तत् सर्वं मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि आयसभीमभंगे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कौलिया भरकर दवोचनको कौन सहसकता है ? ॥ २५ ॥ जैसे कालके पास पहुँचकर कोई भी जीताहुआ नहीं छूटसकता, ऐसे ही तुम्हारी कौलियामें पहुँचकर कोईभी जीता नहीं बचसकता २६ इसलिये हे कुरुवंशी राजन ! तुम्हारे पुत्रने जो भीमसेनकी लोहे की मूर्ति बनवा रक्खी थी, वह प्रतिमा ही मैंने तुम्हें अर्पण कर दीथी ॥ २७ ॥ क्योंकि—हे राजेन्द्र ! इस समय तुम्हारा मन पुत्रके शोकसे अधर्मी होगया था, इसलिये ही तुम भीमसेनको मारडालना चाहते थे ॥ २८ ॥ परन्तु हे राजन् ! आपको यह उचित नहीं था, कि—जो तुम भीमसेनको मारडालनेके लिये उद्यत होगये थे, हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र तो किसीप्रकार जीवित रह ही नहीं सकते थे (जब उनकी आयु पूरी होचुकी थी तो भीमसेन न भी मारता तो किसी और निमित्तसे उनका नाश अवश्य ही होजाता) ॥ २९ ॥ इसलिये सर्वत्र शान्ति रखनेकी इच्छासे हमने जो कुछ किया है, उस सब कामका अब तुम अनुमोदन करो और अपने मनमेंसे शोकको दूर करदो ॥ ३० ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ॥ छ ॥

आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः ७ ततोन्यद्वृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत। राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः८ आत्मापराधादापन्नस्तत् किं भीमं जिघांससि। तस्मात् संयच्छ कोपं त्वं स्वमनुस्मृत्य दुष्कृतम् ॥ ९ ॥ यस्तु तां स्पर्द्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत् सभाम्। स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिजिहीर्षता १० आत्मनोऽतिक्रमं पश्य पुत्रस्य च दुरात्मनः। यदनागसि पांडूनां परित्यागस्त्वया कृतः ॥११॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप। उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १२ ॥ एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव। पुत्रस्ने-

परन्तु हित और अहितकी बात समझाने पर भी जो अपने हितकी बातको स्वीकार नहीं करता है, किन्तु अन्यायही करता रहता है वह राजा आपत्तिमें आपड़ने पर शोकही किया करता है ॥७॥ हे भरतवंशी राजन्! तुम अपने उलटे कियेहुए वर्त्तावको देखो, तुम तो अपने मनको भी वशमें नहीं रखसके थे, केवल दुर्योधनकेही वशमें होगये थे ॥ ८ ॥ तुम तो अपनेही अपराधसे विपत्तिमें पड़े हो, फिर भीमको क्यों मारना चाहते हो? इसलिये तुम क्रोध को वशमें रक्खो और अपने अपने दुष्कर्मको याद करो॥ ९॥ जिस तुम्हारे क्षुद्र पुत्र दुर्योधनने पांडवोंसे डाह रखने के कारण द्रौपदीको बीच सभामें बुलवा लिया था उसको वैरका बदला लेना चाहने वाले भीमसेनने मारडाला ॥ १० ॥ तुम अपने और अपने दुष्टात्मा पुत्रके अपराधको देखो! पाण्डव निर्दोष थे तो भी तुमने उनको राज्यमेंसे निकाल दिया था॥ ११ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–इस प्रकार श्रीकृष्णने सब सत्य २ बात कही, तब राजा धृतराष्ट्रने देवकीनन्दनको उत्तर दिया कि–॥ १२ ॥ हे महाबाहु माधव! तुम जो कुछ कहरहे हो यह सब ठीक है, परन्तु पुत्रका स्नेह बड़ा बलवान् है, उसने ही मुझे धीरजसे डिगा दिया था १३

हतामित्रं युधिष्ठिरमुपागतम् । गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ २ ॥ तस्याः पापमभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति । ऋषिः सत्यवतीपुत्रः प्रागेव समबुध्यत ॥ ३ ॥ स गङ्गायामुपस्पृश्य पुण्यगन्धि पयः शुचि । तं देशमुपसम्पेदे परमर्षिर्मनोजवः ४ दिव्येन चक्षुषा पश्यन् मनसा तद्गतेन च । सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत ॥५॥ स स्नुषामब्रवीत्काले कल्यवादी महातपाः। शापकालमवाक्षिप्य शमकालमुदीरयन् ॥ ६ ॥ न कोपः पांडवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि । वचो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम ॥ ७ ॥ उक्तास्यष्टदशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता । शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥ सा तथा याच्यमाना

जानकर उनको शाप देना चाहा ॥ २ ॥ पांडवोंके विषयमें गान्धारीका विचार पापसे भराहुआ है, इस बातको ऋषि वेद व्यासजी पहले ही जानगये थे ॥ ३ ॥ इसलिये वह महर्षि गङ्गाके पुण्यगन्धवाले पवित्र जलका आचमन करके मनकी समान वेगसे वहाँ गान्धारीके पास आपहुँचे ॥ ४ ॥ वेदव्यासजी दिव्यदृष्टिसे तथा उनमें अपने मनकी गतिको लेजाकर सब प्राणियोंके अन्तःकरणोंको जानते थे, इसलिये वह सावधान होगये थे ॥५॥ सत्यवक्ता महातपस्वी वेदव्यासजीने शापके समयको चुकाकर क्षमाके समयको प्रकट करदिया था, वह पुत्रवधू गान्धारीसे कहने लगे, कि-हे गान्धारी ! तू पांडवोंके ऊपर क्रोध न करना, शान्त हो, शान्त हो, अपनी जिन्हासे निकलते हुए शापके वचनको रोक और मेरी बात सुन-॥ ६ ॥ ७ ॥ तेरा पुत्र युद्धमें विजय पानेकी इच्छासे अठारह दिन तक जब वह संग्राममेंको जाया करता था तो क्रमसे तुझे प्रणाम करके कहा करता था, कि-हे माताजी ! मैं शत्रुओंके सामने युद्ध करनेको जाता हूँ इतने समय तक तुम मुझे आशीर्वाद दो, कि-मेरी विजय हो ॥ ८ ॥ जब

यथैव कुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथा मया। तथैव धृतराष्ट्रेण रक्षितव्या यथा मया ॥ १५ ॥ दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च। कर्णदुःशासनाभ्याञ्च जातोऽयं कुरुसंक्षयः ॥१६॥ नापराध्यति बीभत्सुर्न च पार्थो वृकोदरः। नकुलः सहदेवो वा नैव जातु युधिष्ठिरः ॥१७॥ युध्यमाना हि कौरव्याः कृतमानाः परस्परम्। निहताः सहिताश्चान्यैस्तत्र नास्त्यप्रियं मम ॥ १८ ॥ किन्तु कर्माकरोद्भीमो वासुदेवस्य पश्यतः। दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे महामनाः ॥ १९ ॥ शिक्षयाभ्यधिकं ज्ञात्वा चरन्तं बहुधा रणे। अधो नाभ्याः प्रहृतवान् तन्मे कोपमवर्द्धयत् ॥ २० ॥ कथं-

---

पुत्रोंके शोकके कारण मेरा मन रोकने पर भी जोरावरी विह्वल हुआजाता है ॥ १४ ॥ जैसे कुन्ती पांडवोंकी रक्षा करती है, ऐसे ही मुझे भी पांडवोंकी रक्षा ही करनी चाहिये, और जैसे मैं पांडवोंकी रक्षा करूँ ऐसेही धृतराष्ट्रको भी करनी चाहिये ॥ १५ ॥ दुर्योधन सुवलपुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासनके अपराधसे कौरवोंका संहार हुआ है (यह मैं जानती हूँ)१६ इसमें अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरका जरा भी अपराध नहीं है (यह भी मैं जानती हूँ) १७ कौरव अभिमान करके आपसमें लड़पडे, इसकारण ही दूसरोंको भी साथमें लेकर मारेगये,यह मुझे बुरा नहीं मालूम होता है १८ परन्तु बड़े साहसी भीमसेनने गदायुद्धमें दुर्योधनको बुलाकर श्रीकृष्णके देखतेहुए जो काम करडाला (वही मेरे मनको दुःख देरहा) है ॥१९॥ दुर्योधनको गदायुद्धमें अधिक शिक्षित जान कर तथा रणमें अनेकों प्रकारसे घूमता हुआ देख उसने दुर्योधनको नाभिसे नीचेके भागमें गदाका प्रहार करके मारडाला, यह अनुचित बात ही मेरे कोपको बढारही है ॥ २० ॥ महात्मा

न हरेद्राज्यमिति चैतत् कृतं मया ॥ ५ ॥ राजपुत्रीञ्च पाञ्चाली-मेकवस्त्रां रजस्वलाम् । भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान् यत् सुतस्तव६ दुर्योधनमसंगृह्य न शक्या भूः ससागरा । केवला भोक्तुमस्माभिर-तश्चैतत्कृतं मया ॥ ७ ॥ तथाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत् । द्रौपद्या यत् सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ८ ॥ तदैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारश्च ते सुतः । धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा ॥ ९ ॥ वैरमुद्दीपितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत् । क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत् कृतं मया ॥ १० ॥ वैरस्यास्य गताः पारं हत्वा दुर्योधनं रणे । राज्यं युधिष्ठिरः प्राप्तो वयञ्च गतमन्यवः ११ गान्धार्युवाच । न तस्यैष वधस्तात यत् प्रशंससि मे सुतम् । कृत-

था ॥ ५ ॥ और तुम्हारे पुत्रने रजस्वला धर्मवाली एक वस्त्र-धारिणी द्रौपदीसे जो वचन कहे थे वह तो सब तुम्हें मालूम ही हैं ॥ ६ ॥ तथा दुर्योधनको मारे विना हम समुद्रसहित पृथिवी पर निष्कण्टक राज्य नहीं करसकते थे, इसलिये ही मैंने ऐसा काम किया है ॥ ७ ॥ तथा तुम्हारे पुत्रने हमारा अप्रिय करनेमें भी कमी नहीं की थी, उसने बीचसभामें द्रौपदीको वाम-जङ्घा दिखायी थी ॥८॥ उस समय ही तुम्हारे दुराचारी पुत्रको हमें मारडालना चाहिये था, परन्तु उस समय धर्मराजकी आज्ञासे हम चुपचाप बैठेरहे थे ॥ ९ ॥ हे रानीजी ! तुम्हारे पुत्रने ही वैरको बढ़ातेर इतना बढ़ादिया था और वनमें हमको बड़ेर क्लेश दिये थे, इसलिये ही मैंने ऐसा काम किया ॥ १० ॥ दुर्योधनको रणमें मारकर हम इस वैरके पार पहुँचगये, राजा युधिष्ठिरको राज्य मिलगया और हमारा क्रोध दूर भी होगया ॥ ११ ॥ गान्धारीने कहा, कि-हे तात ! तू मेरे पुत्रकी इसप्रकार प्रशंसा कररहा है इससे तो यह उसका वध ही नहीं है परन्तु जो कुछ तू मुझसे कहरहा है यह सब (निन्दित) काम भी उसने किया

हृदि वर्त्तते ॥ १८ ॥ क्षत्रधर्माच्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः । प्रतिज्ञान्तामनिस्तीर्य ततस्तत्कृतवानहम् ॥ १९ ॥ न मामर्हसि गान्धारि दोषेण परिशङ्कितुम् । अनिगृह्य पुरा पुत्रानस्मास्वनपकारिषु । अधुना किं नु दोषेण परिशङ्कितुमर्हसि ॥ २० ॥ गान्धार्युवाच । वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान्निघ्नंस्त्वमपराजितः । कस्मान्न शेषयेः कञ्चिद्येनाल्पमपराधितम् ॥ २१ ॥ सन्तानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः । कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता २२ शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि । न मे दुःखं भवेदेतद्यदि त्वं धर्ममाचरेः ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु

मनमें घूमरही है ॥ १८ ॥ हे रानीजी ! यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता तो अनन्त वर्षों तक क्षत्रिय धर्मसे भ्रष्ट गिना जाता (तथा मैं नरकमें न पडूँ) इसलिये मैंने (मानो दुःशासनका रुधिर पीरहा होऊँ ऐसा) वह कर्म किया था १९ हे गांधारी ! तुम्हें मेरे ऊपर अपराधका सन्देह नहीं करना चाहिये, तुमने पहलेसे ही अपने पुत्रोंको वशमें नहीं किया तो फिर अब हम निरपराधियोंके ऊपर अपराधका सन्देह क्यों करती हो ? ॥ २० ॥ गान्धारीने कहा, कि—हे भीम ! तुझे कोई जीत नहीं सका और तूने इस बूढ़े राजाके सौ पुत्रोंको मारडाला उनमेंसे थोड़ासा अपराध करनेवाले एकाधको क्यों नहीं छोड़ दिया ? ॥ २१ ॥ हे तात! हम बूढ़े हैं, हमारा राज्य तुमने छीन लिया है, तो फिर हम दोनों अन्धोंकी लकड़ीरूप एक सन्तानको भी तूने क्यों नहीं छोड़दिया ? ॥ २२ ॥ हे तात ! मेरे पुत्रोंको मारतेर तूने यदि एकको भी छोड़दिया होता तो मुझे तेरे कारणसे इतना दुःख नहीं पहुँचता और मैं यही मानलेती कि—तूने अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन किया है ॥ २३ ॥ वैशम्पायन करते हैं कि—इसप्रकार भीमसे कहकर पुत्र और पौत्रोंके

च्छद्वासुदेवस्य पृष्ठतः। एवं सञ्चेष्टमानांस्तानितश्चेतश्च भारत २१
गान्धारी विगतक्रोधा सान्त्वयामास मातृवत्। तया ते समनुज्ञाता
मातरं वीरमातरम् ॥३२॥ अभ्यगच्छन्त सहिता पृथां पृथुलवक्षसः।
चिरस्य दृष्ट्वा सा पुत्रान् पुत्राधिभिरभिप्लुता ॥३३॥ बाष्पमाहा-
रयद्देवी वस्त्रेणावृत्य वै मुखम्। ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तथा
पृथा ॥३४॥ अपश्यदेतान् शस्त्रौघैर्बहुधा परिविक्षतान्। सा तानेः
कैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः ॥ ३५॥ अन्वशोचत दुःखार्त्ता
द्रौपदीञ्च हतात्मजाम् । रुदन्तीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां
भुवि ॥ ३६ ॥ द्रौपद्युवाच। आर्ये पौत्राः क्व ते सर्वे सौभद्रस-
हिता गताः। न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीम् ३७

पड़गये ॥ २६—३० ॥ यह देखते ही अर्जुन श्रीकृष्णके पीछेको दुबक गया और हे भरतवंशी राजन्! अन्य पांडव भी इधर उधरको खिसकने लगे ॥ ३१ ॥ यह देखकर गान्धारीका क्रोध शान्त होगया और उसने पांडवोंको माताकी समान धीरज देकर वीरमाता कुन्तीके पास जानेकी आज्ञा दी ॥ ३२ ॥ विशाल वक्षःस्थलवाले पांडव इकट्ठे होकर माता कुन्तीके पासगये, पुत्रोंके दुःखसे पीड़ा पानेवाली कुन्ती चिरकालमें पुत्रोंको देखकर वस्त्रसे मुखको ढकती हुई आँसू बहाने लगी, माताको रोती देखकर पांडव भी रोनेलगे, कुन्ती पुत्रोंके साथ रोनेके अनन्तर ॥ ३३—३४ ॥ पुत्रोंके शरीरोंको देखने लगी तो उनके शरीर अधिकतर शस्त्रोंसे घायल हुए दीखे, फिर कुन्तीने हरएक पुत्रके शरीर पर बार २ हाथ फेरा ॥ ३५ ॥ जिसके पुत्र मारे गये थे ऐसी द्रौपदी भूमि पर पड़ी२ रोरही थी, उसको देखकर भी कुन्ती दुःखसे व्याकुल हो शोक करने लगी ॥ ३६ ॥ यह देखकर द्रौपदी कुन्तीसे कहने लगी कि—हे सासूजी! तुम्हारे अभिमन्यु आदि सब पोते एक साथ कहाँगये? तुम तपस्विनीको देखे बहुत दिन होगये तो भी

तथैवाहं को वामाश्वासयिष्यति । ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रादानिकपर्वणि
पृथापुत्रदर्शने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तं जलप्रादानिकं पर्व

अथ स्त्रीविलाप पर्व ।

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु गान्धारी कुरूणामवकर्त्तनम् । अपश्यत्तत्र तिष्ठन्ती दूराद्दिव्येन चक्षुषा ॥ १ ॥ पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी । उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी ॥ २ ॥ वरदानेन कृष्णस्य महर्षेः पुण्यकर्मणः । दिव्यज्ञानबलोपेता विविधं पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥ ददर्श च बुद्धिमती दूरादपि यथान्तिके । रणाजिरे नृवीराणामद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४ ॥ अस्थिकेशवसाकीर्णं शोणितौघपरिप्लुतम् । शरीरैर्बहुसाहस्रैर्विनिकीर्णं

हूँ और ऐसी ही तू भी है (यदि तू ऐसे रोवेगी) तो हम दोनोंको कौन धीरज देसकेगा ? मेरे अपने अपराधसे ही यह श्रेष्ठ कुलका नाश हुआ है ॥ ४४ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! गांधारी पतिव्रता, महाभाग्यवती, पतिके साथ रहकर धर्माचरण करनेवाली, महातपस्विनी और सदा सत्य बोलनेवाली थी, पवित्र कर्म करने वाले महर्षि वेदव्यासजीके वरदानसे उसमें दिव्य ज्ञानका बल आगया था, उसने दूर ही रहकर दिव्य नेत्रसे कौरवोंका सब रणक्षेत्र देखा और अनेकों प्रकारके विलाप करने लगी १-३ रणक्षेत्र बहुत दूर था, तो भी बुद्धिमती गान्धारीको ऐसा दीखता था मानो समीप ही है वीर पुरुषोंका वह रणक्षेत्र रोमाञ्च खडे करनेवाला बडा ही अद्भुत था ४ उसमें हड्डियें, बाल और चरबी बिखरी हुई थी, रुधिरके प्रवाह बह रहे थे, और चारोंओर

स्त्रियः । महार्हेभ्योथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥ १३ ॥
अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्त्ता भरतस्त्रियः । शरीरेष्वस्खलन्नन्या
पतन्त्यश्चापरा भुवि ॥ १४ ॥ श्रान्तानाञ्चाप्यनाथानां नासीत्
काचन चेतना । पाञ्चालकुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत् ॥१५॥
दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम् । दृष्ट्वायोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा
सुबलात्मजा ॥ १६ ॥ ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ पश्यैताः पुंडरी-
काक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः । प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररी-
रिव माधव ॥ १८ ॥ अमूस्त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भरतर्षभान् ।

कुओंके मांसको खारहे थे ॥ १२ ॥ रुद्रके क्रीड़ा करनेके स्थान की समान रणक्षेत्रको देखकर राजपुत्रोंकी स्त्रियें चीखें मार२ कर रोतीहुई उन अपने बहुमूल्य रथोंपरसे नीचे गिरपड़ीं ॥ १३ ॥ पहले कभी न देखेहुए उस दृश्यको देखकर ये भरतवंशकी स्त्रियें दुःखी होगयीं, उनमेंसे कितनी ही तो पछाड़ें खानेलगीं और कितनियों ही के शरीर मूर्छित होकर पृथिवी पर ही पड़े रह गये ॥ १४ ॥ उन थकी हुई अनाथ स्त्रियोंको कुछ होश ही नहीं था, पंचाल और कुरुवंशकी स्त्रियोंकी बड़ी दयाजनक दशा होरही थी ॥१५॥ उनका चित्त दुःखके मारे बड़ा व्याकुल होरहा था, उनके रोनेके दुन्दसे रणभूमिमें चारों ओर कुहराम मचा हुआ था ऐसी महाभयावनी रणभूमिको धर्मको जाननेवाली सुबल-कुमारी गान्धारीने देखा ॥ १६ ॥ और फिर वह कमलसमान नेत्रोंवाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको अपने पास बुलाकर तथा दिव्य-चक्षुसे रणभूमिकी सब दशा और कौरवोंके संहारको देखकर कहनेलगी, कि-॥१७॥ हे पुण्डरीकाक्ष माधव ! जिनके पति मर गये हैं ऐसी खुले केशोंवाली मेरी बहुओंको देखिये, ये टटिरियों की समान विलाप कररही हैं ॥ १८ ॥ देखो ! इन स्त्रियोंमेंसे

र्दन ॥ २५ ॥ पञ्चालानां कुरूणाञ्च विनाशे मधुसूदन ।
पञ्चानामपि भूतानामहं वधमचिन्तयम् ॥ २६ ॥ तान् सुपर्णाश्च
गृध्राश्च विकर्षन्त्यसृगुक्षितान् । विगृह्य चरणैर्गृध्राः भक्षयन्ति
सहस्रशः ॥ २७ ॥ जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोणभीष्मयोः ।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति ॥ २८ ॥ अवध्यकल्पा-
न्निहतान् गतसत्त्वानचेतसः । गृध्रकंकवटश्येनश्वशृगालादनी-
कृतान् ॥ २९ ॥ अमर्षवशमापन्नान् दुर्योधनवशे स्थितान् ।
पश्येमान् पुरुषव्याघ्रान् संशान्तान् पावकानिव ॥ ३० ॥ शयाना
ये पुरा सर्वे मृदूनि शयनानि च । विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृता-
मधिशेरते ॥ ३१ ॥ बन्दिभिः सततं काले स्तुवद्भिरभिनन्दिताः

र्दन ! इस ऐसे रणक्षेत्रको देखकर मैं शोकके मारे भस्म हुईजाती हूँ ॥ २५ ॥ हे मधुसूदन ! पंचाल और कौरव राजाओंका नाश होजानेसे मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि–पञ्चभूतका रचा हुआ सब जगत् ही नष्ट होगया ॥ २६ ॥ वह देखिये–उन राजाओंको रुधिरमें सनेहुए गरुड और गिद्ध रणमें खैंचे फिरते हैं और अपने पैरोंसे पकड २ कर उनको खारहे हैं ॥ २७ ॥ इस संग्राममें जयद्रथ, कर्ण, द्रोण, भीष्म और अभिमन्यु मारे जायँगे, क्या इस बातका कोई अपने मनमें विचार भी ला सकता था ? ॥ २८ ॥ परन्तु हाय ! जो मरनेके योग्य नहीं थे वे मारे गये, हे मधुसूदन ! मरजाने पर भी जीवितसे दीखते हुए, प्राण और चेतनाहीन,दुर्योधनके वशमें रहनेवाले इन राजाओंको गिद्ध कङ्क, काकोल, शिकरे, कुत्ते और गीदड़ आदिने फाड़ खाया है जरा इनकी ओरको देखो तो सही ये शान्त हुए अग्निसे दीख रहे हैं॥२९॥३०॥ पहले जो महापुरुष कोमल शय्याओंपर सोया करते थे, हाय ! वे आज मरकर खुली भूमि पर सो रहे हैं ३१ जो समय२पर स्तुति करनेवाले वन्दीजनोंकी स्तुतियें सुना करतेथे,

महात्मनाम् । शातकौम्भ्यः स्रजश्चित्रा विप्रकीर्णाः समन्ततः ३९ एते गोमायवो भीमा निहतानां यशस्विनाम् । कण्ठान्तरगतान् हारानाक्षिपन्ति सहस्रशः ॥४०॥ सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त बन्दिनः । स्तुतिभिश्चापरार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः ॥ ४१ ॥ तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः । कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम् ॥ ४२ ॥ रक्तोत्पलवनानीव विभान्ति रुचिराणि च। मुखानि परमस्त्रीणां परिशुष्काणि केशव ॥ ४३ ॥ रुदिताद्विरता ह्येता ध्यायन्त्यः सपरिच्छदाः । कुरुस्त्रियोभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः ॥ ४४ ॥ एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च । रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम् ॥ ४५ ॥ श्यामानां

नहीं कररहे हैं ॥ ३८ ॥ कितनेही महात्माओंको मांसाहारी प्राणी रणमें घसीटरहे हैं, इसलिये इनकी सोनेकी विचित्र मालायें चारों ओर बिखरी पड़ी हैं ॥ ३९ ॥ ये हजारों भयानक गीदड़ मरेहुए महात्मा पुरुषोंके गलेमेंके हारोंको खेंचरहे हैं ॥ ४० ॥ शिक्षा पाये हुए बन्दीजन जिन वीर राजाओंको पिछली रातमें उत्तम २ स्तुतियोंसे तथा विवेकभरा वाणियोंसे जगाया करते थे, उन वीर पुरुषोंके लिये दुःखसे व्याकुलहुई ये सुन्दरी स्त्रियें इस समय दयाजनक रूपसे रोरही हैं, इसलिये हे केशव ! मैं दुःख और शोक से बहुतही दबरही हूँ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे कृष्ण ! इन कौरव राजाओंकी रानियोंके सूखेहुए मुख लालकमलोंके सूखेहुए वनों से मालूम होरहे हैं ॥ ४३ ॥ ये कुरुवंशी राजाओंकी स्त्रियें रोना बन्द करके शोक करतीहुई अपने परिवारके साथ, अपने पति भाई आदिकोंको खोजनेके लिये उनकी ओरको जारही हैं और यह देखो उनको देखकर महादुःखी होरही हैं ॥ ४४ ॥ यह देखो सुवर्ण और सूर्यकी समान चमक मारतेहुए परन्तु क्रोधके कारण और रोनेसे कुरुवंशी राजाओंकी स्त्रियोंके मुख कैसे लाललाल

नेदमस्त्येति दुःखिताः ॥ ५२ ॥ बाहूरुचरणानन्यान् विशिखो-न्मथितान्पृथक् । संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्च्छन्त्येताः पुनः पुनः ५३ उत्कृत्य शिरसश्चान्यान् विजग्धान् मृगपक्षिभिः । दृष्ट्वा काश्चिन्न जानन्ति भर्तॄन् भरतयोषितः ॥ ५४ ॥ पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधुसूदन । प्रेक्ष्य भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् पतींश्च निहतान् परैः ॥ ५५ ॥ बाहुभिश्च सखड्गैश्च शिरोभिश्च सकुण्डलैः । अगम्यकल्पा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ५६ ॥ बभूव भरत-श्रेष्ठ प्राणिभिर्गतजीवितैः । न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्य-निन्दिताः ॥ ५७ ॥ भ्रातृभिः पतिभिः पुत्रैरुपाकीर्णां वसुन्धरा ।

मुखोंकी ओरको देखरही हैं और देखकर अचेत होगयी हैं और जब वे चेत आनेपर देखती हैं, कि—यह धड़ दूसरेका है और मस्तक दूसरेका है तो 'यह मस्तक इसका नहीं है' ऐसा कहकर दुःखी होती हैं ॥ ५२ ॥ कितनीही स्त्रियें बाणोंसे कटेहुए जुदे२ वीर पुरुषोंके भुजदण्ड, जङ्घायें और चरणोंको किसी दूसरेहीके शरीरके साथ जोड़रही हैं और दुःखकी मारी वारंवार मूर्छित होजाती हैं ॥ ५३ ॥ भरतवंशकी कोई२ स्त्रियें पशु पक्षियोंके कुतरे हुए अपने पतियोंके शिरोंको देखकर भी यह हमारे पतिका है इतना भी नहीं पहचान सकतीं ॥ ५४ ॥ हे मधुसूदन ! कौरव कुलकी दूसरी कितनीही स्त्रियें अपने पति, पुत्र, पिता और भाई आदिको शत्रुओंके हाथसे मराहुआ देखकर अपने हाथोंसे शिरों को पीटरही हैं ॥ ५५ ॥ तलवारोंको पकड़ेहुए हाथोंसे, कुण्डलों वाले शिरोंसे भरजानेके कारण और मांस रुधिरकी कीच होजा-नेके कारण तथा भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुषोंके शवोंसे रणभूमिके भीतर घुसना भी कठिन है,हे जनार्दन ! जिन यशस्विनी स्त्रियोंने पहले कभी दुःख नहीं भोगा था वे स्त्रियें इस समय मरेहुए पिता भाई तथा पुत्रोंसे भरीहुई रणभूमिमें दुःखदायक रूपसे घुसरही

लितम् ॥ २ ॥ परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत् । हा
हा पुत्रेति शोकार्त्ता विललापाकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥ सुगूढजत्रुविपुलं
हारनिष्कविभूषितम् । वारिणा नेत्रजेनोरः सिञ्चन्ती शोक-
तापिता ॥४॥ समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत् । उपस्थितेऽ-
स्मिन् संग्रामे ज्ञातीनां संक्षये विभो ॥ ५ ॥ मामयं प्राह वार्ष्णेय
प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः । अस्मिन् ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ६
इत्युक्ते जानती सर्वमहं स्वव्यसनागमम् । अब्रुवं पुरुषव्याघ्र यतो
धर्मस्ततो जयः ॥७॥ यथा च युध्यमानस्त्वं न वै मुह्यसि पुत्रक ।
ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान् प्राप्स्यस्यमरवत्प्रभो ॥ ८ ॥ इत्येवमब्रुवं
नैनं पूर्वं शोचाम्यहं प्रभो । धृतराष्ट्रन्तु शोचामि कृपणं हत-

लिपटगयी और ऐसा घोर विलाप करनेलगी, कि—उसको देख कर दया आती थी, उस समय उसकी इन्द्रियें व्याकुल होगयीं और शोकमें भरीहुई हा पुत्र ! हा पुत्र ! कहकर डकरानेलगी २-३ शोकसे सन्ताप पायीहुई गांधारी, जिसकी गर्दनकी हँसली पर बहुतसा मांस था और जो हार तथा तावीजोंकी माला पहरेहुए था ऐसे दुर्योधनको आँसुओंसे भिगोतीहुई पासही खड़ेहुए श्रीकृष्ण से कहने लगी, कि—हे व्यापक श्रीकृष्ण ! यह संबन्धियोंका संहार करनेवाला संग्राम जब पासही आलगा तब राजाओंमें श्रेष्ठ इस दुर्योधनने दोनों हाथ जोड़कर मुझसे कहा था, कि—हे माताजी! मुझे ऐसा आशीर्वाद दो, कि—संबन्धियोंका संहार करने वाले संग्राममें मेरी विजय हो ॥ ४-६ ॥ दुर्योधनके ऐसा कहने पर भी, हमारे ऊपर आपत्ति आनेवाली है, इस सब बातको मैं पहलेसेही जानती थी, इसलिये मैंने कहा, कि—हे महापुरुष ! 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म है तहाँही विजय है ७ हे पुत्र ! यदि तू युद्ध करतेमें घबड़ावेगा नहीं तो तुझे अवश्य ही देवताओंकी समान शस्त्रोंसे जीतेहुए लोक मिलेंगे ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! दुर्योधनसे

वीजन्ति योषितः । तमद्य पक्षव्यजनैरुपवीजन्ति पक्षिणः ॥१५॥ एष शेते महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः । सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः ॥ १६ ॥ पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम् । निहतं भीमसेनेन गदां सम्मृज्य भारत ॥ १७ ॥ अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकाश्च केशव । आनयद्यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः ॥ १८ ॥ एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महाबलः । शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥ विदुरं ह्यवमन्यैष पितरञ्चैव मन्दभाक् । बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः॥२० निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता । स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः ॥ २१ ॥ अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्त-

जिसकी सुन्दर पंखोंसे पवन डुलाया करती थीं उसको आज पक्षियोंके पंखोंकी हवा लगरही है ॥ १५ ॥ जैसे सिंह हाथीको भूमिपर गिरादेता है तैसे ही भीमसेनने जिसको मारकर भूमिपर गिरा दिया है ऐसा यह महाबली, महाबाहु और सत्यपराक्रमी दुर्योधन रणभूमिमें लंबा२ सोरहा है ॥ १६ ॥ हे कृष्ण ! जिसको भीमसेनने गदा मारकर मारडाला ऐसा दुर्योधन लोहूलुहान होकर रणभूमिमें सोरहा है, इसको देखिये ॥ १७ ॥ हे केशव ! जो महाबाहु दुर्योधन पहले ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको इकट्ठी करके लड़नेके लिये रणभूमिमें लाया था, वह दुर्योधन अन्याय करनेके कारण आज मारागया ॥ १८ ॥ सिंहके मारकर गिराये हुए व्याघ्रकी समान जिसको भीमसेनने मारकर पृथिवीपर गिरा दिया है ऐसा यह महाबली और महाधनुषधारी दुर्योधन आज रणमें सोरहा है ॥ १९ ॥ मूर्ख और मन्दभाग्य यह दुर्योधन, विदुर और अपने पिता इन दोनो वृद्धोंके अपमान करनेसे ही मारागया है ॥ २० ॥ तेरह वर्षतक निष्कंटक राज्य जिसके वशमें रहा था वह मेरा पुत्र राजा दुर्योधन मरकर आज रणभूमिमें

किन्नु शोचति भर्त्तारं पुत्रञ्चैषा मनस्विनी । तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रञ्चाप्यभिवीक्ष्य सा ॥ २९ ॥ स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा । पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव ॥ ३० ॥ पुण्डरीकनिभा भाति पुण्डरीकान्तरप्रभा । मुखं निमृज्य पुत्रस्य भर्तुश्चैव तपस्विनी ॥ ३१ ॥ यदि सत्यागमाः सन्ति यदि वै श्रुतयस्तथा । ध्रुवं लोकानवाप्तोऽयं नृपो बाहुबलार्जितान् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि
दुर्योधनदर्शने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

गान्धार्युवाच । पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्यान् जितक्लमान् । गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान् रणे ॥ १ ॥ इदं दुःखतरं मेऽद्य

और उदारमनवाली मेरी पुत्रवधू मालूम होता है खड़ीहुई पुत्रका अथवा पतिका शोक कररही है, यह एक क्षणमें पुत्रकी ओरको देखती है तो दूसरे क्षणमें पतिकी ओरको देखती है और तीसरे क्षणमें पाँचों अँगुलीयोंवाले अपने दोनों हाथोंसे अपना शिर पीटती है, हे माधव ! देखो तो सही—विशालनेत्रा मेरे वीर पुत्रकी बहू अपने पतिकी छाती पर पड़ी है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अब पुण्डरीक कमलकी समान कान्तिवाली तपस्विनी पुत्र और पतिके कमलकी समान कान्तिवाले मुखपरकी धूलिको हाथसे झाड़रही है, यह स्वयंभी कमलकी समान शोभायमान दीखरही है ॥ ३१ ॥ यदि शास्त्र और वेद सच्चे हैं तो यह मेरा पुत्र अपने बाहुबलसे पायेहुए (दिव्य) लोकोंको अवश्यही गया होगा ३२ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ ॥ छ

गान्धारी कहा, कि—हे माधव ! जिनको रणमें भीमसेनने गदाके प्रहारसे मारडाला है ऐसे (पीछेको पैर न देनेवाले) मेरे सैंकड़ों तेजस्वी पुत्रोंको तो देखो ! ॥ १ ॥ मेरी छोटी २ अवस्थाकी पुत्रवधुएँ, कि—जिनके पुत्र रणमें मारेगये हैं वे शिरके

देहांश्च हतानां गजवाजिनाम् । आश्रित्य श्रममोहार्त्ताः स्थिताः पश्य महाभुज ॥ ९ ॥ अन्याञ्चापहृतं कायाच्चारुकुण्डलमुन्नसम् । स्वस्य बन्धो शिरः कृष्ण गृहीत्वा पश्य तिष्ठतीम् ॥ १० ॥ पूर्वजातिकृतं पापं मन्येनाल्पमिवानघ । एताभिनिरवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया ॥ ११ ॥ यदिदं धर्मराजेन पातितं नो जनार्दन । न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः ॥ १२ ॥ मत्यग्रवयसः पश्य दर्शनीयकुचाननाः । कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः ॥ १३ ॥ हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः । सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव ॥ १४ ॥ फुल्लपद्म-

---

इनके विलापके शब्दको तुम सुनो ॥ ८ ॥ हे महाभुज ! वह देखो, परिश्रम और मोहसे आतुर हुई ये स्त्रियें रथोंके ढाँचे और मरेहुएहाथी घोड़ोंका सहारा लेकर खड़ीहुई हैं ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! देखो वह स्त्री, सुन्दर कुण्डल और ऊँची नाकवाले अपने संबन्धीके शिरको लेकर खडी२ खेद कररही है ॥ १० ॥ हे निर्दोष कृष्ण ! मेरी समझमें इन पवित्र आचरणवाली स्त्रियों ने तथा ओछी बुद्धिवाली मैंने पहले जन्ममें कोई बडाभारी पाप किया होगा ॥ ११ ॥ और इसलियेही धर्मराजने हमारे बान्धवोंका नाश करडाला है, तो भी हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! हमारे पुण्य और पापकर्मोंकी अभी समाप्ति नहीं हुई है, अर्थात् पुण्य कम हैं, इसलियेही जीरहे हैं और पापकर्मोंके कारणसे पुत्रोंके मरणके दुःखको सहरहे हैं १२ हे माधव ! देखो तो सही, नवयौवना, सुन्दर स्तनोंवाली और मुखसे शोभायमान, उत्तम कुलोंमें उत्पन्नहुई लज्जावती, काले पलक और नेत्रोंवाली श्याम केशोंवाली और हंसोंकी समान कोमल बोलनेवाली ये सब स्त्रियें शोक और दुःखसे मोहित होकर सारसोंकी समान डकराती हुई पृथिवीपर पड़ी हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! देखिये यह

कर्णस्य च जनार्दन ॥ २१ ॥ सहैव सहदेवेन नकुलेनार्जुनेन च ।
दासीभूतासि पाञ्चालि क्षिप्रं प्रविश नो गृहान् ॥ २२ ॥ ततोऽ-
हमब्रुवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम् । मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र
वर्जय ॥ २३ ॥ निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम् । क्षिप्र-
मेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः ॥ २४ ॥ न बुद्ध्यसे त्वं
दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम् । वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव
कुञ्जरम् ॥ २५ ॥ तानेवं रहसि क्रुद्धो वाक्शल्यानवधारयन् ।
उत्ससर्ज विषन्तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव ॥ २६ ॥ एष दुःशासनः
शेते विक्षिप्य विपुलौ भुजौ । निहतो भीमसेनेन सिंहेनेव महा-

लिये सहदेव, नकुल और अर्जुनके साथ शीघ्रही हमारे महलमें चल ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे कृष्ण! उसी समय मैंने राजा दुर्योधनसे कहा था, कि—हे पुत्र ! तू मौतकी फाँसीमें बँधेहुए शकुनिका साथ छोड़दे ॥ २३ ॥ यह समझे रहना, कि—तेरा मामा दुष्ट-बुद्धि और कलहसे प्रेम रखनेवाला है, उसको तुरन्तही त्याग दे और पांडवोंके साथ मेल करले ॥ २४ ॥ अरे दुर्बुद्धि पुत्र ! जैसे हाथीको ऊकोंसे जलाया करते हैं तैसेही तू वाणीरूप बाणोंसे भीमसेनको जलारहा है, परन्तु तू इसको पहचानता नहीं है २५ मैंने ये सब बातें दुर्योधनसे कही थीं, परन्तु शोक है, कि—दुर्योधन अपनी खोटी बुद्धिके कारण, जैसे साँप बैलोंकी ओरको विषकी फुङ्कारें छोड़ता हैं तैसेही पांडवोंकी ओरको वाणीरूप शल्योंका प्रहार करता ही रहा ॥ २६ ॥ (उसके ही फलसे) जैसे सिंहका माराहुआ हाथी पृथिवी पर पड़ा होता है, तैसेही भीमका माराहुआ दुःशासन अपने लंबे हाथोंको फैलाकर पृथिवीपर पड़ा है ॥ २७ ॥ महाक्रोधी भीमने युद्धके समय क्रोधमें

पांसुषु माधव ॥ ५ ॥ कर्णिनालीकनाराचैर्भिन्नमर्माणमाहवे । अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम् ॥ ६ ॥ एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता । दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे ७ तस्यैतद्वदनं कृष्ण श्वापदैरर्धभक्षितम् । विभात्यभ्यधिकं तात सप्तम्यामिव चन्द्रमाः ॥ ८ ॥ शूरस्य हि रणे कृष्ण पश्याननमथेदृशम् । स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून् ग्रसति मे सुतः ॥ ९ ॥ यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते । स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित् ॥१०॥ चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन । धार्त्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ११ ॥ तं चित्रमाल्याभरणं युवत्यः शोककर्शिताः । क्रव्यादसंघैः सहिता रुदत्यः पर्यु-

सुखमें पला था और सुख भोगनेके ही योग्य था, परन्तु इस समय धूलिमें पड़ाहुआ है ॥ ५ ॥ संग्राममें कर्णि, नालीक नाराच जातिके बाणोंसे इसके मर्मस्थान चिरगये हैं तो भी इस भरतवंशके श्रेष्ठ पुत्रको राजलक्ष्मीने अभीतक नहीं त्यागा है ॥ ६ ॥ वीर भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये शत्रुओं का संहार करनेवाले दुर्मुखको संग्राममें मारडाला है, वह भी इस रणभूमिमें सोरहा है ॥ ७ ॥ हे कृष्ण ! हिंसक प्राणी इसके मुखको आधा खागये हैं, तो भी हे तात ! शुक्ला सप्तमीके चन्द्रमा की समान यह बडी शोभा पारहा है॥८॥ हे कृष्ण ! ऐसे मेरे वीर पुत्रको शत्रुओंने रणमें मारडाला है, इसके ऐसे मुखको तो देखो रणभूमिमें पडा २ कैसा धूलि चाटरहा है ॥ ९ ॥ हे सुन्दर आकृतिवाले कृष्ण ! रणमें जिसके सामने टिकनेवाला कोई भी नहीं था, उस देवलोकको जीतनेवाले दुर्मुखको शत्रुओंने कैसे मारडाला ? ॥ १०॥ हे मधुसूदन ! वह धनुषधारियोंमें उपमा देनेयोग्य धृतराष्ट्रका पुत्र चित्रसेन भी देखो मारागया और रणभूमिमें पडाहुआ है ॥११॥ और भाँति २ के पुष्प और मालाओं

हन्तारं परसैन्यानां शूरं समितिशोभनम् । निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः ॥ १९ ॥ दुःसहस्यैतदाभाति शरीरं संवृतं शरैः । गिरिरात्मगतैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवाचितः ॥ २० ॥ शातकौम्भ्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता । अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि
गान्धारीवाक्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

गान्धार्युवाच । अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव । पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम् ॥ १ ॥ यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम् । स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशङ्गतः २ तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः । अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा

शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले,वीर,संग्रामको शोभा देनेवाले, किसीसे पराजय न पानेवाले और शत्रुओंका दमन करनेवाले इस असह्य योधाको रणमें कौन सहसकता था ? ॥१९॥ अपने ऊपर उगेहुए प्रफुल्लित कनेरके पौधोंसे भराहुआ पर्वत जैसे शोभा पाता है, तैसे ही चुभेहुए बाणोंसे भराहुआ इस दुःसहका शरीर भी शोभा पारहा है ।२०। और स्वेत रङ्गका पर्वत जैसे अग्निसे शोभा पाता है, तैसे ही दुःसह यद्यपि मरगया है, तो भी सोनेकी माला और कान्तिमान् कवचसे (अभीतक) शोभायमान दीखरहा है २१ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ ॥ छ ॥

गान्धारी (जरा और आगे बढकर) कहनेलगी, कि-हे केशव ! जगत्में सिंहकी समान उन्मत्त और अभिमानी जिस अभिमन्युको बल तथा शूरतामें तुमसे और पिता अर्जुनसे भी डेढगुणा बढकर कहते हैं, जिसने अकेले ही मेरे पुत्रकी अभेद्य सेनाको तित्तर बित्तर करडाला था वह दूसरोंका संहार करके आपभी रणमें पड़ाहुआ है॥१-२॥ हे कृष्ण ! अपारतेजस्वी अभिमन्यु मरगया है तोभी उसके शरीरकी

भुवि निपातितः ॥ १० ॥ अत्यन्तं सुकुमारस्य राङ्क्वाजिनशायिनः । कच्चिदद्य शरीरन्ते भूमौ न परितप्यते ॥११॥ मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ । काञ्चनाङ्गदिनौ शेपे निक्षिप्य विपुलौ भुजौ ॥१२॥ व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव । एवं विलपतीमार्त्तां न हि मामभिभाषसे ॥ १३ ॥ न स्मराम्यपराधन्ते किं मां न प्रतिभाषसे । ननु मां त्वं पुरा दूरादभिवीक्ष्याभिभाषसे ॥ १४ ॥ न स्मराम्यपराधं मे किं मां न प्रतिभाषसे । आर्यामार्य सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान् ॥ १५॥ पितॄन् मां चैव दुःखार्त्तां विहाय क्व गमिष्यसि । तस्य शोणितदिग्धान् वै केशा-

---

ऐसा कुमार इस समय शत्रुओंके हाथसे मरकर रणभूमिमें सोरहा है ॥ १० ॥ फिर यह उत्तरा कुमारी अपने पतिकी ओरको देख कर कह रही है, कि–हे नाथ ! तुम लाड़में पले थे, बड़े ही सुकुमार थे और रंकु मृगकी कोमल मृगछाला पर सोया करते थे, हाय ! वह तुम आज भूमि पर सोरहे हो, क्या यह तुम्हारे चुभती नहीं है? ॥ ११ ॥ हे नाथ ! तुम्हारे दोनों भुजदण्ड हाथी की शुण्डकी समान हैं, धनुषकी डोरीको खेंचते २ इनकी खाल कड़ी होगयी है, इन सोनेके बाजूबन्दोंसे शोभायमान विशाल भुजाओंको फैलाकर तुम आज पृथिवी पर क्यों सोरहे हो? १२ (हाँ ! हाँ !) तुम अधिक परिश्रम करनेके कारण थककर सुख में सोगये हो ! ऐसा मालूम होता है, परन्तु इसकारण ही दुःख की मारी मैं विलाप कररही हूँ. तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं? ।१३। मुझे याद नहीं आता, कि–मैंने आपका कोई अपराध किया हो, फिर तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते, पहले तो तुम मुझे दूरसे ही देखकर मेरे साथ बातें करने लगते थे ॥ १४ ॥ हे नाथ ! तुम अपनी जननी आर्या सुभद्राको, इन देवताओंकी समान अपने ताऊ चाचाओंको और दुःखसे घबड़ायी हुई मुझे छोड़कर कहाँ

पुष्करेक्षण । तव शस्त्रजितांल्लोकान् धर्मेण च धनेन च ॥ २३ ॥
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय । दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले
भवति कर्हिचित् ॥ २४ ॥ यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि
दुर्भगा । क्वामिदानीं नरव्याघ्र श्लक्ष्णया स्मितया गिरा ॥ २५ ॥
पितृलोके समेत्यान्यां मामिवामंत्रयिष्यसि । नूनमप्सरसां स्वर्गे
मनांसि प्रमथिष्यसि ॥ २६ ॥ परमेण च रूपेण गिरा च स्मित-
पूर्वया । प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानप्सरोभिः समेयिवान् ॥ २७ ॥
सौभद्र विहरन् काले स्मरेथाः सुकृतानि मे । एतावानिह संवासो
विहितस्ते मया सह ॥ २८ ॥ षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर

राज्यका लाभ हुआ है, उन्होंने शत्रुओंको जीतलिया है, परन्तु तुम्हारे वियोगसे ये सब काम उनको प्रसन्नता नहीं देंगे, हे नाथ ! धर्मसे और जितेन्द्रियपनेसे तुम शस्त्रोंसे जीतहुए परलोक में एकसाथ पहुंचजाओगे मैं भी तहाँही आती हूँ, तुम मेरी बाट देखना, नाथ ! यह आयी ! (परन्तु हाय !) मृत्यु आये विना कोई भी मनुष्य नहीं मरसकता, इसलियेही यह दुःखिनी तुम्हें युद्धमें माराहुआ देखकर भी अभीतक जीवित है ! तुम पितृलोक में गये हो तो हे महापुरुष ! जहाँ तुम जैसे यहाँ मुझे कोमल वाणीसे मुसकुराते हुए बुलाया करते थे तैसे वहाँ दूसरी किसको बुलाओगे ? मुझे मालूम होता है, कि–तुम अपनी परम सुन्दरता तथा मंद हास्यवाली वाणीसे स्वर्गकी अप्स-राओंके मनोंको मथडालोगे ! परन्तु हे सुभद्रानन्दन ! तुम पुण्य से पायेहुए परलोकमें गये हो तो वहाँ अप्सराओंके साथ विहार करते समय मेरे पुण्योंको भी याद करलेना, हे वीर ! इस लोकमें तो दैवने तुम्हारे साथ मेरा छः महीनेका ही सहवास रचा था ! उसके पूरा होजाने पर सातवें ही महीनेमें तुम परलोकको सिधार गये हो इसप्रकार दुःखिनी उत्तरा पतिके शिरको गोदीमें लेकर

गान्धार्युवाच । एष वैकर्त्तनः शेते महेष्वासो महारथः । ज्वलितानलवत्संख्ये स शान्तः पार्थतेजसा ॥ १ ॥ पश्य वैकर्त्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून् । शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि ॥ २ ॥ अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महाबलः । रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना ॥ ३ ॥ यं स्म पाण्डवसंत्रासान्मम पुत्रा महारथाः । प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम् ॥ शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना । मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम् ॥५॥ समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे । प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदन्त्यः पर्युपासते ॥ ६ ॥ उद्विग्नः सततं यस्माद्धर्मराजो युधिष्ठिरः । त्रयोदशसमा निद्रां चिन्तयन्नाध्यगच्छत ७

गांधारीने (जरा आगे बढ़कर) कहा, कि—हे कृष्ण ! वह देखो, महाधनुषधारी महारथी कर्ण भूमिपर सोरहा है, प्रज्वलित हुए अग्निकी समान जोशमें भराहुआ यह रणमें अर्जुनके तेजसे शान्त होगया है ॥१॥ देखो वह अधिरथका पुत्र कर्ण बहुतसे अतिरथियोंको मारकर लोहू लुहान शरीरसे रणभूमिमें सोरहा है ॥२॥ यह असहनशील, बड़ा क्रोधी, महाधनुषधारी और बड़ा बलवान् था ऐसा कर्ण रणमें अर्जुनके हाथसे मरकर सोरहा है ३ जैसे हाथी यूथपतिको आगे करके युद्ध करते हैं, ऐसे ही मेरे महारथी पुत्र भी पाण्डवोंके भयसे जिसको आगे करके युद्ध किया करते थे, उस कर्णको, सिंह जैसे सिंहको और मतवाला हाथी जैसे मतवाले हाथीको मारडालता है तैसे सव्यसाची अर्जुनने रणमें मारडाला है ॥ ४-५ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! जिनके शिरोंके केश खुलेगये हैं ऐसी कर्णकी स्त्रियें रणमें इकट्ठी होकर रोरहीं हैं और देखो युद्धमें मरेहुए कर्णके आसपास घिरी बैठी हैं ॥६॥ राजा युधिष्ठिर जिससे सदा घबड़ाते थे और तेरह वर्षतक इस कर्णकी चिन्तासे युधिष्ठिरको निद्रा भी नहीं आयी थी ॥ ७ ॥

नः प्रीतिकरः शशीव कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे ॥ १३ ॥ सा वर्त्तमाना पतिता पृथिव्यामुत्थाय दीना पुनरेव चैषा । कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि कर्णदर्शनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

गान्धार्युवाच । आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम् । गृध्रगोमायवः शूरं बहुबन्धुमबन्धुवत् ॥ १ ॥ तं पश्य कदनं कृत्वा शूराणां मधुसूदन । शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम् २ तं शृगालाश्च कङ्काश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः । तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३ ॥ शयानं वीरशयने शूरमाक्रन्दकारिणम् । आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ४ ॥ प्राति-

समान क्षीणहुए कर्णको देखकर मुझे खेद होता है ॥ १३ ॥ पृथिवी पर पडी हुई यह विचारी सुषेणकी माता फिर उठकर खडी होगयी, अब कर्णके मुखको सूँघरही है और पुत्रके मरण से सन्तप्त होकर बडी ही रोरही है ॥ १४ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

गान्धारी (तहाँ से जरा आगे और बढ़कर) कहने लगी, कि-हे मधुसूदन ! अवन्तीके राजाको भीमसेनने रणमें मारडाला है, देखो वह पडा है, गृध्र तथा गीदड़ उस वीरके शरीरको खारहे हैं इसके बहुतसे बान्धव थे, परन्तु आज यह अनाथकी समान पड़ा है ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! देखो यह वीर रणमें शूरोंका नाश करके इस समय लोहूलुहान हुए शरीरसे वीरशय्या पर सोरहा है । २ । गीदड़, कौए तथा दूसरे अनेकों प्रकारके मांसाहारी प्राणी इसके शरीरको इधर उधरको खेंच रहे हैं इस कालके उलटफेरको तो देखो ! ॥ ३ ॥ अवन्तीका वीर राजा युद्ध करके वीरशय्या पर सोरहा है और उसकी स्त्रियें उसको चारों ओरसे घेरकर

महाभुजम् । सिंधुसौवीरभर्त्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः ॥ ११ ॥ यदा कृष्णामुपादाय प्राद्रवत् केकयैः सह । तदैव वध्यः पाण्डूनां जनार्दन जयद्रथः ॥ १२ ॥ दुःशलां मानयद्भिस्तु यदा मुक्तो जयद्रथः । कथमद्य न तां कृष्ण मानयन्ति स्म ते पुनः ॥ १३ ॥ सैषा मम सुता बाला विलपन्ती च दुःखिता । आत्मना हन्ति चात्मानमाक्रोशन्ती च पाण्डवान् ॥ १४ ॥ किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति । यत्सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः १५ हा हा धिग्दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव । शिरो भर्त्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः ॥ १६ ॥ वारयामास यः सर्वान् पाण्डवान् पुत्रगृद्धिनः । स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः १७

महाबाहु जयद्रथके पास बैठकर (इसके शवको मांसाहारी प्राणियोंसे बचानेके लिये) उसकी रक्षा कररही हैं ॥११॥ हे जनार्दन! यह जयद्रथ जिससमय केकय राजाओंके साथमें होकर द्रौपदीको उठा लेगया था, पाण्डवोंको उचित था, कि—तब ही इसको मारडालते ॥ १२ ॥ परन्तु दुःशलाके सन्मानके लिये पांडवोंने उस समय इस जयद्रथको छोड़ दिया था, तो फिर हे कृष्ण! उन्होंने अब एकबार और दुःशलाका मान क्यों नहीं रक्खा ? ॥ १३ ॥ यह मेरी बालक पुत्री दुःशला दुःखकी मारी विलाप कररही है और पांडवोंको नाम लेले कर कोसरही है तथा अपने हाथोंसे अपनी छाती कूटरही है ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! मेरी बालक पुत्री विधवा हुई बैठी है और मेरी पुत्रवधुएँ भी पतिहीना होगयी हैं, मेरे लिये इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ? ॥ १५ ॥ हाय हाय रे! हे कृष्ण! तुम मेरी दुःशलाकी ओरको तो देखो, यह अपने पतिका शिर न मिलने से शोक और भयसे रहितकी समान इधर उधरको दौड़रही है। ॥ १६ ॥ जिसने अभिमन्युकी रक्षा करनेके लिये चढ़कर आयेहुए सब पांडवोंको रोकलिया

क्राभस्य तप्तकाञ्चनसप्रभा । आस्याद्विनिःसृता जिह्वा भक्ष्यते कृष्ण पक्षिभिः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम् । रुदत्यः पर्युपासन्ते मद्रराजं कुलाङ्गनाः ॥ ६ ॥ एताः सुसूक्ष्म-वसना मद्रराजं नरर्षभम् । क्रोशन्त्योऽथ समासाद्य क्षत्रियाः क्षत्रि-र्षभम् ॥ ७ ॥ शल्यं निपतितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः । वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिव द्विपम् ॥ ८ ॥ शल्यं शरणदं शूरं पश्येमं वृष्णिनन्दन । शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम् ६ एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान् । गजांकुशधरः श्रीमान् शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥ यस्य रुक्ममयी माला शिरस्येषा विराजते । श्वापदैर्भक्ष्यमाणस्य शोभयन्तीव मूर्धजान् ॥ ११ ॥

मेंसे तपाये हुए सोनेकी समान कान्तिवाली जीभ बाहरको निकल पडी है और हे कृष्ण ! पक्षी उसको खारहे हैं ॥ ५ ॥ कीचड़में फँसेहुए हाथीको जैसे शीघ्र ही ब्याही हुई हथनियें चारों ओरसे घेरकर सेवा करती हैं तैसे ही जिसको युधिष्ठिरने मारडाला है ऐसे संग्राममें शोभा पानेवाले मद्रराज शल्यकी, अतिसूक्ष्म वस्त्र धारण करनेवालीं कुलीन स्त्रियें इसको चारों ओरसे घेर कर रोती २ सेवा कररही हैं ॥ ६—८ ॥ हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! वीर राजा शल्यका शरीर बाणोंकी मारसे कटगया है और शर-णागतोंकी रक्षा करनेवाला यह राजा देखिये वीरशय्या पर सो रहा है ॥ ९ ॥ वह देखिये पर्वतका रहनेवाला प्रतापी राजा भगदत्त हाथीके अंकुशको हाथमें लियेहुए पडा है, यह रणभूमि में घूमा करता था, परन्तु इस समय मरा पडा है ॥ १० ॥ इस राजाके शिरपर की सोनेकी मालाको देखिये, यद्यपि यह मांसा-हारी पशुपक्षियोंका भोजन बनगया है तो भी यह माला अभी तक शोभा देरही है, यह माला तो इसके केशोंको भी शोभा दे रही है ॥ ११ ॥ जैसे इन्द्रका वृत्रासुरके साथ युद्ध हुआ था,

आविश्य शेते भगवान् स्कन्दः शरवणं यथा ।॥ १८ ॥ अतूल-पूर्णं गांगेयस्त्रिभिर्बाणैः समन्वितम् । उपाधायोपधानाग्र्यं दत्तं गाण्डीवधन्वना ॥ १९ ॥ पालयानः पितुः शास्त्रमूर्ध्वरेता महा-यशाः । एष शान्तनवः शेते माधवाप्रतिमो युधि ॥२०॥ धर्मात्मा तात सर्वज्ञः परापर्येण निर्णये । अमर्त्य इव मर्त्यः सन्नेष प्राणा-नधारयत् ॥ २१ ॥ नास्ति युद्धे कृती कश्चिन्न विद्वान्न पराक्रमी । यत्र शान्तनवो भीष्मः शेतेऽद्य निहतः शरैः ॥ २२ ॥ स्वयमेतेन शूरेण पृच्छमानेन पाण्डवैः । धर्मज्ञेनाहवे मृत्युरादिष्टः सत्यवादिना ॥ २३ ॥ प्रनष्टः कुरुवंशश्च पुनर्येन समुद्धृतः । स गतः कुरुभिः सार्द्धं महाबुद्धिः पराभवम् ॥ २४ ॥ धर्मेषु

पर सोये हुए हैं ॥ १८ ॥ अर्जुनने तीन बाण मारकर इनको विना रुईका उत्तम तकिया दिया है, यह उसके ही ऊपर शिर रख कर सोरहे हैं ॥१९॥ और हे माधव ! पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये यह बालब्रह्मचारी रहे हैं, इनका बडा यश है और युद्ध करनेमें इनकी बराबरी कोई नहीं करसकता, इन राजा शन्तनुके पुत्र भीष्मजीको देखिये, यहाँ रणमें सोरहे हैं ॥ २० ॥ धर्मात्मा और सर्वज्ञ भीष्मजी मनुष्य हैं, तो भी इस लोक और परलोकके ज्ञानके बलसे अपने प्राणोंको देवताओंकी समान धारण कियेहुए हैं ।२१। जब बाणोंके प्रहारोंसे मृतकसमान होकर शन्तनुके पुत्र भीष्म जी ही आज रणभूमिमें सोरहे हैं, इससे तो मैं यही समझती हूँ, कि—वास्तवमें युद्धमें कोई शिक्षा, चतुराई अथवा पराक्रम काम नहीं देता ॥२२॥ पाण्डवोंने जब भीष्मजीके पास जाकर उनसे बूझा, कि–“आपकी मृत्यु कैसे हो” तो इस का उत्तर सत्यवादी वीर भीष्मजीने आप ही देदिया था ॥२३॥ परन्तु हाय ! पहले जिन्होंने नष्ट होते हुए कुरुवंशका उद्धार किया था वह महाबुद्धिमान् भीष्मजी कौरवोंके सहित पराजय

यथा ॥२१॥ वेदा यस्माच्च चत्वारः सर्वाण्यस्त्राणि केशव । अनपेतानि वै शूराद्यथैवादौ प्रजापतेः ॥ ३२ ॥ वन्दनार्हाविमौ तस्य वन्दिभिर्वन्दितौ शुभौ । गोमायवो विकर्षन्ति पादौ शिष्यशतार्चितौ ॥ ३३ ॥ द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन । कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना ॥ ३४ ॥ तां पश्य रुदतीमार्त्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम् । हतं पतिमुपासन्तीं द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ३५ बाणैर्भिन्नतनुत्राणं धृष्टद्युम्नेन केशव । उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी ॥ ३६ ॥ प्रेतकृत्ये च यतते कृपी कृपणमातुरा । हतस्य समरे भर्त्तुः सुकुमारी यशस्विनी ॥ ३७ ॥ अग्नीनाधाय विधिवच्चितां प्रज्वाल्य सर्वतः । द्रोणमाधाय गायन्ति

रणमें मरकर पडे हुए हैं तो भी उनके धनुषकी मुट्ठी और हाथके मोजोंको देखनेसे ऐसा मालूम होता है, कि—मानो अभीतक जीवित ही हैं ॥ २१ ॥ जैसे पहले प्रजापतिसे चारों वेद दूर नहीं हुए थे वैसेही वीर द्रोणाचार्यके पाससे चारों वेद और सबप्रकार के अस्त्र अभी तक अलग हुए नहीं मालूम होते ॥ ३२ ॥ वन्दना करने योग्य तथा वन्दीजनोंके वन्दना कियेहुए सैंकड़ों शिष्य जिनका पूजन करते थे ऐसे द्रोणाचार्यके दोनों चरणोंको रणमें गीदड़ खेंचरहे हैं ॥ ३३ ॥ हे मधुसूदन ! इन द्रोणाचार्य को द्रुपदके पुत्रने मारडाला है, और पतिके मरणके दुःखके कारण अचेत हुई कृपी उनके पास ऐसी बैठी है, कि—देखकर दया आती है ॥ ३४ ॥ देखिये कृपीके शिरके केश खुलगये हैं, यह दुःखसे नीचे को मुख कियेहुए रोरही है और शस्त्र धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ, भूमिपर पड़ेहुए अपने पति द्रोणाचार्यकी सेवा कररही है ॥ ३५ ॥ हे केशव ! धृष्टद्युम्नने बाण मारकर जिनके कवचको तोड़डाला है ऐसे द्रोणाचार्यकी यह जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी (कृपी) उपासना कररही है ॥ ३६ ॥ तथा सुकुमारी

गान्धार्युवाच । सोमदत्तसुतं पश्य युयुधानेन पातितम् । वितुद्यमानं विहगैर्बहुभिर्माधवान्तिके ॥ १ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तः सोमदत्तो जनार्दन । युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते ॥ २ ॥ असौ हि भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता । आश्वासयति भर्त्तारं सोमदत्तमनिन्दिता ॥ ३ ॥ दिष्ट्या नैनं महाराज दारुणं भरतक्षयम् । कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यति ॥ ४ ॥ दिष्ट्या यूपध्वजं पुत्रं वीरं भूरिसहस्रदम् । अनेकक्रतुयज्वानं निहतं नानुपश्यसि ॥ ५ ॥ दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु । न शृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे ॥ ६ ॥ एकवस्त्रार्धसंवीताः प्रकीर्णासितमूर्धजाः । स्नुषास्ते परिधावन्ति हतपत्या

गान्धारी (और जरा आगेको बढ़कर) कहनेलगी, कि—हे माधव ! इस पासमें पड़ेहुए और युयुधानके मारेहुए सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाकी ओरको भी देखिये ॥ १ ॥ और ऐसा मालूम होता है कि—सोमदत्त पुत्रके शोकसे सन्तप्त होकर महाधनुषधारी युयुधानकी निन्दा कररहा है २ यह खिन्न हुई पवित्र चरित्रवाली भूरिश्रवाकी माता अपने भर्त्ता सोमदत्तको ढाढस देती हुई कहरही है, कि-॥३॥हे महाराज! अच्छा हुआ, कि—प्रलय कालकी समान, कौरवोंके रुदनसे भराहुआ और भयानक कौरवोंका संहार आपके देखनेमें नहीं आया । ४ । अच्छा हुआ कि-ध्वजामें यज्ञके खम्भे का चिह्न धारण करनेवाले, हजारों पदार्थोंका दान करनेवाले और अनेकों यज्ञ याग करनेवाले अपने वीर पुत्र भूरिश्रवाको तुमने मरते समय नहीं देखा ॥ ५ ॥ और हे महाराज ! यह भी अच्छा हुआ, कि सागरमें बोलती हुई सारसियोंकी ध्वनि जैसे सागरकी गर्जनाके कारण सुनायी नहीं आती है तैसे ही रणमें होनेवाले भयङ्कर कोलाहलके कारण अपनी पुत्रवधुओंके विलाप को आप नहीं सुनते थे ॥ ६ ॥ और जिनके पुत्र और पति मर

प्रायोपविष्टस्य प्राहार्पोत्संशितात्मनः ॥ १४ ॥ एको द्वाभ्यां हतः शेषे त्वमधर्मेण धार्मिक । किं नु वक्ष्यति वै सत्सु गोष्ठीषु च सभासु च ॥१५॥ अपुण्यमयशस्यञ्च कर्मेदं सात्यकिः स्वयम् । इति यूपध्वजस्यैताः स्त्रियः क्रोशन्ति माधव ॥ १६ ॥ भार्या यूपध्वजस्यैषा करसंमितमध्यमा । कृत्वोत्संगे भुजं भर्त्तुः कृपणं परिदेवति ॥ १७ ॥ अयं स हन्ता शूराणां मित्राणामभयप्रदः । प्रदाता गोसहस्राणां क्षत्रियान्तकरः करः ॥ १८ ॥ अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दकः । नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीविविस्रंसनः करः ॥ १९ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्ये पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।

भूरिश्रवाकी भुजा असावधानीमें काटडाली ॥ १३ ॥ और सात्यकीने तो उससे भी अधिक पापका काम किया है । क्योंकि–उत्तम मनवाला भूरिश्रवा जिस समय अनशन व्रत किये बैठा था, उस समय उसको उसने मारडाला ॥ १४ ॥ हे धर्मात्मा भूरिश्रवा ! तुझ अकेलेको दो जनोंने मिलकर अधर्मसे मार तो डाला परन्तु वे सत्पुरुषोंकी बातोंमें और सभाओंमें इसका क्या उत्तर देंगे ? ॥ १५ ॥ हे माधव ! भूरिश्रवाकी स्त्रियें रोती २ कहरही हैं, कि–सात्यकीने अपयशभरा पापका काम किया है ॥ १६ ॥ यह भूरिश्रवाकी पतली कमरवाली स्त्री अपने भर्त्ताके हाथको गोदीमें लेकर दयाजनक रीतिसे रोती२ कहरही है, कि–॥ १७ ॥ यह वह हाथ है, कि– जिसने वीरोंको मारा है, मित्रोंको अभय दिया है, हजारों गौओंका दान किया है और रणमें क्षत्रियोंका संहार किया है ॥ १७ ॥ और यह ही वह हाथ है, कि–जो मेरी कमरमेंकी कटिमेखलाको खेंचा करता था, मेरे पुष्टस्तनका मर्दन किया करता था, मेरी नाभि, साँथल और जङ्घाओंका स्पर्श किया करता था तथा मेरे अधोवस्त्रको उतारा करता था ॥१९॥ परन्तु इस हाथको जब तुमने दूसरोंके साथ युद्ध करनेमें लगादिया

शकुनिं कृष्ण समन्तात्पर्युपासते । कैतवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम् ॥ २७ ॥ एतेनैतन्महद्वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह । वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च ॥ २८ ॥ यथैव मम पुत्राणां लोकाः शस्त्रजिताः प्रभो । एवमस्यापि दुर्बुद्धेर्लोकाः शस्त्रेण वै जिताः ॥ २९ ॥ कथञ्चनायं तत्रापि पुत्रान्मे भ्रातृभिः सह । विरोधयेदृजुप्रज्ञाननृजुर्मधुसूदन ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

गान्धार्युवाच । काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं काम्बोजास्तरणोचितम् । शयानमृषभस्कन्धं हतं पांसुषु माधव ॥ १ ॥ यस्य क्षतजसन्दिग्धौ बाहू चन्दनभूषितौ । अवेक्ष्य करुणं भार्या विलपत्य-

---

था, परन्तु इस समय वह अपने जीवनको भी हार बैठा है ।२६। हे कृष्ण ! पक्षी इसके आस पास टोली बनाकर बैठेहुए खानेकी घात लगारहे हैं, इस शकुनिने मेरे पुत्रोंके नाशके लिये उनको कपट करना सिखा दिया था तथा अपना और अपने परिवारका नाश करनेके लिये मेरे पुत्रोंका पांडवोंके साथ बडाभारी वैर बँधवादिया था ॥२७ ॥२८ ॥ हे प्रभो ! मेरे पुत्रोंने जैसे शस्त्रोंसे सब लोकोंको जीतलिया था, ऐसे इस दुष्टबुद्धिने भी शस्त्रोंसे सब लोकोंको जीतलिया था ॥२९ ॥ हे मधुसूदन ! इस शकुनिका स्वभाव कुटिल था, इस लिये यह मेरे सरलबुद्धिके पुत्रोंको अपने भाइयोंके साथ क्यों नहीं लडाता ? इसने ही मेरे पुत्रोंको पांडवोंके साथ लडाया था ॥ ३० ॥ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त

गान्धारी (जरा आगे बढकर फिर) कहने लगी, कि-हे माधव ! बैलकेसे कन्धोंवाला और किसीसे न दबनेवाला कम्बोजराज, काम्बोज देशकी शाल पर सोनेके योग्य था, परन्तु वह आज धरती पर धूलिमें सोरहा है ॥ १ ॥ इस राजाके चन्दनसे

राणां जनार्दन । मनःश्रुतिहरो नादो मनो मोहयतीव मे ॥ ८ ॥ प्रकीर्णवस्त्राभरणा रुदत्यः शोककर्षिताः । स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि ॥ ९ ॥ कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम् । भर्त्तारं परिवार्यैताः पृथक् प्ररुदिताः स्त्रियः ॥ १० ॥ अस्य गात्रगतान् बाणान् कार्ष्णिबाहुबलार्पितान् । उद्धरन्त्यसुखाविष्टा मूर्छमानाः पुनः पुनः ॥ ११ ॥ आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात् । प्रम्लाननलिनाभानि भान्ति वक्त्राणि माधव ॥ १२ ॥ द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः । धृष्टद्युम्नसुताः सर्वे शिशवो हेममालिनः ॥ १३ ॥ रथाग्न्यगारं चापार्चिं शरशक्तिगदेन्धनम् । द्रोणमासाद्य निर्दग्धाः शलभा इव पावकम् ॥ १४ ॥

लगनेवाला रोनेका शब्द मेरे मनमें बड़ा ही दुःख उत्पन्न कररहा हैं ॥ ८ ॥ मगध देशकी इन स्त्रियोंके वस्त्र और गहने ढीले होगये हैं, ये रोरही हैं, शोकसे दुबली होगयी हैं और उत्तम आसनों पर बैठनेके योग्य होकर भी धरतीपर बैठी हैं ॥ ९ ॥ वह देखो कोशल देशका राजकुमार बृहद्बल पृथिवी पर पड़ा है उसकी जुदी२ रानियें चारों ओरसे घेरकर रोरही हैं ॥ १० ॥ वह अभिमन्युके जोरके साथ मारेहुए और उसके शरीरमें गुभे हुए बाणोंको बाहर निकाल रही हैं और दुःखके मारे बार २ मूर्छित होजाती हैं ॥ ११ ॥ हे माधव ! इन सब निर्दोष स्त्रियोंके मुख धूपसे परिश्रमसे कुमलाए हुए कमलोंकी समान दीखरहे हैं ॥ १२ ॥ देखो जिनको द्रोणाचार्यने मारडाला था ऐसे धृष्टद्युम्नके सब वीर पुत्र वह देखो रणभूमिमें सोरहे हैं, उनके गलोंमें सोनेकी मालायें और हाथोंमें सोनेके बाजूबन्द हैं ॥ १३ ॥ रथ जिसका अग्निमन्दिर है, धनुष जिसकी ज्वाला है, बाण, शक्ति और गदा जिसका ईंधन हैं ऐसे द्रोणसे मिलकर जैसे पतङ्गे अग्निका आलिङ्गन करके भस्म होजाते हैं तैसे ही ये शूर

हत इव द्रुमः ॥ २१ ॥ एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः । शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥ २२ ॥ वितुद्यमानं विहगैस्तं भार्याः पर्युपाश्रिताः । चेदिराजं हृषीकेश हतं सबलबान्धवम् ॥ २३ ॥ दाशार्हपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम् । आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः ॥२४॥ अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम् । द्रोणेन समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः ॥ २५ ॥ पितरं नूनमाजिस्थं युध्यमानं परैः सह । नाजहात्पितरं वीरमद्यापि मधुसूदन ॥ २६ ॥ एवं ममापि पुत्रस्य पुत्रः पितरमन्वगात् । दुर्योधनं महाबाहो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २७ ॥ विंदानुविंदावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव । हिमान्ते पुष्पितौ शालौ

धारण करनेवाला धृष्टकेतु द्रोणाचार्यके अस्त्रका नाश करदेनेके बाद उनके हाथसे मरकर नदीके तोड़ गिरायेहुए वृक्षकी समान रणभूमिमें पड़ा है ॥ २१ ॥ यह चेदिदेशका वीर और महारथी राजा धृष्टकेतु रणमें हजारों शत्रुओंका संहार करके मराहुआ पड़ा है ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश ! जिसकी सेना और बांधव मारे गये हैं और पक्षी जिसके शवमें चोंचें चुभोरहे हैं ऐसा चेदिदेश का राजा पड़ा है और उसकी स्त्रियें आसपास घेरे बैठी है ॥२३॥ और दाशार्हके पुत्रसे उत्पन्न हुए वीर सत्य पराक्रमी चेदिराज की श्रेष्ठ रानियें अपने पतिको गोदीमें लेकर बैठी २ रोरही हैं २४ हे हृषीकेश ! देखिये, जिसका मुख और कुण्डल सुन्दर हैं ऐसे चेदिराजके पुत्रको भी द्रोणाचार्यने युद्धमें बाण मारकर बहुत ही बींध दिया है तो भी रणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए वीर पिताको इसने अभीतक नहीं त्यागा है, ऐसे वीर पिताके वीर पुत्रको भी देखलीजिये ॥२५॥२६॥ हे महाबाहो ! ऐसे ही मेरे पुत्रका पुत्र शत्रुओंका नाश करनेवाला वीर लक्ष्मण अपने पिता दुर्योधनकी समान रणमें युद्ध करके मरगया है ॥ २७ ॥ हे माधव !

विदुरेण च । तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति ॥ ३५ ॥
तयोर्हि दर्शनं नैतन्मिथ्या भवितुमर्हति । अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मी-
भूता जनार्दन ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वापतद्भूमौ
गान्धारी शोकमूर्छिता। दुःखेनोपहतविज्ञाना धैर्यमुत्सृज्य भारत३७
ततः कोपपरीतांगी पुत्रशोकपरिप्लुता । जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी
व्यथितेन्द्रिया॥३८॥गान्धार्युवाच । पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च दग्धाः
कृष्ण परस्परम् । उपेक्षिताः विनश्यन्तस्त्वया कस्माज्जनार्दन ३९
शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले । उभयत्र समर्थेन श्रुत-
वाक्येन चैव ह ॥ ४० ॥ इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन ।

पराक्रमी पुत्रोंका नाश होगया था ॥ ३४ ॥ और उसी समय बुद्धिमान् भीष्म तथा विदुरने मुझसे कहा था, कि अब तुम अपने पुत्रोंके ऊपरकी स्नेहममताको छोड़दो ॥ ३५ ॥ उन दोनोंने जो आगेका होनहार देखलिया था वह मिथ्या नहीं होसकता, हे जनार्दन ! तदनन्तर मेरे पुत्र थोड़े ही समयमें भस्म होगये ३६ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी राजा जनमेजय ! इसप्रकार (रणमें मरेहुए योधाओंकी दशा श्रीकृष्णको दिखाकर और विलाप करके) दुःखके कारण अचेतसी हुई गान्धारी धीरज छोडकर पृथिवी पर पड़रही ॥ ३७ ॥ थोडी देर वाद जब चेत हुआ तो पुत्रोंके शोकमें डूबी हुई और जिसके अङ्ग २ में कोप समारहा था तथा जिसकी इन्द्रियें व्याकुल होरही थीं ऐसी गान्धारी श्रीकृष्णके ऊपर दोषदृष्टि रखकर कहनेलगी ॥ ३८ ॥ गान्धारी बोली, कि—हे कृष्ण ! पाण्डव और कौरव आपसमें भस्मीभूत होगये और लडकर मरमिटे, हे जनार्दन ! तुमने इनकी उपेक्षा क्यों की ? ॥ ३९ ॥ हे महाबाहु मधुसूदन ! तुम इस सर्वनाशको रोकसकते थे, क्योंकि—तुम्हारे पास बहुतसे सेवक थे, वडीभारी सेना थी, तुम स्वयं भी महाबली थे तुममें

उवाच देवीं गान्धारीमीषदभ्युत्स्मयन्निव ॥ ४७ ॥ जानेऽहमेतदप्येवं चीर्णं चरसि क्षत्रिये । दैवादेव विनश्यन्ति वृष्णयो नात्र संशयः ॥ ४८ ॥ संहर्ता वृष्णिचक्रस्य नान्यो मद्विद्यते शुभे । अवध्यास्ते नरैरन्यैरपि वा देवदानवैः ॥४९॥ परस्परकृतं नाशं यतः प्राप्स्यन्ति यादवाः । इत्युक्तवति दाशार्हे पाण्डवास्त्रस्तचेतसः । बभूवुर्भृशसंविग्ना निराशाश्चापि जीविते ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि
गान्धारीशापदाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

समाप्तं च स्त्रीविलापपर्व.

अथ श्राद्धपर्व ।

श्रीभगवानुवाच । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः । तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः ॥ १ ॥ यत्त्वं पुत्रं

मुसकराकर गान्धारीसे कहनेलगे, कि–॥ ४७ ॥ क्षत्रियोंमें मेरे सिवाय ऐसा कोई भी नहीं है जो वृष्णिवंशके पुरुषोंका नाश करसके, इस बातको मैं जानता हूँ, परन्तु जो काम करनेका मैंने पहलेसे ही विचार करलिया था, वही काम तूने शाप देकर किया है, दैवयोगसे वृष्णियोंका नाश होने ही वाला है इसमें जरा भी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ हे कल्याणि ! मेरे सिवाय दूसरे मनुष्य तो क्या, देवता और दानवभी वृष्णियोंके दलका नाश नहीं कर सकते ॥ ४९ श्रीकृष्ण ऐसा कहरहे थे उस समय पाण्डवोंके मनमें भय बैठगया और वे बड़े ही व्याकुल हो उठे और जीवनसे निराश होगये ॥ ५० ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा, कि–हे गांधारी ! उठ, उठ, खड़ी हो, मनमें शोक न कर, तेरेही अपराधसे कौरवोंका नाश हुआ है ॥ १ ॥ दुष्टात्मा, ईर्षाके स्वभाववाले और महाअभिमानी दुर्योधनको श्रेष्ठ मानकर उसके दुराचरणको भी तू अच्छा सम-

बुद्धिजं तमः । पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥७॥ जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव । हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच । दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः । कोटयः षष्टिश्च षट् चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः ॥ ९ ॥ अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश । दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च ॥१०॥ धृतराष्ट्र उवाच । युधिष्ठिर गतिं कान्ते गताः पुरुषसत्तम । आचक्ष्व मे महाबाहो सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यैर्हुतानि शरीराणि हृष्टैः परमसंयुगे । देवराजसमाँल्लोकान् गतास्ते सत्यविक्रमाः ॥१२॥ ये त्वहृष्टेन मनसा मर्तव्यमिति भारत । युध्यमाना हताः संख्ये गन्धर्वैः सह संगताः ॥ १३ ॥ ये च संग्रामभूयिष्ठा

वाले राजा धृतराष्ट्रने अज्ञानसे उत्पन्नहुए मोहको वशमें करके राजा युधिष्ठिरसे बूझा, कि—॥ ७ ॥ हे युधिष्ठिर ! जो सेना जीती बची है क्या उसकी संख्याको तुम जानते हो ? इसके सिवाय यदि मरीहुई सेनाकी संख्याको भी जानते होओ तो मुझे सुनाओ ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिरने कहा, कि—हे राजन् ! इस युद्धमें एक अब्ज, छियासठ करोड़ और बीसहजार वीर मरगये हैं और जिनका परिचय नहीं है ऐसे भी चौदह हजार वीर मरे हैं, इनके सिवाय हे राजेन्द्र ! और भी एक हजार पैंसठ योधा मरे हैं ॥ ९–१० ॥ राजा धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे महाबाहु महात्मा युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें सर्वज्ञ मानता हूँ, इसलिये बताओ; कि—वे किस गतिमें पहुँचे हैं ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरने कहा: कि—जिन सत्यपराक्रमी योधाओंने हर्षमें भरकर रणयज्ञमें अपने शरीरोंका होम किया है वे इन्द्रकी समान लोकोंमें गये हैं १२ हे भारत ! और जो 'जब मरना ही है तो लड़कर मरना ही अच्छा है' ऐसा मानकर खिन्न हृदयसे लड़े और मारेगये वे

दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ॥ २० ॥ धृतराष्ट्र उवाच। अनाथानां जनानाञ्च सनाथानाञ्च भारत। कच्चित्तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ न येषामस्ति संस्कर्ता न च येऽत्राहिताग्नयः। वयञ्च कस्य कुर्यामो बहुत्वात्तात कर्मणाम् २२ यान् सुपर्णाश्च गृध्राश्च विकर्षन्ति यतस्ततः। तेषान्तु कर्मणा लोका भविष्यन्ति युधिष्ठिर ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तो महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतञ्च सञ्जयम् ॥ २४ ॥ विदुरञ्च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम्। इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः ॥२५॥ भवन्तः

जब मैं (अपने भाइयोंके साथ) वनवासमें तीर्थयात्रा करनेको निकला, उस समय मुझे लोमशऋषिका दर्शन हुआ था, तब उनसे ही मुझे यह अनुस्मृति (भविष्यज्ञान) प्राप्त हुई थी और पहले ज्ञानयोगके बलसे मैं दिव्य-चक्षु भी पाचुका हूँ ॥ २० ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे भरतवंशी युधिष्ठिर ! जिनका कोई सगा संबन्धी नहीं है ऐसे अनाथ पुरुषोंके शरीरोंको तथा जिनके सगे संबन्धी हैं उन सनाथ पुरुषोंके शरीरोंको और जो अग्निहोत्री नहीं थे उनके शरीरोंको तुम विधिपूर्वक दाह दोगे क्या ? हे तात ! हमें तो बहुतसोंका दाह करना है, इसलिये बताओ हम किस२ को दाह दें ? ॥ २१-२२ ॥ हे युधिष्ठिर ! जिनके शरीरोंको रणभूमिमें गिद्ध और गरुड़ पक्षी इधर उधरको घसीटते फिरते हैं, उनको तो उनके पुण्यकर्मसे ही परलोक मिलजायगा ।२३। वैशम्पायन कहते हैं, कि- हे महाराज जनमेजय ! धृतराष्ट्रने राजा युधिष्ठिरसे इसप्रकार बूझा, तब चतुरतामें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने दुर्योधनके पुरोहित सुधर्माको अपने पुरोहित धौम्यको, सूत सञ्जयको, महाबुद्धिमान् विदुरको, कुरुवंशके पुत्र युयुत्सुको, इन्द्रसेन आदि सब सेवकोंको तथा सारथियोंको आज्ञा दी, कि-तुम सब इन

राजानं क्षेमधन्वानं विराटद्रुपदौ तथा ॥ ३३ ॥ शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम्। युधामन्युञ्च विक्रान्तमुत्तमौजसमेव च ॥ ३४ ॥ कौसल्यं द्रौपदेयांश्च शकुनिं चापि सौबलम् अचलं वृषकञ्चैव भगदत्तञ्च पार्थिवम् ॥ ३५ ॥ कर्णं वैकर्तनं चैव सहपुत्रममर्षणम्। केकयांश्च महेष्वासांस्त्रिगर्तांश्च महारथान् ३६ घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं वकभ्रातरमेव च। अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं जलसन्धं च पार्थिवं ॥ ३७ ॥ एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पार्थिवांश्च सहस्रशः। घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन् ॥३८॥ पितृमेधाश्च केषाञ्चित् प्रावर्तन्त महात्मनाम्। सामभिश्चाप्यगायन्त तेऽन्वशोचन्त चापरैः ॥३९॥ साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणाञ्च रुदितस्वनैः। कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥४०॥ ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः। नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्व-

देशके राजाको, द्रौपदीके पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, अचल, वृषक और राजा भगदत्तको, कर्ण, कर्णके पुत्र और महाधनुषधारी केकय राजाओंको, महारथी त्रिगर्त, राक्षसोंका राजा घटोत्कच, वक राक्षसका भाई, राक्षसोंका राजा अलम्बुष, राजा जलसन्ध और दूसरे सब राजाओंको तथा (इनके सिवाय छोटे २) दूसरे सैंकड़ों हजारों राजाओंको चिताओंमें सुलाकर उनके ऊपर घीकी धारा छोड़ी और उससे प्रदीप्त हुए अग्निसे दाहकर्म करवादिया ॥ ३२–३८ ॥ उस समय कितने ही महात्मा पुरुषों के सन्मानार्थ श्राद्ध भी करवा दिया था और कितने ही मृतकों के कल्याणके लिये सामवेदका गान करवाया था तथा कितने ही सगे संबन्धियोंका शोक कियागया था ॥ ३९ ॥ रात्रिके समय सामवेद और ऋग्वेदके मंत्रोंकी ध्वनि करवायी गयी थी और स्त्रियोंने विलाप किया था, उसको सुनकर सब प्राणी खिन्न होगये ॥४०॥ चितामें प्रज्वलित हुआ अग्नि, दूरसे अन्धेरेमें ऐसा

कुरुस्त्रियः । उदकं चक्रिरे सर्वा रुदन्त्यो भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥ सुहृदाञ्चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः । उदके क्रियमाणे तु वीराणां वीरपत्निभिः ॥ ४ ॥ सूपतीर्थाभवद् गङ्गा भूयो विप्रससार च । तन्महोदधिसंकाशं निरानन्दमनुत्सवम् ॥ ५ ॥ वीरपत्नीभिराकीर्णं गङ्गातीरमशोभत । ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता ॥ ६ ॥ रुदती मन्दया वाचा पुत्रान् वचनमब्रवीत् । यः स वीरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः ॥ ७ ॥ अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः । यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पांडवाः ॥८ यो व्यराजच्चमूमध्ये दिवाकर इव प्रभुः । प्रत्ययुध्यत वः सर्वान् पुरा यः सपदानुगान् ॥९॥ दुर्योधनबलं सर्वं यः प्रकर्षन् व्यरोचत ।

लगे ॥ १ ॥२ ॥ उधर बडी ही दुःखी हुई कौरव कुलकी स्त्रियें भी रोते २ अपने आर्य पतियोंको तथा पुत्रोंको जलदान देने लगीं ३ धर्मको जाननेवाले पुरुष अपने संबन्धियोंके लिये जलदानकी क्रिया करनेलगे, वीर पुरुषोंकी स्त्रियें जिस समय वीर पुरुषोंको जलदान देने लगीं, उस समय गङ्गामें उतरनेका मार्ग (अनेकोंके) चरणोंके चिह्नसे सुन्दर दीखनेलगा, गङ्गानदी अधिक विस्तारमें फैलीहुई दीखी, वह समय आनन्द और उत्सवका नहीं था, तो भी इस समय महासागरकी समान गङ्गाका तट, वीरनारियोंसे भराहुआ होनेके कारण शोभा पारहा था, तब जलदानक्रिया होनेके समय, हे महाराज ! शोकसे घिरीहुई कुन्ती एकायकी रोते २ धीमे स्वरसे अपने पुत्रोंसे कहनेलगी, कि—॥ ४ ॥ ६ ॥ हे पांडवों ! जो बड़ा वीर और धनुषधारी था, जो रथियोंके दलोंका अधिपति था ॥ ७ ॥ जिसमें वीर पुरुषोंके सब लक्षण थे, जिसको अर्जुनने युद्धमें मारडाला है, जिसको तुम राधाकी कोखसे जन्मा हुआ सूतपुत्र मानते हो ८ जो सेनाके मध्यमें सूर्यकी समान दम-कता था, जो पहले तुम्हारे और तुम्हारे पीछे चलनेवाले योधा-

स्तिष्ठेद्धनञ्जयात् ॥ १६ ॥ कथं पुत्रो भवत्या स देवगर्भः पुराभवत् । यस्य बाहुप्रतापेन तापिताः सर्वतो वयम् ॥ १७ ॥ तमग्निमिव वस्त्रेण कथं छादितवत्यसि । यस्य बाहुबलं नित्यं धार्तराष्ट्रैरुपासितम् ॥१८॥ उपासितं यथास्माभिर्बलं गाण्डीवधन्वनः । भूमिपानां च सर्वेषां बलं बलवतां वरः ॥१९॥ नान्यं कुन्तीसुतात्कर्णादगृह्णाद्रथिनां रथी । स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २० ॥ असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम् । अहो भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः ॥ २१ ॥ निधनेन हि कर्णस्य पीडितास्तु सबान्धवाः । अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च ॥ २२ ॥ पञ्चालानां विनाशेन कुरूणां पतनेन च । ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद् भृशम् ॥ २३ ॥ कर्णमेवानुशोचामि

सामने अर्जुनके सिवाय दूसरा कोई नहीं टिक सकता था ११-१६ ऐसा देवपुत्र कर्ण, तुम्हारी कोखसे पहले किसप्रकार उत्पन्न हुआ था, कि—जिसकी भुजाओंके प्रतापसे हम सब झुलसगये थे ॥ १७ ॥ जैसे कोई अग्निको वस्त्रसे ढककर रक्खे तैसे तुमने कर्णको छुपाकर क्यों रक्खा था ? हम जैसे अर्जुनके बलका भरोसा रखते हैं, तैसे धृतराष्ट्रके पुत्र सदा उसके बाहुबलका ही भरोसा रखते थे, वह स्वयं महाबली था, सब राजाओंका बलरूप था तथा इस कुन्तीपुत्र कर्णके सिवाय दूसरे किसी भी पुरुषकी रथियोंमें रथीरूपसे गिनती नहीं थी ऐसा सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हमारा ज्येष्ठ भ्राता कर्ण अद्भुत पराक्रमी था, उसको पहले तुमने किसप्रकार उत्पन्न किया था ? ओः ! तुमने इस गुप्त बातको छिपी रखकर हमें मारडाला ॥ १८-२१ ॥ कर्णके मरणसे मुझे और मेरे इन भाइयोंको बडा दुःख होरहा है अभिमन्युके द्रौपदीके पुत्रोंके, पंचाल राजाओंके और कुरुवंशियोंके मारेजानेसे मुझे जो दुःख होरहा, उससे सौ गुणा दुःख इस समय

गङ्गाया उत्ततारोकुलेन्द्रियः ॥ भ्रातृभिः सहितः सर्वैः गङ्गातीरमुपेयिवान् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां स्त्रीपर्वणि कर्णगूढजत्वकथने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

समाप्तं श्राद्धपर्व स्त्रीपर्व च.

को निकालडालना चाहिये, ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर व्याकुलचित्तसे सब भाइयोंके सहित स्नान करनेके लिये गङ्गा नदीमें उतरे ॥ ३० ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारतके स्त्रीपर्वका मुरादाबादनिवासी भोलानाथात्मज ऋषिकुमार रामस्वरूपशर्माकृत भाषानुवाद समाप्त ॥

ॐ शम्

